समर्पण ।

सर्वोपमोपमेय संस्कृतभाषानुरागी माननीय मित्रवर
श्रीवीरजीभाई वाघजीभाई पटेल इनूजीनियर-
दि पुरुषोत्तम स्पेनिंग मेन्युफेक्चरिंग कम्पनी लिमिटेड
अहमदाबाद. (गुजरात.)

माननीय मित्रवर !

आप सदैव मुझसे स्नेह करते रहते हैं । आपका ध्यान
हिन्दीभाषा और संस्कृतविद्याकी उन्नतिपर सदासे
चला आता है । संस्कृत, हिन्दी, गुजराती भाषाके
शतशः ग्रंथ आपके पुस्तकालयमें विद्यमान
हैं, अत एव " रसेन्द्रचिन्तामणि " नामक
ग्रंथभी अर्पित है, इसकोभी अलमारीके
किसी कोनेमें स्थान दान करके मुझे
अनुगृहीत कीजिये.

ता. २१।८।१९०१ ई. मुरादाबाद.

शुभाकांक्षी-
बलदेवप्रसादमिश्र.

भूमिका ।

प्राचीन सिद्धलोगोंके बनाये जितने रसग्रंथ हैं उनमें रसेन्द्रचिन्तामणि भली भांतिसे विख्यात है । रसेन्द्रचिन्तामणि नामके दो रसग्रंथ आजकल प्रसिद्ध हैं । एकके निर्माणकर्ता, रसरत्नाकरके निर्माता सिद्ध नित्यनाथजी हैं और प्रस्तुत पुस्तक सिद्धश्रेष्ठ श्रीढुण्ढुकनाथजीने निर्माण की है । इन दोनों ग्रंथोंका भाषाटीका अभीतक किसी महाशयने नहीं किया वही कारण है जो उनमेंसे एक ग्रंथका भाषाटीका आप लोगोंके अर्पण किया जाता है । उस ग्रंथके प्रचारका मुख्य उद्देश स्वदेशीय भिषङ्मंडलीमें भारतजात औषधिके व्यवहार करनेका अनुराग बढानाही है ।

सर्वाधार श्रीनारायणजीने जिस प्रकार पृथक् २ देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकृतिके मनुष्य उत्पन्न किये हैं, वैसेही तुम लोगोंकी रोगशान्तिके लिये उन प्रदेशोंमें भांति २ की औषधियेंभी उत्पन्न कर दी हैं । जगदीश्वरने मनुष्योंको इस प्रकारकी शक्ति और बुद्धिभी प्रदान की है कि जिसके द्वारा वह अपनी हितकारक औषधियोंको प्रत्येक स्थानसे खोजनेमे समर्थ हों । इस समय जो जातिये सभ्यता और विज्ञानके सर्वोच्च आसनपर विराजमान है वह केवल अपनी बुद्धिमानीके गुणसेही इस पदवीको पहुँची है । अतिप्राचीन कालमें भारतवासीभी सभ्यता और विज्ञानके अत्यंत ऊंचे आसनपर विराजमान हो गये थे. परन्तु, समयके हेरफेरसे या अपने दोषसे उनकी संतान जिस हीनावस्थाको पहुँच गई है उसका विचार करनेसे हृदय विस्मित और स्तंभित हुआ जाता है ।

समस्त विज्ञानमें चिकित्साविज्ञान मनुष्योंके लिये जैसा उपकारी और नित्य प्रयोजनीय है । ज्ञात होता है कि दूसरा कोई विज्ञान उतना उपकारी और आवश्यकीय नहीं है । कारण कि जीवनमे मनुष्यजातिका मुख्य उद्देश आरोग्य शरीरसे जीवनयात्रा निर्वाह करना और संसारी सुखको भोगनाही है । यही कारण है जो चिकित्साविज्ञानका सूत्रपात संसारकी अत्यन्त शैशवावस्थासे आरंभ हुआ है । संसारके उस शैशवकालमेही भारतीय ऋषि मुनियोंके द्वारा चिकित्साशास्त्रकी नीम जमाई गई, इस बातको इस समय चिकित्साविज्ञानके अनुशीलन करनेवाले डाक्टर वाइज आदि महाशयोंनेभी स्वीकार किया है । परन्तु यह वडे आक्षेपकी वात है कि भारतवासियोने इस विज्ञानकी कुछभी उन्नति न की वरन जो कुछ अपने पास था उसकोभी खो बैठे । यदि इस समयके अंगरेजी चिकित्साविज्ञानसे मिलान किया जाय तो हमारी आर्यचिकित्सा अत्यन्त हीन और असम्पूर्ण ज्ञात होगी, तथापि आजपर्यन्त इसको ऐसी महोपकारी औषधियोंका भंडार हम जानते हैं, कि वे

औषधियां अंगरेजी औषधियोंसे बहुतही अधिक रोग दूर करनेमें समर्थ हैं । भली भांतिसे आलोचना न होने और व्यवहार न होनेके कारण भारतवर्षीय औषधियोंके गुण मनुष्योंपर प्रगट नहीं होते ।

यद्यपि हमारे घरके चारों ओर उत्तमोत्तम औषधियां उपजी हुई वर्तमान रहती हैं, तथापि हम रोगशान्तिकी आशामें अंगरेजी औषधियोंकी ओर ताका करते हैं, भारतवासियोंके लिये यह बडी लाजकी बात है । यह अवश्य मानते हैं कि जिन रोगोंकी श्रेष्ठ औषधि या चिकित्साविज्ञानका अंगविशेष हमारे देशमें नहीं है उसको भिन्न देश या जातिसे ग्रहण करना उचित है । भारतवासी प्रत्येक वैद्यका यह उचित कार्य है कि विदेशी औषधिका सहारा छोडकर देशी औषधिके द्वारा रोगियोंके रोग दूर करना सीखें और जहांतक संभव हो देशी औषधियोंका अनुसन्धान और उनकी परीक्षा करनेमें दत्तचित्त हों । प्राचीन आर्यचिकित्सकोंकी बहुदर्शिता और अंगरेज चिकित्सिकोंकी गवेषणासे हम लोग स्वदेशीय औषधियोंके उन्नति करनेमें बहुतसी सहायता प्राप्त कर सकते हैं । यदि उनकी दिखाई हुई प्रणालीके अनुसार कार्य करने लगे तो भैषज्यतत्वके सम्बन्धमें क्रमशः अनेक नूतन विधिविधानोंका आविष्कार होता जायगा। वर्तमानसमयमें भारतवासी जिस भांति रोग शोकसे जीर्ण होकर समय व्यतीत कर रहे हैं और जैसा कुछ धनाभाव उनको हो रहा है, उसके देखते हुए निश्चयसे कहा जा सकता है कि, वह व्ययसाध्य अंगरेजी चिकित्साके द्वारा प्रत्येक मनुष्य चिकित्सित नहीं हो सकता । इस कारण वैद्यगणोंको उचित है कि यथासंभव इस विद्याका अनुशीलन करके देशी औषधियोंको अधिकतासे प्रचार करनेमें कटिबद्ध हों ।

आनंदका विषय है कि कलकत्तेके सुयोग्य कविराज श्रीयुत उपेन्द्रनाथसेन गुप्त कविराजने अपने स्थानपर एक आयुर्वेदविद्यालय और औषधालय खोल रक्खा है । उस विद्यालयमें बहुतसे विद्यार्थी आयुर्वेदशास्त्रका अध्ययन और मनन करते हैं, इधर मुंबईमेंभी श्रीमान् शंकर दाजी शास्त्री पदे सम्पादक आर्यभिषक्के द्वारा आयुर्वेदपरिषद् स्थापित होकर आयुर्वेदकी उन्नतिमें यत्नशील हो रहा है । अनेक वैद्य और वैद्यविद्याके अनुरागियोंने इस समय बहुतसे आयुर्वेदग्रंथोंका भाषाटीका करके छपवाया और छपवा रहे हैं, तथा यंत्राधीशभी प्रेम व उत्साहके साथ उन पुस्तकोंका प्रकाश करते हैं, इससे आशा होती है कि अब भारतवर्षीय आयुर्वेदशास्त्र शीघ्रही उन्नतिके शिखरपर पहुँच जायगा वह दिन शीघ्रही आनेवाला है कि जब हम आयुर्वेदकी उन्नतिशील चिकित्साके प्रभावसे सभा जगत्को चमत्कृत और विस्मित देखेंगे। इसही कारणसे कहते हैं कि आयुर्वेदके ग्रंथोंका जितना

प्रचार हो उतनाही अच्छा है । देशहितैषी सज्जन तथा यंत्राध्यक्षोंको उचित है कि आयुर्वेदशास्त्रके ग्रंथोंको वह उत्साहसहित प्रकाशित करें और लेखकोंकोभी उत्साह दें । कारण कि विना उत्साहके बहुतसे कार्य उत्थान होतेही भविष्यत्के गर्भमें लोप हो जाते हैं ।

रसकार्यभी आयुर्वेदशास्त्रका एक प्रधान अंग है । जो कार्य बडे २ डाक्टरोंकी अमोघ औषधियांभी नहीं कर सकतीं, उन कार्योंपर तथा दुर्निवार रोगोंपरभी रसोंका विशेष प्रभाव होता है । परन्तु खेदके साथ कहना पडता है कि रसोंके ग्रन्थ भाषाटीकासहित अभी बहुतही कम प्रकाशित हुए हैं । वास्तवमें एक रसरत्नाकर ग्रन्थही ऐसा है कि जिसको अत्युत्तम और रसोंका अमोघ ग्रन्थ कहा जाय तोभी अतिशयोक्ति नहीं होगी । इस ग्रन्थका मुरादावादनिवासी स्वर्गीय लाला शालिग्रामजीने भाषाटीका किया और श्रीवेंकटेश्वर प्रेसके सत्वाधिकारी श्रीमान् खेमराज श्रीकृष्णदासजीने प्रकाशित किया है । दूसरा रसराजसुन्दर संग्रहीत ग्रन्थ है, बस दो चार पुस्तक और भाषाटीकासहित रसविषयकी छपी होगी । अत एव इन पुस्तकोंकी न्यूनता देखकरही इस रसेन्द्रचिन्तामणि नामक पुस्तकका अनुवाद करके जगद्विख्यात सेठ गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासजी सत्वाधिकारी " लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " प्रेस कल्याणको अर्पण किया । उक्त सेठजीने अत्यन्त उत्साहके साथ इस पुस्तकको मुद्रित करके हिन्दी, हिन्दू, हिन्दोस्थानका महत् उपकार साधन किया । यदि उक्त महोदयका ध्यान इसही भांतिसे हिन्दूशास्त्रोंके प्रकाशित करनेमे आकर्षित रहा तो शीघ्रही बहुतसे ग्रन्थ पाठकगणोंके निकट पहुँच जायँगे ।

हमारे परम मित्र माननीय पंडित कन्हैयालालजी तन्त्रवैद्य मालिक तन्त्रौषधालय मुरादाबादने रसेन्द्रचिन्तामणिके अनुसार बहुतसे रस बनाये । उन रसोंकी परीक्षा बहुतसे मनुष्योंने की अब अधिक लिखनेसे क्या है इस श्रावणमासमेंही हमारी माताजीपर शीतने महाघोर आक्रमण किया था, नाडीकी गतिभी मन्द हो गई थी, चेतनाशक्ति क्रमशः लोप होती जाती थी तब इन्हीं महाशयने अपने रामबाण रसोंका प्रयोग करके उनके जीवनको दो बार बचाया और सब कुटुम्बको आनन्दित किया । परमेश्वरसे यही प्रार्थना है कि हमारे माननीय मित्रवरका ध्यान इसही भांति आयुर्वेदकी उन्नतिमें लगा रहे ।

जब किसी अतिकठिन रोगमे साधारण औषधियें काम नहीं देतीं, उस समय इन रसोंसे काम लिया जाता है, अधिक क्या कहें, यथोक्त विधिके अनुसार बने हुए रस मुमूर्षु रोगीकोभी एक वार भला चंगा बना सकते हैं ।

परन्तु रसक्रिया बडी कठिन है, जिन लोगोंने गुरुकी बतलाई हुई क्रियाके अनुसार रस बनाना सीख लिया है, उन्हीं लोगोंके रस अपना गुण रामबाणकी समान दिखा सकते हैं ।

आजकलके बहुत लोग डाक्टरोंके बहकानेसे रसोंकी निन्दा किया करते हैं, उनका कथन है कि रसोंके सेवन करनेसे कोढ हो जाता है इत्यादि परन्तु उन लोगोंकाभी कुछ अपराध नहीं है, कारण कि आजकलके निरक्षर वैद्याभिमानियोंने उनको प्रतारित किया है, वर्त्तमान समयमें ऐसे बहुत लोग हैं, जो स्वयं तो कुछ नहीं जानते और आडम्बर उन्होंने ऐसे फैला रक्खे हैं कि जिनको देखकर परदेशी लोग धोखेमें आकर आयुर्वेदीय चिकित्सा और रसोंकी घोर निन्दा करने लगते हैं। वह विचारे इस बातको किस प्रकार जान सकते हैं कि यह निरे निरक्षर भट्टाचार्य्य हैं । उनको किस प्रकारसे ज्ञात हो सकता है कि उनके औषधालय नाममात्रके हैं। आजकलके बहुतसे धूर्त्तोंने चटकीले भडकीले नोटिस दे रक्खे हैं, परन्तु, यदि कोई परीक्षाके निमित्त आकर देखे तो औषधालयके जगह केवल खिडकीमें रक्खी हुई दो चार बोतलेंही दृष्टिगोचर होंगी ।

किन्तु इन लोगोंका इन्द्रजाल विशेष दिनोंतक नहीं ठहरेगा, कारण कि "क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः" की समान उनकी कलई शीघ्रही खुल जायगी ।

हम विश्वासके साथ कहते हैं, कि रसोंकी शक्ति यहांतक देखी गई है सैकडों वृद्धोंको नवयुवक बना दिया है, बहुतसे स्थानोंपर डंकेके साथ इस बातको शास्त्रकारोंने लिख दिया है कि "रसेन कथितो वैद्यो" अर्थात् रसक्रिया जाननेसेही पूर्ण वैद्य कहला सकता है ।

उपसंहारमें पाठकगणोंसे निवेदन किया जाता है, कि यदि आप लोगोंने इस ग्रन्थका आदर किया तो रसरत्नसमुच्चय इत्यादि औरभी कई ग्रन्थ शीघ्रही आपके सन्मुख उपस्थित होंगे । औषधि इत्यादि वैद्यक उपादानकी खोजका फल "मिश्रनिघण्टु" नामक ग्रन्थभी सेठ गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासजी छाप रहे हैं । उसकोभी शीघ्रही आप लोग देखेंगे । इत्यलम् ।

दीनदारपुरा.
मुरादाबाद २१ । ८ । १९०१ } विनीत–
कात्यायनकुमार बलदेवप्रसादमिश्र.

पुटोंकी संज्ञा और रीति।

महापुट।

गहाव और फैलावमें चौकोर दो हाथका गढा करे उसको आधा अरने उपलोंसे भर दे, पश्चात् औषधियुक्त शरावपर कपरमिट्टी कर सुखाय गढेमें रक्खे, अनन्तर शेष गढेकोभी अरने उपलोंसे पूर्ण कर बन्द कर दे फिर अग्नि प्रज्वलित करे, स्वांगशीतल होनेपर निकाल ले इसकोही महापुट कहते हैं।

गजपुटके लक्षण।

घनाकार डेढ हाथ चौडा गढा करे आधेमें उपले भर बीचमें शरावसम्पुट रखकर ऊपरसे उपले भर दे, अग्नि लगाकर स्वांगशीतल होनेपर निकाल ले इसको गजपुट वा माहिषपुट कहते हैं।

वाराहपुट।

अरत्निमात्र (अंगूठेसे उंगलीतक) गढेमें पूर्वोक्त रीतिसे अरने उपलोंमें अग्नि देनेको वाराहपुट कहते हैं।

कुक्कुटपुटलक्षण।

बालिश्तभर चौडे लम्बे गढेमें पूर्वोक्त रीतिसे अग्नि देनेको कुक्कुटपुट कहते हैं।

कपोतपुटलक्षण।

बालिश्तभर गढेमें सात आठ उपलोंकी अग्नि देनेको कपोतपुट कहते हैं।

गोबरपुटलक्षण।

पृथ्वीपर उपलोंका बारीक चूरा कर उसपर औषधियोंको रख कपरमिट्टी कर शराव रक्खे उसको उपलोंके चूरेसे बन्द कर अग्नि देवे इसको गोबरपुट कहते हैं।

कुम्भपुटलक्षण।

मिट्टीकी गागरमें उंगलेके समान छिद्र कर उस आधीमें कोयले भर पीछे औषधी रख उसका मुख शरावसे बन्द कर ऊपरसे कपरमिट्टी कर छायामें सुखाय आगके अंगारे डाल चूल्हे वा ईंटोंपर रख अग्नि दे पीछे उतार कर तीन दिनतक शीतल होने दे जब शीतल हो जाय तब औषधियोंको निकाले इसे कुम्भपुट कहते हैं।

वालुकापुट।

मूषको ऊपर नीचे वालूसे भर औषधियोंको परिपक्क करे उसे वालुकापुट कहते हैं।

भूधरपुट।

दो अंगुल जमीन खोद उसपर घरियाको रख ऊपरसे पुट देकर अग्नि दे इसे भूधरपुट कहते हैं।

लावकपुट ।

मूसापर मूत्र, तुष और उपलेंका पुट जहां दिया जाय उसे लावकपुट कहते हैं । यह पुट नम्र वस्तु बनानेको उत्तम है ।

अथ यन्त्रप्रकरण ।

यन्त्रशब्दकी निरुक्ति ।

स्वेदादि कर्म निर्माण करनेको आचार्य्योंकरके यत्नपूर्वक पारा योजना किया जाता है जिनमें इस कारण इनको यन्त्र कहते हैं ।

कवचीयन्त्र ।

कांचकी शीशी न बहुत वडी हो न छोटी दृढ हो उसपर मुलतानी मिट्टीसे कपरमिट्टी करे और धूपमें सुखावे पीछे उसमें औषधी भर मुख वन्द कर वालुकायंत्रादिमें स्थापन कर विधिपूर्वक पाक करे इस प्रकार कपडा चढी सीसीको कवचीयन्त्र कहते हैं, इससे पारदादि पाकक्रिया होती है ।

दोलायंत्र ।

औषधि मिला पारा लेकर तीन वार भोजपत्रसे लपेट पीछे कपडेको पोटलीमें वांध एक या डेढ वालिस्तके छोटे काष्ठसे वांधकर घडेमें लटका दे और जिसमे पाचन करना हो उसमें आधा घडा जल भर दे ।फिर उस पोटलीको उसके भीतर इस तौरसे लटकावे जिसमें उसका पैटा पेंदीसे न मिले, पीछे उस घडेको चूलहेपर चढाय कहे प्रमाण अग्नि दे इसको दोलायंत्र कहते हैं और स्वेदनीययंत्रभी कहते हैं । अथवा जलयुक्त पात्र मुखपर कपडा वांध उसमे जिसको स्वेदन किया चाहते हैं उसको रख भाफ दे और पचन करावे इसको स्वेदनयंत्र कहते हैं ।

गर्भयंत्र ।

एक वडा घडा चूलहेपर चढाय उसके पेंदेमें ईंट रख उसपर दूसरा पात्र रक्खे उसमें चारों ओर औषधि भर दे, पीछे घडेके मुखपर घडीके समान पात्र रख संधि वन्द कर घडेके तले मन्दी २ अग्नि जलावे, मुँहके ढक्कनमें पानी भर दे, जब वह पानी गरम हो जाय तब निकालकर दूसरा शीतल भर देवें, इस प्रकार वारंवार गरम जल निकाल २ कर शीतल जल भरता रहे, इस प्रकार करनेसे ऊपरके पात्रकी पेंदीमें भाप जमती है, वही शीतल जल ऊपर रहनेके कारण टपक २ कर भीतरके कटोरेमें गिरती रहती है उसको सावधानीसे निकाल लेवे, इसको गर्भयंत्र कहते हैं, इसके द्वारा सुगंधित अर्क (गुलाबजल आदि) बनाते हैं ।

हंसपाकयंत्र।

एक बडा खपरा वालुका भरा ले, उसमें औषधियोंको रख ऊपरसे दूसरे खपरे-से मुखसे मुख मिलाकर दृढ बन्द कर देवे, इस प्रकार पांचों क्षारोंमें मूत्रोंमें नैनोंमें मन्दाग्निसे पाक करे इस यंत्रको हंसपाक कहते हैं।

विद्याधरयंत्र।

भीतरसे चिकनी दो हांडी ले प्रथम एकमें घुटा हुआ डलीका सिंगरफ अथवा घुटा हुआ पारा डाल दूसरी हांडीसे मुखसे मुख मिलाकर बन्द करे और दोनोंकी सन्धि मुलतानी मिले कपडेसे बन्द करे और ऊपरकी हांडीमें जल भर दे जब जल गरम हो जाय तब निकाल दूसरा शीतल जल भर दे, उन दोनोंको चूल्हेपर चढा नीचे अग्नि जलावे, इस प्रकार पांच प्रहर अग्नि देवे स्वांगशीतल होनेपर ऊपरकी हांडीमें जो पारा लगा हो उसको युक्तिसे निकाल लेवे, इसको यंत्रज्ञाता विद्याधर-यंत्र कहते हैं।

डमरूयंत्र।

एक हांडीके मुखसे दूसरी हांडीका मुख जोडकर संधियोंको मुलतानी मिट्टीसे बन्द करे, इसको डमरूयंत्र कहते हैं यह यंत्र पारदकी भस्मके लिये उत्तम है।

ऊर्ध्वनलिकायंत्र।

एक घडा लेकर उसके गलेमें छेद करे उसमें बांस या नरसलकी समान नली जो पोली हो प्रवेश कर मुखपर उतनाही बडा ढकना देकर लेप दे, नलीके मुखपर कांचका पात्र देवे, पीछे पूर्वोक्त घडेको भट्टीपर रख नीचे अग्नि जलावे तो अग्निके ऊपरवाले पात्रमेंसे औषधियोंका अर्क खीचकर दूसरी पानीवाले पात्रमे इकट्ठा होवे, इसको टंकयंत्र कहते हैं। इसीसे अत्तार लोग सब प्रकारके अर्क खैंचते हैं।

वालुकायंत्र।

बालिस्तभर गहरा मिट्टीका पात्र ले उसकी पैंदीमें पैसेके बराबर छिद्र कर उसपर टिकटी रक्खे कि जिसके दोनों तरफ छेद रहे पीछे उसमें आतसीशीशीमें औषधि रख मुख बन्द कर दे पीछे वालुकायंत्रको चूल्हेपर चढाय प्रयोगमें कहे प्रमाण पचन करावे इसको यंत्रवेत्ता पुरुष वालुकायंत्र कहते हैं।

भूधरयंत्र।

मूषामे पारा भरकर बन्द करे, फिर उसको वालूसे परिपूर्ण कर वालूपर अरने उपलोंकी अग्नि देवे, उसको भूधरयंत्र कहते हैं।

पातालयंत्र।

एक हाथ गहरा गढा खोद उसमे बडे मुखका पात्र रखे पीछे दूसरे पात्रमें औ-

पधि रखकर उसके ऊपर छेदवाला शराव ढक दे और उस शराव शरावसमेत गढे-वाले पात्रके ऊपर उलटा रक्खे ताकि दोनोंका मुख मिल जावे, पीछे सन्धिलेप कर उस गढेको मिट्टीसे भर देवे और ऊपर अग्नि जलावे तो शरावके छिद्रद्वारा तेल वा अर्क खींचकर नीचेके पात्रमें गिरेगा पीछे स्वांगशितल होनेपर तेल वा अर्कके पात्रको युक्तिसे निकाल लेवे इसको पातालयंत्र कहते हैं ।

तेजोयन्त्र ।

पृथ्वीपर रख भीगी हुई गाढी मिट्टी उसपर चढावे और दोनों सुडौल गोल मुख करे, परन्तु नीचे मुख छोटा बनावे, पीछे सावधानीसे धीरेसे लकडीको निकाल लेवे, तदनन्तर धूपमें सुखाकर पीछे भट्टी वा अंगीठीमे छेद कर उस कोष्ठिकाको अच्छे प्रकार रख दे और उसके पिछले भागमें पशुकी वसाकी नाल अथवा धोंकनी बांध तदनन्तर भट्टीमें पक्के कोयले डाल अभ्रकादि सत्व निकालनेको रक्खे और अग्नि दे धोंकनीसे खूब धमावे, इसीको कोष्ठीयंत्र कहते हैं, इसकी क्रिया लुहारोंसे भले प्रकार मालूम हो सकती है ।

वज्रमूषा ।

दो भाग तिनकोंकी राख, एक भाग बांबीकी मिट्टी, एक भाग सफेद पत्थरका चूरा और कुछ मनुष्यके बाल डाले, सबको एकत्र कर बकरीके दूधमें औटाय दो प्रहरतक अच्छी तरह घोटे पीछे उस मिट्टीकी गौके थनके सदृश गोल और लम्बी बनाके पश्चात् उसका ढकना बना धूपमे सुखाकर उसमें पारा भर ढकनेसे ढक देवे और संधियोंको उसी मिट्टीसे बन्द करे । यह पारा मारनेको वज्रमूषा कहा है, इसीको अंधमूष कहते हैं ।

चक्रयंत्र ।

पहले गोलाकार एक गढा खोदे और उसकी थोडी दूरपर खाई खोदे, पहले गढेमें पारा रखे और दूसरेमें अग्निका पुट दे, इसको चक्रयंत्र कहते हैं ।

इष्टिकायंत्र ।

बीचमें गढेलायुक्त एक ईंट लेवे, उस गढेलेमे पारे आदिकी मिट्टी भर शरावसे मुख बन्द कर उसकी संधियोको नोन और मिट्टीसे बन्द कर दे, पीछे एक गढा खोद उसमे ईंटको रख ऊपरसे थोडा वालू बुरका दे, पीछे ईंटपर थोडा अग्निका पुट दे, उसको इष्टिकायंत्र कहते हैं ।

कोष्ठिकायंत्र ।

कोष्ठिकायंत्र १६ अंगुल विस्तारमे एक हाथ लंबा होना चाहिये यह सम्पूर्ण धातुओंके सत्वपातनार्थ कहा है, बांस, खैर, महुआ और बेरकी लकडीके कोय-

लोंसे उसको परिपूर्ण कर नीचेके मार्गमें अर्थात् धोंकनीके धमानेसे अग्निको प्रज्वलित करे । इसको कोष्ठिकायंत्र (धोकनी) कहते हैं ।

वकयंत्र ।

बडी गर्दनकी एक शीशी लेवे उस शीशीके कंठाग्र भागको दूसरी कांचकी शीशीमे प्रवेश कर देवे । इसको वकयंत्र कहते हैं । पीछे उस आधारपात्रको वालुकायंत्रमें स्थापित कर नीचे अग्नि जलावे तो उस शीशीको औषधियोंका रस साफ होकर दूसरी शीशीमें प्राप्त हो जिसमें रस इकट्ठा हो उसको किसी जलके पात्रमें स्थित करे ।

नाडिकायन्त्र ।

एक घडेमे औषधी भर दूसरा छोटा पात्र उसके मुखपर रख दोनोंके मुख चिकनी मिट्टीसे ल्हेस दे, पीछे उस यन्त्रमें एक गोल नल लेकर दूसरे जलके पात्रमें डाल दे, जलपात्रसेभी निकाल दूसरे आधारपात्रमे डाले, पीछे पूर्वोक्त यंत्रको चूल्हेपर रख नीचे अग्नि जलावे तो अग्निके ऊपरवाले घडेका द्रव्य भापरूप होकर नलके रस्ते जलपात्रमे शीतल इकट्ठा होकर नीचेके आधारपात्रमें गिरे, उस गिरे हुए निर्मल पारेको सावधानीसे निकाल लेवे, इस यन्त्रके द्वारा गुलाबजलादि उत्तम २ अर्क निकाले जाते हैं इसे नाडिकायन्त्र कहते हैं ।

वारुणीयंत्र ।

पूर्वोक्त नाडिकायंत्रके समीप जलद्रोणी अर्थात् जलपात्र रहता है, परन्तु जलद्रोणीरहित केवल ऊपर जलका पात्रही रहे, उसको वारुणीयंत्र कहते हैं, इसका नल सीधा होता है, इस यंत्रका आधार भांडजलका पात्र ऊपर रहता है इसके द्वारा दारू खैंचते हैं ।

तिर्य्यक्पातनयन्त्र ।

दो बडे २ घडे तिरछे रखे, दोनोके मुख आपसमे मिला देवे, इसको तिर्य्यक्पातनयंत्र कहते हैं । एक घडेमे पारा और दूसरेमे जल भरे, दोनोंका मुख मिलाकर संधि भले प्रकार बंद करे, पारेवाले घडेके तले अग्नि जलावे, अग्निके प्रभावसे पारा जलवाले घडेमे उडकर जलवाले घडेमे प्रवेश करेगा, इस क्रियाको तिर्य्यक्पातन कहते हैं ।

लेखक—
कन्हैयालाल तन्त्रवैद्य, तन्त्रौषधालय.
मुरादाबाद.

अथ

रसेन्द्रचिंतामणिग्रन्थस्य विषयानुक्रमणिका ।

विषयानुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ.

नवमोऽध्यायः ।

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,

"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,

कल्याण–मुंबई.

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ

भाषाटीकासहितः

रसेन्द्रचिन्तामणिः।

प्रथमोऽध्यायः।

अथ मंगलम्।

इदानीं कालनाथशिष्यः श्रीढुंढुकनाथाह्वयो रसेन्द्रचितामणिग्रन्थमारभमाणस्तन्मूलदेवते श्रीमदम्बिकामहेश्वरौ सकलजगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयनिदानं विशेषसिद्धान्तगर्भवाचा वरीवस्यति ॥ १ ॥

गुणत्रयविभागेन पश्चाद्भेदमुपेयुषे। त्रिलोकीपतये तुभ्यमाम्बिकापतये नमः ॥

भाषा—अब कालनाथके शिष्य श्रीढुंढुकनाथ रसेन्द्रचिन्तामणि नामक ग्रंथके रचनेको विशेष सिद्धान्तपूर्ण वचनावलीसे सबसे पहले सृष्टिस्थितिसंहारकारिणी आदिदेवता अम्बिका और महादेवजीकी आराधना करते हैं ॥ १ ॥

अथ प्रकाशकासारविमर्षाम्बुजिनीमयम्।
सच्चिदानन्दविभवं शिवयोर्वपुराश्रये ॥ २ ॥

भाषा—जिस सरोवरमें ज्ञानरूप कमल उत्पन्न होता और खिलता है, उस सरोवरस्वरूप सच्चिदानंदमय शिवगौरीके शरीरको आश्रय करता हूं ॥ २ ॥

ग्रंथप्रशंसा।

लघीयः परिमाणतया निखिलरसज्ञानदायित्वात् चिन्तामणिरिव चिन्तामणिः ॥ ३ ॥

भाषा—यह ग्रंथ परिमाणमें छोटा है तो, परन्तु यह संपूर्ण रसोंके ज्ञानको देता है, बस यह रसेन्द्रचिन्तामणि निःसन्देह चिन्तामणिकी समान है ॥ ३ ॥

अश्रौषं बहुविदुषां मुखादपश्यं शास्त्रेषु स्थितमकृतं न तल्लिखामि। यत्कर्म व्यरचयमग्रतो गुरूणां प्रौढानां तदिह वदामि वीतशंकः ॥ ४ ॥

भाषा-जिसको बहुतसे विद्वानोंके मुखसे सुना और शास्त्राध्ययन करके उसमें जो जो देखा, परन्तु कार्यद्वारा उनकी परीक्षा नहीं की मैंने उन विषयोंको उस ग्रंथमें न मिलाकर ज्ञानमें बढे हुए वैद्योंसे जो जो सुना स्वयं कार्य करके उसकी परीक्षा की है । इस कारण हृदयमें निःशंक हो उन्हीं विषयोंको मिलाया है ॥ ४ ॥

गुरुशिष्यप्रशंसा ।

अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्ते सूतेन्द्रकर्म्म गुरवो गुरवस्त एव। शिष्यास्त एव रचयन्ति गुरोः पुरो ये शेषाः पुनस्त-दुभयाभिनयं भजन्ते ॥ ५ ॥

भाषा-जो लोग रसकर्मविषयकी शिक्षा देकर तिसको कार्यमें दिखा सकते हैं तिनकोही यथार्थ गुरु कहा जाता है और जो लोग पढकर गुरुके निकट उस समस्त कार्यको भली भांति कर सकते हैं, वेही शिष्य प्रशंसाके पात्र होते हैं। नहीं इससे विपरीत होनेपर गुरु शिष्य दोनोको केवल अभिनेताही कहा जाया करता है ॥ ५ ॥

संस्कारप्रकटनम् ।

संस्काराः परतन्त्रेषु ये गूढाः सिद्धसूचिताः ।
तानेव प्रकटीकर्त्तुमुद्यमं किल कुर्म्महे ॥ ६ ॥

भाषा-सिद्ध पुरुष लोग अनेक प्रकारके तंत्रोमे जिन समस्त रसोंका संस्कार गूढ और अस्पष्ट रीतिसे लिख गये हैं, मै उन सबको स्पष्ट २ प्रकाश करनेमे विशेष यत्न करूंगा ॥ ६ ॥

ग्रन्थादस्मादाहरन्ति प्रयोगान् स्वीयं वास्मिन् नाम ये निःक्षि-पन्ति । गोत्राण्येषामस्मदीयः श्रमोष्मा भस्मीकुर्वन्नायुगं बोभवीतु ॥ ७ ॥

भाषा-इस ग्रंथमे लिखे हुए प्रयोगोंको हरण करके जो कोई अपने नामसे ग्रंथमे प्रकाश करेगा, तो मेरी श्रमरूप उष्मासे उसका वंश भस्म हो जायगा ॥७॥

संस्काराः शिवजनुषो बहुप्रकारास्तुल्या ये लघुबहुलप्रयास-साध्याः । यद्येकं सुकरमुदाहरामि तेषां व्याहारैः किमिह ततः परेषाम् ॥ ८ ॥

भाषा-पारेकी संस्कारविधि शास्त्रभेदसे अनेक प्रकारकी दिखाई देती है, तिनमें कुछ सुखसाध्य हे और कितनीके साधन करनेमे बहुत श्रम पाना पडता

है । जो अल्पश्रमसे साध्य हैं, यदि मैं इस पुस्तकमें उन संस्कारोंको लिखूं तो फिर बाकीके लिखनेका क्या प्रयोजन है? ॥ ८ ॥

इह खलु पुरुषेण दुःखस्य निरुपाधिद्वेषविषयत्वात्तदभावश्चिकीर्षितव्यो भवति । सुखमपि निरुपाधिप्रेमास्पदतया गवेषणीयं तदेतत्पुरुषार्थः । अभावस्यानस्यत्वाद्दुःखाभावस्य सुखलक्षणस्वरूपत्वाच्च ॥ ९ ॥

भाषा-इस लोकमें दुःख कभी मनुष्योंका प्यारा नहीं है, सबही दुःखके प्रति द्वेष दिखाया करते हैं, अत एव सब दुःखके अभाव कोई चाहते हैं । ऐसेही सुख प्रत्येक मनुष्यका परम प्यारा पदार्थ है इस कारण सबही सुखको खोजा करते हैं । अत एव दुःखका अभाव और सुखकी गवेषणा इन दोनोकोही पुरुषार्थ कहा जाता है, क्योंकि, दुःखका अभाव सुखसे पृथक् पदार्थ नहीं है, निःसन्देह दुःखका अभावही सुखस्वरूप है ॥ ९ ॥

स्रक्चन्दनादीनां सुखसाध्यत्वम् ।

किञ्च स्रक्चन्दनवनितानां सत्यपि तत्कारणत्वेनान्तरीयकदुःखसम्भेदादनर्थपरम्परापरिचितत्वादमूर्खाणां कोषाण्डकवदाभाषमाणत्वादनैकान्तिकत्वादत्यन्ततःविरहितत्वाच्च परिहरणीयत्वम् ॥ १० ॥

भाषा-माला, चन्दन और स्त्री ये सुखकी कारण हैं तो सत्य, परन्तु ये सब पदार्थ दुःखराशिसे मिले हैं और इन सबकी सेवा करनेसे अनर्थपरम्पराओंका होना सम्भव है; अत एव पंडितोको चाहिये कि इन सबोको छोड दे ॥ १० ॥

योगत्रयप्रशंसा ।

एकान्तात्यन्ततश्च पुनस्ते ह्युपायाः खलु हरिहरब्रह्माण इव तुल्या एव सम्भवन्ति । ज्ञानयोगः पवनयोगो रसयोगश्चेति । ननु कथमेतेषां तुल्यतेत्यपेक्षायां क्रमः । मोक्षोपाये बृहद्वसिष्ठादौ भुशुण्डोपाख्याने वसिष्ठवाक्यम् ॥ ११ ॥

भाषा-जैसे हरि, हर और ब्रह्मा इन तीनोमें कुछभी अन्तर नहीं है, वैसेही ज्ञानयोग, रसयोग और वायुयोग इन तीन उपायोमेभी किसी प्रकारका भेद दिखाई नही देता । इस विषयको भगवान् वसिष्ठजी बृहद्वासिष्ठके मोक्षप्रकरणके मध्य भुशुण्ड उपाख्यानमें कह गये हैं ॥ ११ ॥

असाध्यः कस्यचिद्योगः कस्यचित् ज्ञाननिश्चयः । द्वौ प्रकारौ ततो देवो जगाद परमः शिवः ॥ प्राणानां वा निरोधेन वासनानोदनेन वा । नो चेत् संविदमूर्च्छाणां करोषि तदयोगवान् ॥ द्वावेव हि समौ राम ज्ञानयोगाविमौ स्मृतौ ॥ १२ ॥

भाषा–हे राम ! महादेवजीने स्वयं कहा है कि कोई योगोपाय साध्यातीत है और कोई २ ज्ञाननिश्चित है इस कारण जो तुम प्राणवायुके रोकनेसे अथवा वासनाविदूरणरूप उपायसे ज्ञानको उद्दीप्त न करो तो तुम योगवान् नहीं हो सकोगे । हे राघव ! ये दोनों ज्ञानयोग बराबर (समान) जानो ॥ १२ ॥

तथा च रसार्णवे–रसश्च पवनश्चेति कर्मयोगो द्विधा स्मृतः । मूर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम् ॥ बद्धः खेचरतां कुर्यात् रसो वायुश्च भैरवि ॥ तस्मादेतेषां समानत्वमनवद्यम् । तत्राद्ययोः केवलं पक्वकषायाणामपि कथञ्चन साध्यत्वाच्चरमे तु पुनर्भोगलोलुपानामप्यधिकारित्वात्ताभ्यां समीचीनोऽयमिति कस्य न प्रतिभाति । किंच अस्य भगवन्निर्यासतया सेवकानां स्वेन सम्भूतसकलधातुत्वापादकस्य भगवतो रसराजस्य गुणसिन्धूनां कियन्तः पृषताः प्रसङ्गाल्लिख्यन्ते । यदाह भगवान् स्वयं महेश्वरः ॥ १३ ॥

भाषा–रसार्णवग्रंथमें लिखा है कि हे भैरवि ! रसयोग और पवनयोग ये दोनोंही कर्मयोग कहलाते हैं । मूर्च्छित रससे व्याधिका नाश होता है, स्वयं मृतरस जीवित कर देता है और बंधे हुए पारे और रुद्ध वायुसे अरसत्व प्राप्त होता है । बस इनकी परस्परसमानता स्पष्टही प्रमाणित होती है । केवल जितेन्द्रिय महात्मा लोगही अतिक्लेशसे आद्य दो ज्ञानयोगोंका साधन करते हैं, परन्तु भोगार्थी लोगभी दो कर्मयोगोंके अधिकारी हो सकते हैं । बस रसयोगकी सर्वश्रेष्ठता सबही मानते हैं । मैंने भगवान् रसराजके गुणसिन्धुसे केवल कुछ विन्दु उद्धृत करके इस ग्रंथमें मिलाये हैं ॥ १३ ॥

रसज्ञाने नित्याभ्यासः ।

अचिराज्जायते देवि शरीरमजरामरम् । मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ॥ सत्वं च लभते देवि विज्ञानं ज्ञानपूर्वकम् ।

सत्यं मंत्राश्च सिध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम् ॥ यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत् शक्तिकृन्तनम् । तावत् तस्य कुतः शुद्धिर्जायते मृतसूतके ॥ यावन्न हरबीजं तु भक्षयेत् पारदं रसम् । तावत्तस्य कुतो मुक्तिः कुतः पिण्डस्य धारणम् ॥ स्वदेहे खेचरत्वं वै शिवत्वं येन लभ्यते । तादृशे तु रसज्ञाने नित्याभ्यासं कुरु प्रिये ॥ १४ ॥

भाषा-स्वयं भगवान् महादेवजीनें पार्वतीजीसे कहा था । हे देवि ! रसयोगसे शीघ्र देह अजर अमर हो जाती है, शीघ्र चित्तसमाधि प्राप्त होती है, बल होता है और ज्ञान विज्ञानभी प्राप्त हो जाता है । मृतपारेका जो सेवन करता है, निःसन्देह उसको मंत्रासिद्धि होती है । जितने दिन शक्तिपात न हो, जितने दिनतक मायापाश न तोडा जा सके तबतक भस्म हुए पारेमें शुद्धिके प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं है । जबतक शिवबीज उदरमें न पडे तबतक मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती और तबतक मनुष्य शरीर धारण करनेमें समर्थ नहीं होता है । हे पार्वति ! जिसकरके अपने शरीरमें खेचरत्व और शिवत्वकी शक्ति जन्मे उस रसज्ञानका प्रतिदिन अभ्यास करो ॥ १४ ॥

पारदप्रशंसा ।

त्वं माता सर्वभूतानां पिता चाहं सनातनः । द्वयोश्च यो रसो देवि महामैथुनसम्भवः ॥ दर्शनात् स्पर्शनात्तस्य भक्षणात् स्मरणात् प्रिये । पूजनाद्रसदानाच्च दृश्यते षड्विधं फलम् ॥ केदारादीनि लिङ्गानि पृथिव्यां यानि कानिचित् । तानि दृष्ट्वा च यत् पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥ चन्दनागुरुकर्पूरकुंकुमान्तर्गतो रसः । मूर्च्छितः शिवपूजा सा शिवसान्निध्यसिद्धये ॥ भक्षणात् परमेशानि हन्ति तापत्रयं रसः । दुर्लभं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैः प्राप्यते परमं पदम् ॥ तद्व्योमकर्णिकान्तःस्थं रसेन्द्रं परमेश्वरि । स्मरन् विमुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः ॥ स्वयम्भूलिङ्गसाहस्रैर्यत्फलं सम्यगर्चनात् । तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ रसविद्या परा विद्या

त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभा । भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माज्ज्ञेया गुणान्विता ॥ ब्रह्मज्ञानेन सोऽयुक्तो यः पापी रसनिन्दकः । नाहं त्राता भवेत्तस्य जन्मकोटिशतैरपि ॥ आलापं गात्रसंस्पर्शं यः कुर्याद्रसनिन्दकैः । यावज्जन्मसहस्राणि स भवेत् पापपीडितः ॥ हेमजीर्णो भस्मसूतो रुद्रत्वं भक्षितो ददेत् । विष्णुत्वं तारजीर्णस्तु ब्रह्मत्वं भास्करेण तु ॥ तीक्ष्णजीर्णो धनाध्यक्षं सूर्यत्वं चापि तालके । राजरे तु शशाङ्कत्वमजरत्वं च रोहणे ॥ सामान्येन तु तीक्ष्णेन शत्रुत्वमाप्नुयान्नरः । दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः ॥ मारितो रुद्ररूपी स्यात् बद्धः साक्षात् सदाशिवः ॥ ईदृशस्य गुणानां पर्यवसानमम्बुजसम्भवोऽपि महाकङ्कैरपि वचोभिर्न सादयितुमलमित्यलं बहुना ॥ यद् यद् मयाक्रियत कारयितुं च शक्यं सूतेन्द्रकर्म तदिह प्रथयाम्बभूवे । अध्यापयन्ति य इदं न तु कारयन्ति कुर्वन्ति नेदमधियन्त्यभये मृषार्थाः ॥ १८ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणौ रससिद्धान्तप्रकरणे शास्त्रावतारो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

भाषा—हे प्यारि ! तुम सर्व प्राणियोंकी माता हो और मैंही सनातन पिता हूं । हम दोनोंके महामैथुनसे जो पारा उत्पन्न हुआ है जिसके देखने, छूने, सेवन करने और अर्चन करने अथवा दान करनेसे छः प्रकारका फल मिलता है । केदारादि लिङ्ग जो संसारमें विराजमान हैं तिनके दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है, केवल एक पारेका दर्शन करनेहीसे वह पुण्य प्राप्त हो सकता है । जिस पारेको चन्दन, अगर, कुङ्कुम और कपूरके अन्तर्गत कर शिवपूजनके साथ मूर्च्छित किया जाय तो तिससे शिवकी निकटता प्राप्त होती है और उस पारेके सेवन करनेसे त्रिविध ताप दूर होते हैं । ब्रह्मा, विष्णु आदि देवतालोगभी इस पारेके प्रसादसे दुर्लभ परम पदको प्राप्त किया करते हैं । हे ईश्वरि ! हृदयाकाशमें जो कर्णिका स्थित है, तिसके भीतर स्थित हुए रसेन्द्रको स्मरण करनेसे शीघ्र जन्म-जन्मान्तरके पापोंसे छुटकारा मिल जाता है । सहस्र २ शिवलिङ्गकी पूजा करनेसे जो पुण्य होता है, तिससे करोडगुणा फल पारदलिङ्गकी पूजा करनेसे होता है । रसविद्या परमविद्या कहलाती है । त्रिलोकीमें दुर्लभ इस विद्याको मुक्तिकी देनेवाली

और भोगकी जननी जानो। जो पातकी पारेकी निन्दा करता है, करोड २ जन्ममेंभी उसका उद्धार नहीं होता। रसकी निन्दा करनेवालेके साथ बातचीत करने या उसकी देहको छूनेसे सहस्र जन्मतक भयंकर दुःख भोगना पडता है। कांचनके साथ मिलाकर पारेकी भस्म सेवन करनेसे रुद्रपन प्राप्त होता है। ऐसेही चांदीके साथ सेवन करनेसे विष्णुत्व, भास्कर लोहेके साथ सेवन करनेसे ब्रह्मत्व, लोहेके साथ सेवन करनेसे कुबेरत्व, तालक लोहेके साथ सेवन करनेसे भास्करत्व राजर लोहेके साथ सेवन करनेसे चंद्रत्व, रोहिण लोहेके साथ सेवन करनेसे अजरत्व और साधारण लोहेके साथ पारदभस्म सेवन करनेसे इन्द्रत्व प्राप्त होता है। दोषहीन पारा मूर्तिमान् ब्रह्मा, मूर्च्छितपारा स्वयं जनार्दन, मारा हुआ पारा रुद्र और बंधा हुआ पारा साक्षात् सदाशिवस्वरूप है। हे प्रिये! स्वयं ब्रह्माजीभी महान् वचनोंसे पारेके गुणोका वर्णन कर पूरा २ नहीं कर सकते। मैंने जितने प्रकारके पारेके कार्य सिद्ध किये हैं और जितने प्रकारके कार्य करनेको समर्थ हूं, वे समस्तही इस पुस्तकमें प्रकाशित हुए। जो गुरु केवल शिक्षाही देते हैं, परन्तु कार्यमे प्रत्यक्ष नहीं दिखा देते और जो लोग केवल पढतेही हैं, परन्तु कार्यमें प्रत्यक्ष परीक्षा नहीं करते, उन सबकाही परिश्रम विफल होता है॥ १९॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणिनामकग्रन्थे रससिद्धान्तप्रकरणे पडितबलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां शास्त्रावतारनामक प्रथम अध्याय॥ १॥

द्वितीयोऽध्यायः।

अथ मूर्च्छाध्यायं व्याचक्ष्महे॥ १॥

भाषा-अब पारेका मूर्च्छनाध्याय कहा जाता है। जो विना व्यभिचारमें रोगका नाश करता है, तिसकाही नाम मूर्च्छना है। (इसकाही दूसरा नाम रूपान्तरप्राप्ति है)॥ १॥

अव्यभिचारितव्याधिघातकत्वं मूर्च्छना। तत्तत्तन्त्रनिगदितदेवतापरिचरणस्मरणानन्तरं तत्तच्छोधनप्रक्रियाभिः बह्वीभिः परिशुद्धानां रसेन्द्राणां तृणारणिमणिजन्यवह्निन्यायेन तारतम्यमवलोकमानैः सूक्ष्ममतिभिः पलार्द्धेनापि कर्त्तव्यः संस्कारः सूतकस्य चेति रसार्णववचनात् व्यावहारिकतोलकचतुष्टयपरिमाणेनापि परिशुद्धो रसो मूर्च्छयितव्यः॥ २॥

भाषा–तंत्रमें कही हुई देवताकी पूजा और उसके चरणोंका ध्यान करके विविधभांतिसे शुद्ध हुए पारेके अनेक अन्तर देखे जाते हैं । तिनके काठ और मणिसे निकली हुई अग्निके भेदसेही यह समस्त अन्तर होता है । सूक्ष्ममतिवाले विद्वान् लोग उस अन्तरको देखकर आधा पल पारा ग्रहण करके शुद्ध करे । रसार्णव ग्रंथके मतानुसार चार तोले पारा लेकर मूर्च्छित करना चाहिये ॥ २ ॥

मूर्च्छनाप्रकारस्तु बहुविधः । तत्र षड्गुणगन्धकजारणप्रक्रिया साधीयसीति निगद्यते ॥ ३ ॥

भाषा–पारेकी मूर्च्छनाविधि अनेक प्रकारकी है । तिनमें षड्गुण गन्धक करके जारणही श्रेष्ठ कहा है । उसकाही वर्णन किया जाता है ॥ ३ ॥

रसगुणबलिजारणं विनायं न खलु रुजाहरणक्षमो रसेन्द्रः । न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रसिद्धिः ॥ ४॥

भाषा–इस प्रकार प्रसिद्धि है कि षड्गुण बलिजारणके विना कभीभी पारा रोगविनाश करनेमें समर्थ नही होता और अभ्रक व स्वर्णके सहित पाकक्रिया सिद्ध न होनेपर पारेका भलीभांतिसे रसायनके लायक होना मुमकिन नहीं ॥ ४ ॥

अथ वालुकायंत्रप्रकारः ।

तन्निमित्तकं सिकतायन्त्रद्वयं कथ्यते । निरावधिनिर्पीडितमृदम्बरादिपरिलिप्तामतिकठिनकाचघटीमग्रे वक्ष्यमाणप्रकारां रसगर्भिणीमधस्तर्ज्जन्यङ्गुलिप्रमाणितच्छिद्रायामनुरूपस्थामलिकायामारोप्य परितस्तां द्वित्र्यङ्गुलिमितेन लवणेन निरंतरालीकरणपुरःसरं सिकतारापूर्य्य वर्द्धमानकमापूरणीयम् । क्रमतश्च त्रिचतुराणि पंचकानि वा वासराणि ज्वालनज्वालया पाचनीयमित्येकं यंत्रम् ॥ ५ ॥

भाषा–षड्गुण बलिजारणके लिये दो प्रकारके वालुकायंत्रका वर्णन होता है । पहले कर्दमलिप्त वस्त्रखण्डसे एक कांचकी कुप्पीपर सात पर्त लगावे । जब यह कुप्पी सूख जाय तो उसमें कहे अनुसार पारा व गन्धक खरलमें मर्दन करके स्थापन करे । फिर कांचकुप्पीके अनुसार एक हांडी लेकर उसकी तलीके ठीक बीचमें एक छिद्र करे । छिद्र तर्जनी अंगुलीके बराबर हो । फिर इस पारेसे भरी हुई कुप्पीको हांडीमे रखकर दो अंगुल या तीन अंगुल लवणसे निरन्तराल करे । फिर सारी हांडीमे रेता भरकर उसके मुखपर एक सरैया ढक दे । फिर

उस हांडीको चूल्हेपर चढाय तीन चार या पांच दिनतक विधिपूर्वक आंच देता रहे । इस प्रकार करनेसे पाकक्रिया करनी सिद्ध होती है । इसकाही नाम वालुकायंत्र है ॥ ५ ॥

भूधरयंत्रप्रयोगः ।

हस्तैकमात्रप्रमाणभूधरान्तर्निखातां प्राग्वत् काचघटीं नातिचिपिटमुखीं नात्युच्चमुखीं मसीभाजनप्रायां खर्परचक्रिकया वा निरुद्धवदनविवरां मृण्मयीं वा विधाय करीषैरुपरि पुटो देयः । इत्यन्यद्यन्त्रम् ॥ ६ ॥

भाषा-दूसरी प्रकारके यंत्रको भूधरयंत्र कहते हैं । अब उसका विषय कहा जाता है । पहले वालुकायंत्रमें जिस प्रकार कहा है, वैसेही कपड़मिट्टीसे कांचकी शीशीपर सात पर्त्त करे और पहलेकी अनुसार पारा और गन्धक उस सूखी आतिशी शीशीमें भरकर उसका मुख खपरियाकी चकतीसे या कांचकी डाटसे बंद करे । शीशीका मुँह अधिक चपटा या अधिक ऊंचा न हो, दवातके मुँहकी समान हो । फिर हाथभरका एक गढा करके तिसमें शीशीको रखके तिसके ऊपर बेलगिरी डालकर गढेको पूर्ण करे फिर पुट देना चाहिये ॥ ६ ॥

अत्र कज्जलीकरणमन्तरेण केवलगन्धकमपि साम्येन जारयन्ति ॥ ७ ॥

भाषा-इस स्थानमें कज्जलीके विनाभी केवल गन्धकसेही जारण कार्य हो जाता है ॥ ७ ॥

अथ सिन्दूरपाकः ।

कूपीकोटरमागतं रसगुणैर्गन्धं तुलायां विभुं विज्ञाय ज्वलनं क्रमेण सिकतायंत्रे शनैः पाचयेत् । वारं वारमनेन वह्निविधिना गन्धक्षयं साधयेत् सिन्दूरद्युतितोऽनुभूय भणितः कर्मक्रमोऽयं मया ॥ ८ ॥

भाषा-पारे व गन्धकको एक साथ खरल करके शीशीके भीतर भर मन्द २ आंच लगावे इस प्रकार करनेपर क्रम २ से गन्धक जल जाता है । इस प्रकारकी विधिसे वारंवार षड्गुण गन्धक जारण होता है । अनुभवसे सिन्दूरपाकका निर्णय करना चाहिये ॥ ८ ॥

रसमन्तरेण हिंगुलगन्धाभ्यामपि सिन्दूरं सम्पाद्यम् ॥ ९ ॥

भाषा-विना पारेकेभी केवल सिंगरफ और गन्धकसे सिन्दूरपाक हो जाता है॥९॥

कज्जलीकरणम्।

अन्यच्च-त्रिगुणमिह रसेन्द्रमेकमंशं कनकपयोधरतारपंकजानाम्। रसगुणबलिभिर्विधाय पिष्टिं रचय निरंतरमम्बुभिः कुमार्याः॥ १०॥

भाषा-तीन भाग रस, एक२ भाग सुवर्ण, चांदी, अभ्रक और पद्मपत्र व छः भाग गन्धक इन सबोंको इकट्ठा करके घीक्वारके रसमें पीसकर पिट्ठी बनावे॥१०॥

अन्यच्च-आषड्गुणमधरोत्तरसमादिबलिजारणेन योज्येयम्। योगे पिष्टिः पाच्या कज्जलिकार्थं जारणार्थं च॥ प्रकारोऽयमधोयंत्रेणैव सिद्ध्यति न पुनरूर्ध्वयन्त्रेण॥ ११॥

भाषा-इस यंत्रमेभी पहलेकी समान रसादि गन्धक जारणद्वारा क्रम २ से छः गुण जारित करके तदुपरान्त कज्जली करे और जारणके लिये पिट्ठी बनाकर अधोयंत्रमे पाक करना चाहिये। ऊर्ध्वपातनका कार्य इस यंत्रसे नहीं होता॥ ११॥

सहस्रवेधी पारदः।

कायमृत्तिकयोः कूपी हेमायःसारयोः क्वचित्। कीलालायःकृतो लेपः खटिकालवणाधिकः॥ अनेन यन्त्रद्वितयेन भूरि हेमाभ्रसत्वाद्यदि जारयन्ति। यथेच्छमच्छैः सुमनोविचारैर्विचक्षणाः पल्लवयन्तु भूयः॥ अन्तर्धूमविपाचितशतगुणगन्धेन बन्धितः सूतः। स भवेत् सहस्रवेधी तारे ताम्रे सुवर्णे भुजंगे च॥१२॥

भाषा-अधिक खड़िया, लवण और लोहचून मिली कर्दम (कीचड़) से काचकुप्पीको अथवा लोहसारकी बनी कुप्पीको, स्वर्णकी बनी हुई कुप्पीको लेप किया जाय तो उसमे स्वर्णादि समस्त धातु जारित हो जाती हैं। इसके सिवाय बुद्धिमान् महात्मा लोग बुद्धिमानीके बलसे अनेक प्रकारकी विधि प्रकट किया करते हैं। जो शतगुण गन्धक अन्तर्धूममे पाचित हुआ हो तिससे पारा अन्तर्धूममें बंधे तो वह पारा, चांदी, तांबा, रांगादि समस्त धातुमेंही सहस्रवेधी होता है॥१२॥

बहिर्धूमः।

सूतप्रमाणं सिकताख्ययन्त्रे दत्त्वा बलिं मृद्घटितैलभाण्डे। तैलावशेषेऽत्र रसं निदध्यात् मग्नार्द्धकायं प्रविलोक्य भूयः॥

आषड्गुणं गन्धकमल्पमल्पं क्षिपेदसौ जीर्णबलिर्बली स्यात् । रसेषु सर्वेषु नियोजितोऽयमसंशयं हंति गदं जवेन ॥ नागादि-शुल्बादिभिरत्र पिष्टं वादेषु योगेषु च निःक्षिपन्ति ॥ १३ ॥

भाषा-अब बहिर्धूम कहा जाता है । पारेकी बराबर गन्धक ग्रहण करे । पहले तेलके पात्रको वालुकायंत्रमें रखके तिसमे वह गन्धक डाले । गन्धकके गलनेपर जब केवल तेल शेष रह जाय तो उसमें पारा डाले । धीरे २ गन्धकका नाश होनेपर जब पारा आधा जाग जाय तो फिर उस पात्रमें पारेकी समान गन्धक डाल दे । इस प्रकार क्रमसे छः गुण गन्धकके क्षय करके जो पारा तैयार हो वह निःसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् होगा । सब औषधियोंमें इस पारेका व्यवहार होनेसे विशेष फल होता है । शीशा तांबा आदि धातुओंके साथ मर्दन करके समस्त रोगोंमें इस पारेका प्रयोग होता है ॥ १३ ॥

पारदबंधसाधनानि ।

स्नुह्यर्कसम्भवं क्षीरं ब्रह्मबीजानि गुग्गुलुः ।
सैन्धवं द्विगुणं मर्द्यं निगडोऽयं महोत्तमः ॥ १४ ॥

भाषा-तिधारे थूअरका दूध, आकका दूध, आकके बीज और गूगल इन सबोंको बराबर ले, सेंधा दूना ले फिर पीस ले तो वह द्रव्य पारेके बाँधनेकी श्रेष्ठ बेड़ी है ॥ १४ ॥

सर्वरोगहरी कर्पूरप्रक्रिया ।

स्थाल्यां दृढघटितायामर्धं परिपूर्य तुर्यलवणांशैः । रक्तेष्टकार-जोभिस्तदुपरि सूतस्य तुर्यांशम् ॥ सितसैन्धवं निधाय स्फटि-कारीं तत्समं च तस्योर्ध्वं । स्फटिकारिधवलसैंधवशुद्धरसैः कन्यकाम्बुपरिघृष्टैः ॥ कृत्वा पर्पटमुचितं तदुपर्याधाय तद्वदेव पुनः । स्फटिकारिसैन्धवरसो दद्यादितः स्खलनो रसस्य ॥ लाभाय तदुपारि खर्परखण्डकान् कृत्वा परया । दृढस्थाल्या च्छाद्य मुद्रयित्वा दिवसत्रितयं विपचेद्विधिना । अत्रानुक्तमपि भल्लातकं ददति वृद्धाः पारदतुल्यम् ॥ १५ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणौ रससिद्धान्तप्रकरणे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

भाषा-अब सर्वरोगहरी कर्पूरप्रणाली कहते हैं । एक मजबूत थाली बना-कर लवणसे उसके चौथे भागको पूर्ण करे । फिर उसके ऊपर ईंटका चूरा, तिसके

ऊपर पारेसे चौथाई सेंधा, उसके ऊपर सेंधेकी बराबर फटकरी डाले । अनन्तर फटकरी, कपूर, सेंधा और शुद्ध पारा बराबर ले घीकारके रसमें पीसकर पर्पटी करे । उस पर्पटीको भाण्डस्थित फटकरीके ऊपर देकर उसके ऊपर फटकरी और पिसा हुआ सेंधा डालकर उसके ऊपर कईएक खपरे लगाना चाहिये । उसके ऊपर पहली कही रीतिसे और एक दृढ थाली ढककर रोध कर दे फिर तीन दिन तक अग्निमें पका ले । यहां भिलावा नहीं लिखा है परन्तु वृद्ध चतुर महात्मा लोग पारेकी बराबर भिलावा डालते हैं ॥ १५ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थे रससिद्धान्तप्रकरणे पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृत-
भाषाटीकायां द्वितीय अध्याय ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातो बन्धनाध्यायं व्याचक्ष्महे । स्वाभाविकद्रवत्वे सति वह्निनानुच्छिद्यमानत्वं मूर्तिबद्धत्वम् ॥ विपिनौषधिपाकसिद्धं घृततैलाद्यपि दुर्निवारवीर्यम् । किमयं पुनरीश्वराङ्गजन्मा घनजाम्बूनदचित्रभानुजीर्णः ॥ १ ॥

भाषा–अब पारेका बन्धनाध्याय कहते हैं । जो स्वभावसेही तरल है और अग्निसे छीजता नहीं उसका नाम मूर्तिमान् है जब कि घी तेल इत्यादि बनैली औषधियोंके साथ पाचित होकर अपार वीर्यवान् हो जाते हैं । तब पारेका ताम्रादिके साथ अग्निमें जारित होकर दुर्निवार वीर्यवान् होना कोई अचरजकी बात नहीं है ॥ १ ॥

पारदसाधनक्रिया ।

एतत्साधकान्यूनविंशतिकर्म्माणि भवन्ति । स्वेदनमर्द्दनमूर्च्छनोत्थापनपातनबोधननियमनदीपनानुवासनगगनादिग्रासप्रमाणचारणगर्भद्रुतिबाह्यद्रुतियोगजारणरंजनसारणक्रामणवेधनभक्षणानि ॥ २ ॥

भाषा–पारेकी साधनक्रिया उन्नीस प्रकारकी है । यथा १ स्वेदन, २ मर्दन, ३ मूर्च्छन, ४ उत्थापन, ५ पातन, ६ बोधन, ७ नियमन, ८ दीपन, ९ अनुवासन, १० अभ्रादिग्रासप्रमाण, ११ चारण, १२ गर्भद्रुति, १३ बाह्यद्रुति, १४ योगजारण, १५ रंजन, १६ सारण, १७ क्रामण, १८ वेधन, १९ भक्षण ॥ २ ॥

अथ मर्दनमूर्च्छनोत्थापनम् ।

संपूज्य श्रीगुरुं कन्यां बटुकं च गणाधिपम् । योगिनीं क्षेत्रपालांश्च चतुर्द्धाबलिपूर्वकम् ॥ सूतं हरस्य निलये सुमुहूर्त्ते विधोर्बले । खल्वे पाषाणजे लोहे सुदृढे सारसम्भवे ॥ तादृशस्वच्छमसृणचतुरंगुलमर्द्दके । निक्षिप्य सिद्धमंत्रेण रक्षितं द्वित्रिसेवकैः ॥ भिषङ् निमर्द्दयेत् चूर्णैर्मिलित्वा षोडशांशतः । सूतस्य गालितैर्वस्त्रैर्वक्ष्यमाणद्रवादिभिः ॥ मर्द्दयेन्मूर्च्छयेत् सूतं पुनरुत्थाप्य सप्तशः । रक्तेष्टकानिशाधूमसारोर्णाभस्मतुम्बिकैः ॥ जम्बीरद्रवसंयुक्तं नागदोषापनुत्तये । राजीवृक्षस्य मूलस्य चूर्णेन सह कन्यया॥मलदोषापनुत्त्यर्थं मर्द्दनोत्थापने शुभे । कृष्णधत्तूरकद्रावैश्चांचल्यविनिवृत्तये ॥ त्रिफलाकन्यकातोयैर्विषदोषोपशान्तये । गिरिदोषं त्रिकटुना कन्यातोयेन यत्नतः ॥ चित्रकस्य च चूर्णेन सकन्येनाग्निनाशनम् । आरनालेन चोष्णेन प्रतिदोषं विशोधयेत् ॥ एवं संशोधितः सूतः सप्तकंचुकवर्जितः । जायते कार्यकर्त्ता च ह्यन्यथा कार्यनाशनः ॥ उत्थापनाविशिष्टं तु चूर्णं पातनयंत्रके । धृत्वोर्ध्वभाण्डे संलग्नं संहरेत् पारदं भिषक् ॥ ३ ॥

भाषा-अब पारेका मर्दन, मूर्छन व उत्थापन संस्कार कहा जाता है । चतुर वैद्य चन्द्रशुद्धियुक्त शुभ मुहूर्त्त देख शिवमन्दिरमे जाय चार प्रकारसे बलि देकर श्रीगुरु, गुरुकन्या, बटुकदेव, गणेश, योगिनी और क्षेत्रपालकी पूजा करके पत्थरके मजबूत खरलमें या लोहेके खरलमे पारेको पातित करे । जितना पारा हो उससे सोलहवां भाग ईंटका चूर्ण, हलदीका चूर्ण, मेषलोमभस्म और जम्बीरीका रस लेकर प्रत्येक द्रव्यसे पारेका तीन दिनतक मर्दन करे । फिर ऊर्द्ध्वपातनयंत्रसे यंत्रके भीतर बांधकर डुबा रक्खे । पारेका नाग (शीशा) दोषनाश करना हो तो धूआं सोलहवां हिस्सा, ऊनकी भस्म, तूम्बी और जंबीरीके रसके साथ पारेको एक दिनतक पीसे, अमलतासकी जडका चूर्ण और घीकारके रसके साथ पीसने और उत्थापन करनेसे पारेका मलदोष नाश हो जाता है । काले धतूरेके रससे पीसे तो पारेका चांचल्यदोष दूर हो । विषदोषको मारना हो तो पारेको त्रिफला और घीकारके रसम घोटे । पारेका गिरिदोष नाश करना हो तो त्रिकटु और

घीकारके रससे घोटे । चित्रकचूर्ण और घीकारके रसमें घोटनेसे पारेका अग्निदोष दूर होता है । गरम कांजीके साथ घोटनेसे प्रतिदोष दूर होता है । इस प्रकार शुद्ध करनेसे पारेके सात दोष दूर होते हैं । ऐसाही पारा कार्यके योग्य होता है, नहीं तो अशुद्ध पारा कार्यका नाश करता है । पातनयंत्रके ऊपरके पात्रमें लगा हुआ पाराही वैद्योंको ग्रहण करना चाहिये । इस प्रकारसेही पारेका मर्दन, मूर्च्छन और उत्थापन कहा गया ॥ ३ ॥

अथ स्वेदनविधिः ।

रसं चतुर्गुणे वस्त्रे बद्ध्वा दोलाकृतं पचेत् ।
दिनं व्योषवरावह्निकन्याकल्केषु कांजिके ॥
दोषशेषापनुत्त्यर्थमिदं स्वेदनमुच्यते ॥ ४ ॥

भाषा-अनन्तर पारेकी स्वेदन विधि कही जाती है । पारेको चार पर्त कपड़ेमें बांधकर एक दिन त्रिकटुके कल्कके साथ, एक दिन त्रिफलाकल्कके साथ, एक दिन हरिद्राकल्कके साथ, एक दिन चित्रक कल्कके साथ, एक दिन घीकारके कल्कके साथ दोलायंत्रमें पाक कर ले । इस प्रकार करनेसे पारेका स्वेदनसंस्कार हो जाता है ॥ ४ ॥

अथ ऊर्ध्वपातनविधिः ।

भागास्त्रयो रसस्यार्कचूर्णमंशं सनिम्बुजम् । मर्दयेद्द्रवयोगेन यावदायाति पिण्डताम् ॥ तं पिण्डं तलभाण्डस्थमूर्ध्वभाण्डे जलं क्षिपन् । कृत्वालवालं केनापि ततः सूतं समुद्धरेत् ॥ ऊर्ध्व-पातनमित्युक्तं भिषग्भिः सूतशोधने । ससूतभाण्डवदनमन्य-द्विलति भाण्डकम् ॥ तथा सन्धिर्द्वयोः कार्यः पातनत्रयय-न्त्रके । यन्त्रप्रमाणं वदनाद्धुराज्ञेयं विचक्षणैः ॥ रसस्य मानं नियमात् कथितुं नैव शक्यते ॥ ५ ॥

भाषा-अब पारेकी ऊर्ध्वपातनक्रिया कही जाती है । तीन भाग पारा और एक भाग ताम्रचूर्ण इकट्ठा करके जबतक रसमें पिण्ड बंध जाय तबतक विजौरा नींबूके रसम मर्दन करे । फिर इस पिण्ड किये हुए द्रव्यको एक हांडीमें धरकर वैसीही और एक हांडी उलटी करके उसके ऊपर धरे । दोनों हांडियोंके जोड स्थानको भलीभांतिसे लेप करके अग्नितापपर चढावे । फिर ऊपरकी हांडीके ऊपरी भागमें थांवला बनाकर तिसमें पानी डालनेसे आग्निके ताप करके भीतरका पारा ऊपरको चढकर हांडीकी बगलोंमें लग जायगा इसकोही पारेकी ऊर्ध्वपातन

क्रिया कहते हैं । यंत्रका परिमाण गुरुसे जाने अर्थात् पारेके परिमाणके अनुसार यंत्रका परिमाण निर्णय करे। इस कारण अनुमानसे वह नहीं कहा जा सकता ॥५॥

अथ अधःपातनविधिः ।

नवनीतार्द्रकं सूतं घृष्ट्वा जम्भाम्भसा दिनम् । वानरीशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरसंयुतैः ॥ नष्टपिष्टं रसं ज्ञात्वा लेपयेदूर्ध्वभाण्डके। ऊर्ध्वभाण्डोदरं लिप्त्वा त्वधोगं जलसम्भृतम् ॥ सन्धिलेपं द्वयोः कृत्वा तं यन्त्रं भुवि पूरयेत् । उपरिष्टात् पुटे दत्ते जले पतति पारदः ॥ अधःपातनमित्युक्तं सिन्धाद्यैः सूतकर्मणि ॥ ६ ॥

भाषा—अब पारेकी अधःपातनविधि कही जाती है । पहले मक्खन, अदरख और पारा इन तीनोंको इकट्ठा करके जम्बीरीके रसमें एक दिन घोटे। फिर कौंचकी डाढी, सहजनेकी जड, चीताकी मूल, सेंधा और राई सरसों इन सबोंको बराबर लेकर घने भावसे मर्दन करे । फिर पहला घोटा हुआ द्रव्य और यह मला हुआ द्रव्य इकट्ठा करके ऊपरके पात्रकी तलीमें लेप दे। फिर नीचेकी हांडीमे जल भरकर तिसके ऊपर ऊपरका पात्र उलटा करके रख दे और जोडपर भलीभांति लेप करे अनन्तर जलपूर्ण हांडी पृथ्वीमें रखकर ऊपरके पात्रमें अरने उपलोंकी आगसे पुट दे । ऐसा करनेसे ऊपरके पात्रका पारा नीचेकी हांडीके जलमें गिर जाता है । इसकोही पारेकी अधःपातनक्रिया कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ तिर्यक्पातनविधिः ।

घटे रसं विनिःक्षिप्य सजलं घटमन्यकम् । तिर्यङ्मुखं द्वयं कृत्वा तन्मुखं बोधयेत्सुधीः॥ रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत् सूतो जलं विशेत् । तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥७॥

भाषा—अनन्तर पारेका तिर्यक्पातन कहा जाता है । एक घडेमे पारा और दूसरे घडेमें जल भरकर दोनों घडोंको तिरछे भावसे स्थापित करके दोनोंका जोडस्थान जोड दे । फिर जबतक पारा जलमें प्रवेश न करे तबतक पारेवाले घडेमें जल डाले सिद्धनागार्जुनादि ऋषियोंने इसकोही पारेका तिर्यक्पातन कहा है ॥ ७ ॥

अथ बोधनविधिः ।

मिश्रितौ चेद्रसे नागवङ्गौ विक्रयहेतुना । ताभ्यां स्यात् कृत्रि-

मो दोषस्तन्मुक्तिः पातनत्रयात् ॥ एवं कदर्थितः सूतः पण्ढत्वमधिगच्छति । तन्मुक्तयेऽस्य क्रियते बोधनं कथ्यते हि तत् ॥ विश्वामित्रकपाले वा काचकूप्यामथापि वा । सृष्टाम्बुजं विनिःक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥ पूरयेत्त्रिदिनं भूम्यां राजहस्तप्रमाणतः । अनेन सूतराजोऽयं पण्ढभावं विमुंचति ॥ ८ ॥

भाषा–अब पारेकी बोधनविधि कही जाती है । रोजगारी लोग विक्रीके लिये पारेके साथ शीशा और रांगा मिलाते हैं । इस हेतुसे पारेमें जो बनावटका दोष उत्पन्न होता है उसहीका नाम पण्ढत्व दोष है । तीन पातन अर्थात् ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् इन तीन प्रकारके पातनसे यह दोष नाशको प्राप्त होता है । जिस रीतिसे पारेका पण्ढत्वदोष दूर होता है, तिसकाही नाम शोधन है । पहले पारेको नारियलके पात्रमें अथवा कांचकी शीशीमें रखके तिसमें इस परिमाणसे ऋद्धिका क्वाथ और सुगन्धवालेका क्वाथ डाले कि जिससे पारा तिसमें डूबा रहे । फिर जमीनमें एक हाथ गहरा गढा खोदकर वह पात्र इस गढेमें तीन दिनतक दाब रक्खे। ऐसा करनेसे पारेका पण्ढत्वदोष दूर हो जाता है । इसकोही पारेका बोधन कहते हैं ॥ ८ ॥

मतान्तरम् ।

लवणेनाम्लपिष्टेन हण्डिकान्तर्गतं रसम् । आच्छाद्याम्लजलं किंचित् क्षिप्त्वा स्रावेण बोधयेत् ॥ ऊर्द्ध्वं लघु पुटं देयं लब्धाश्वासो भवेद्रसः ॥ ९ ॥

भाषा–दूसरे मतसे पारेकी शुद्धि करना । यथा अम्लवर्गका रस और लवणके सहित पारेको घोटकर हांडीके भीतर रक्खे फिर उसमे थोडासा खट्टा पानी डालकर एक सरैयासे हांडीका मुँह ढक दे । फिर मिट्टीसे जोडके स्थानपर लेप करके ऊपरके भागमें लघु पुट देना उचित है । ऐसा करतेही पारेकी बोधनक्रिया हो जाती है और पारा दोषरहित हो जाता है ॥ ९ ॥

मतान्तरम् ।

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वमेवं भवेदस्य रसस्य पश्चात् ।
वीर्यं प्रकर्षाय च भूर्जपत्रे स्वेद्यो जले सैन्धवचूर्णगर्भे ॥ १० ॥

भाषा–इस प्रकार कदर्थनसे पारा वीर्यहीन हो जावे तो उसको भोजपत्रसे लपेटकर सेंधा चूर्ण पडे हुए जलमें दोलायंत्रमें स्वेद दे । ऐसा करनेसे वह फिर वीर्यवान् हो जाता है ॥ १० ॥

अथ नियमनम्।

सर्पाक्षीचिंचिकावन्ध्याभृङ्गाम्बुकनकाम्बुभिः।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात् स्थिरतां व्रजेत् ॥ ११ ॥

भाषा-सरफोका वा नागनी, इमली, बांझककोडा, भांगरा, नागरमोथा और धतूरा इन सबके रसके साथ मन्दी आगपर पारेको स्वेदित करे। इस प्रकार करनेसे पारा स्थिर हो जाता है। इसकोही पारेका नियमन कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ दीपनम्।

कासीसं पंचलवणं राजिकामरिचानि च। भूशिग्रुबीजमेकत्र टङ्कणेन समन्वितम् ॥ आलोड्य काञ्जिके दोलायंत्रे पाकाद्दिनैस्त्रिभिः। दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य जारणे ॥ अथवा चित्रकद्रावैः कांजिके त्रिदिनं पचेत् ॥ १२ ॥

भाषा-अब पारेकी दीपनाक्रियाका वर्णन होता है। कासीस, पांचों नोन, राई, मिरच, सहजनेके बीज और सुहागा इन सबको बराबर लेकर इकट्ठा मलकर कांजीके साथ मिलावे। फिर इस कांजीमे पारेको दोलायंत्रकी विधिसे तीन दिन पकावे तो पारेकी दीपनक्रिया हो जाय। ऐसा करनेसे पारेकी दीपनशक्ति बढती है। इसके सिवाय चीतेके रसमें मिलाय कांजीमें (दोलायंत्रकी विधिसे) पचावे तोभी पारेकी दीपनक्रिया हो जाय ॥ १२ ॥

अथ अनुवासनम्।

दीपितं रसराजं तु जम्बीररससंयुतम्।
दिनैकं धारयेत् घर्मे मृत्पात्रे वा शिलोद्भवे ॥ १३ ॥

भाषा-अब पारेका अनुवासन कहा जाता है। मिट्टी या पत्थरके बरतनमे जम्बीरीके रसके साथ दीपित पारेको डालके एक दिन धूपमें रक्खे। इस प्रकार करनेसे पारेकी अनुवासनक्रिया हो जाती है ॥ १३ ॥

अथ जारणविधिः।

जारणा हि नाम पातनगालनव्यतिरेकेण घनहेमादिग्रासपूर्वकपूर्वावस्थाप्रतिपन्नत्वम्। किंच घनहेमादिलोहजीर्णस्य कृतक्षेत्रीकरणानामेव शरीरिणां भक्षणेऽधिकार इत्यभिहितम्। फलं चास्य स्वयमीश्वरेणोक्तम् ॥ १४ ॥

भाषा—पातन और गालनके सिवाय अभरक और स्वर्णादिके ग्रास करके पारेको पहली अवस्थाका करतेही तिसको जारण कहा जाता है । अभरक और स्वर्णादिसे जारित हुए पारेको शरीरधारी सेवन करे । महादेवजीने स्वयं पारेके सेवन व जारणका जो फल कहा है, वह कहा जाता है ॥ १४ ॥

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रसजारणा । तत्प्राप्तौ प्राप्यमेव स्याद्विज्ञानं मुक्तिलक्षणम् ॥ मोक्षाभिव्यंजकं देवि जारणात् साधकस्य तु । स्ववस्तु पिण्डिका देवि रसेन्द्रो लिङ्गमुच्यते ॥ मर्द्दनं वन्दनं चैव ग्रासः पूजाभिधीयते । यावद्दिनानि वह्निस्थो जारणे धार्यते रसः ॥ तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते । दिनमेकं रसेन्द्रस्य यो ददाति हुताशनम् ॥ द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ १५ ॥

भाषा—महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था । हे देवि ! समस्त पातकोंके दूर हुए विना कभी पारेका जारण सिद्ध नहीं होता । इस कारण पारेका जारण सिद्ध होतेही मोक्षके लक्षणोंका ज्ञान हो जाता है । हे पार्वति ! पारेका जारणही साधकको मुक्तिका दिखानेवाला है । हे प्रिये ! गन्धक पिण्डी और पारा लिंगस्वरूप है । अत एव इन दोनोंका पीसना, बांधना और सेवन करनाही पूजा कहाता है । जारणके लिये पारा जितने दिनोंतक अग्निमें रखाया जाता है जारक पुरुष उतनेही सहस्रवर्ष-तक शिवधाममें पूजित होता है । जो महात्मा केवल एक दिन पारेमें आंच लगाता है उसके सारे पाप दूर हो जाते हैं, फिर तिसको पाप नहीं लगते ॥ १५ ॥

अथ ग्रासनादिविधिः ।

अजारयन्नभ्रमहेमगन्धं वाञ्छन्ति सूतात् फलमप्युदारम् । क्षेत्रादनुप्तादपि सस्यजातं कृषीवलास्ते भिषजश्च मन्दाः ॥ शुद्धगन्धेषु जीर्णे तु शुद्धाच्छतगुणाधिकः । षड्गुणे गन्धके जीर्णे रसो भवति रोगहा ॥ तुल्ये तु गन्धके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः । द्विगुणे गन्धके जीर्णे सर्वकुष्ठहरः परः ॥ त्रिगुणे गन्धके जीर्णे सर्वजाड्यविनाशनः । चतुर्गुणे तत्र जीर्णे वलीपलितनाशनः ॥ गन्धे पंचगुणे जीर्णे क्षये क्षयहरो रुजः । षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्वरोगहरो रसः ॥ अवश्यमित्युवाचेन्द्रं देवः

श्रीभैरवः स्वयम् । गन्धपिष्टिकया तत्र गोलः स्याद्गन्धजारणे ॥ १६ ॥

भाषा–अब पारेकी ग्रासनादिविधि कही जाती है । खेतमें विनाही अन्नके बोये जो किसानलोग फलके पानेकी वासना करते हैं, उनकीही समान जो चिकित्सकलोग सुवर्ण और गन्धकसे बिनाही जारित किये पारेसे महाफलकी आकांक्षा करते हैं उनके अत्यन्त मूढ होनेमें कोई सन्देह नहीं । भैरवने स्वयं पार्वतीजीसे कहा था कि हे देवि ! जो शुद्ध गन्धकसे पारा जारित होय तो शुद्ध पारेसे शतगुणा गुणवाला होता है । ऐसेही दूने गन्धकसे जारित होनेपर सर्व कोढोंका हरनेवाला, तिगुने गन्धकसे जारित होनेपर समस्त जडताका नाश करनेवाला, चौगुने गन्धकसे जारित होनेपर वलीपलितका नाश करनेवाला, पँचगुणे गन्धकसे जारित होनेपर क्षयरोगका हरनेवाला और छःगुणे गन्धकसे जारित होनेपर सब रोगोंका नाश करनेवाला हो जाता है ॥ १६ ॥

तस्माच्छतगुणो व्योमसत्वे जीर्णे तु तत्समे । ताप्यखर्परतालादिसत्वे जीर्णे गुणावहः ॥ हेम्नि जीर्णे सहस्रैकगुणसंघप्रदायकः । वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान् वेत्ति शिवः स्वयम् ॥ देव्या रजो भवेद्गन्धो धातुः शुक्रं तथाभ्रकम् । आलिङ्गने समर्थौ द्वौ प्रियत्वाच्छिवरेतसः ॥ शिवशक्तिसमायोगात् प्राप्यते परमं पदम् । यथा स्याज्जारणा वह्वी तथा स्यात् गुणदो रसः ॥ वज्रकङ्कटवज्राङ्गं विद्धमष्टाङ्गुलं मृदा । विलिप्य गोविशल्याग्नौ पुटितं तत्र शोधितम् ॥ त्र्यहं वज्रे विनिःक्षिप्तो ग्रासार्थी जायते रसः । ग्रसते गन्धहेमादिवज्रसत्वादिकं क्षणात् ॥ मूर्च्छाध्यायोक्तषड्गुणबलिजीर्णो पिष्टिकोत्थितरसः खल्वत्यम्भबुभुक्षितो घनहेमवज्रादि त्वरितमेव ग्रसतीत्यन्यः प्रकारः । एतत् प्रक्रियाद्वयमपि कृत्वा व्यवहरन्त्यन्ये ॥ सतुत्थटङ्कणस्वर्ज्जिपटुताम्रे त्र्यहोषितम् ॥ १७ ॥

भाषा–जो पारा छःगुणे गन्धकसे जारित हुआ है, यदि उसको अभ्रकके सत्तसे जारित किया जाय तो पहलेसे शतगुण वीर्यवान् हो जाता है । फिर सोनामक्खी, खपरिया और हरितालादिसे जारित करनेपर इससेभी अधिक गुणशाली हो जाता

है । जो सुवर्णके साथ जारित किया जाय तो सहस्रगुण वीर्यवाला हो जाता है । केवल महादेवजीही वज्रादिसे जारित पारेके गुण जानते हैं । गन्धक पार्वतीजीका रज है और अभ्रक उनका शुक्र है; इस हेतुसेही महेशके वीर्यको प्यार करनेवाले अभ्रक गन्धक पारेके साथ मिलनेमें समर्थ होते हैं । विशेषकरके शिव शक्तिके मेलके कारण श्रेष्ठताको प्राप्त होते हैं । पारेके जारणादिकार्य जितनी अधिकतासे हों, पारा उतनाही अधिक गुणशाली होता है । वज्री अर्थात् थूहरकी दृढ शाखामें अठारह अंगुलके प्रमाणका छेद करके उसमे पारा और गन्धक भरकर मिट्टीसे लेप करे । फिर गिलोय और अनन्तमूलकी अग्निसे पुट दे । इस प्रकार तीन दिनतक थूहरके छेदमे भरकर पुट देनेसे पारेमें सुवर्णादिके ग्रासकी शक्ति उत्पन्न होती है और मुहूर्त्तमेही गन्धक, सुवर्ण और हीरकादिको ग्रास करता है । मूर्च्छाध्यायमें जो षड्गुण गन्धकसे जारित पिष्टीमेंसे उत्पन्न हुए पारेका वर्णन हुआ, सो खरलमें रक्षित होनेपर भूंखा होकर अभ्रक, सुवर्ण और हीरादि धातुका ग्रास कर लेता है । अनेक वैद्य इन दो रीतियोंका व्यवहारही किया करते हैं । तांबेके बरतनमें कांजी रखकर तिसमे तूतिया, सुहागा और सज्जी मिलाय तीन दिनतक बांसी करे फिर इस कांजीसे पारे और गन्धकको भावना दे । ऐसा करनेसे पारा सब प्रकारकी धातुका ग्रास करनेमें समर्थ होता है ॥ १७ ॥

प्रकारान्तरम् ।

मूलकार्द्रकवह्नीनां क्षारं गोमूत्रलालितम् । वस्त्रपूतं द्रवं ग्राह्यं गन्धकं तेन भावयेत् ॥ शतवारं खरे घर्मे बिडोऽयं हेमजारणे ॥ एवं बिडान्तराण्यपि तन्त्रान्तरादनुसर्त्तव्यानि ॥ १८ ॥

भाषा-गोमूत्रके सहित मूली, अदरख और चीतेका दूध घोलकर छान ले फिर तिससे गन्धकको कठोर धूपमे सौ वार भावना दे । इस प्रकार करनेसे जो बिड तैयार होता है तिससेही सुवर्णका जारण होता है । इस प्रकार और दूसरे तंत्रोंसेभी और प्रकारके बिड सीखे ॥ १८ ॥

चतुःषष्ट्यंशकं हेमपत्रं मायुरमायुना । विलिप्तं तप्तखल्वस्थे रसे दत्त्वा विमर्दयेत् ॥ दिनं जम्बीरतोयेन ग्रासे ग्रासे त्वयं विधिः । शनैः संस्वेदयेद्भूर्ज्जे यद्वा सपटुकांजिके ॥ भाण्डके त्रिदिनं सूतं जीर्णस्वर्णं समुद्धरेत् । अधिकस्तोलितश्चेत् स्यात्पुनः स्वेद्यः समावधि ॥ द्वात्रिंशत्षोडशाष्टांशक्रमेण वसु

जारयेत् । रूप्यादिषु च सर्वेषु विधिरेवंविधः स्मृतः ॥ चुल्लि- कालवणं गन्धमभावे शिखिपित्ततः ॥ १९ ॥

भाषा–पहले तत्ते खरलमें पारा स्थापन करे, फिर पारेका ६४ वां अंश सुवर्णका पत्र मोरके पित्तमें लपेटे फिर उस पारेको जम्बीरीके रसमें एक दिन घोटे । प्रत्येक ग्रासमें ऐसेही करे फिर भोजपत्रसे पारेको बांधकर कांजीके साथ मन्दी आगपर पकावे फिर तीसरे दिन सुवर्णजारक पारेको निकाल ले । जो उस समय वजनसे पारा अधिक हो तो जबतक बराबर न हो जाय तबतक स्वेद दे । इस प्रकार ३२।१६ अथवा आठवे हिस्से सुवर्णसे जारित करना चाहिये । चांदी आदि समस्त धातुओंके जारणमें इसी प्रकारका नियम कहा है । चुल्लिका लवण और गन्धकसे सुवर्ण जारित किया जाता है, इनके अभावमें मोरके पित्तसे जारित करना चाहिये ॥ १९ ॥

अथ तप्तखल्वविधिः ।

अजाशकृत्तुषाग्निं च खनयित्वा भुवि क्षिपेत् ।
तस्योपरि स्थितं खल्वं तप्तखल्वमिति स्मृतम् ॥ २० ॥

भाषा–भेडकी मींगनी और तुषको जमीन खोदके उसमें धरके जलावे और उसपर खरल रखे इसीको तप्तखरल कहते हैं ॥ २० ॥

सिद्धमते दोलाजारणम् ।

सग्रासं पंचषड्ग्रासैर्यत्र क्षारैर्विमर्दयेत् । सूतकान् षोडशांशेन गन्धेनाष्टांशकेन वा ॥ ततो विमर्द्य जम्बीररसे वा कांजिकेऽथ वा । दोलापाको विधातव्यो दोलायंत्रमिदं स्मृतम् ॥ २१ ॥

भाषा–अब सिद्धमतसे दोलाजारण कहा जाता है । जितना जवाखार ले उसका सोलहवां भाग पारा और आठवां भाग गन्धक ले एकसाथ खरलमे मर्दन करे । फिर नींबूके रससे अथवा कांजीसे दोलायंत्रमें पाक कर ले ॥ २१ ॥

शश्वद्धृताम्बुपात्रस्थः शिवजश्छिद्रसंस्थितः । पक्वो मूषाजले तस्मिन् रसाष्टांशबिडावृतः ॥ संवृद्धो लोहपात्र्याथ ध्मातो ग्रसति कांचनम् ॥ २२ ॥

भाषा–एक मिट्टीके बरतनमें थांवला बनाय तिसमें पारा रक्खे । उस पारेके ऊपर नीचे अष्टमांश बिड देकर चपटे खींपरेसे ढककर मुँह बन्द करे । फिर उस पात्रको जलसे भरके एक लोहेके पात्रको ऊपर रखके आंच लगावे । ऐसा करनेसे पारा सुवर्णको ग्रास करनेमे समर्थ होता है ॥ २२ ॥

मतान्तरम् ।

कुण्डान्तसिलोहमये सविड़ं सग्रासमीशज्ञं पात्रे।
अतिचिपिटलौहपात्र्या पिधाय संलिप्य वह्निना योज्यम् ॥ २३ ॥

भाषा–अब कच्छपयंत्र कहा जाता है । अच्छे मुँहवाले लोहेके पात्रमें जल भर रक्खे । फिर प्रथम प्रकारसे कहे हुए रूपवाले विडयुक्त पारेको घड़ियामें भरकर इस लोहेके वरतनमें रखकर आंच दे । इसकाही नाम कच्छपयंत्र है ॥ २३ ॥

इयतैव रसायनत्वपर्यवसितिः किन्तु वादस्य न प्राधान्यम् ।
संप्रत्युभयोरेव प्राधान्येन जारणोच्यते ॥ २४ ॥

भाषा–रसायनसिद्ध कहा गया । अब जारणका वर्णन होता है ॥ २४ ॥

घनसत्वजारणम् ।

घनरहितबीजजारणां संप्राप्तदलादिसिद्धिकृतकृत्याः । कृपणाः प्राप्य समुद्रं वराटिकालाभेन संतुष्टाः ॥ विनैकमभ्रसत्वं नान्यो रसपक्षकर्त्तनसमर्थः । तेन निरुद्धप्रसवो नियम्यते वध्यते च सुखम् ॥ २५ ॥

भाषा–जो मनुष्य अभ्रकहीन पारा जारण करके प्राप्तसिद्धि हो कृत कृत्य होते हैं और जो मनुष्य समुद्रके भीतर उतरकर कौडीके लाभसेही प्रसन्न हो जाते हैं वे सवही कृपण हैं । क्यों कि विना अभ्रसत्वके विना कभीभी रसधातुके पंख काटनेमें समर्थ नहीं हुआ जाता । जब अवरखसे पारा निरुद्धप्रसर हुआ तो वह नियमित होकर बंध जाता है ॥ २५ ॥

रक्तं पीतं च हेमार्थं कृष्णं हेमशरीरयोः ।
तारकर्म्मणि तच्छुक्कं काञ्चने तु सदा त्यजेत् ॥ २६ ॥

भाषा–सुवर्णके लिये लाल और पीला अभ्रक, सुवर्ण और शरीरविषयमें काला अभ्रक और तारकर्म (चांदीके कर्म) में श्वेत अभ्रक श्रेष्ठ है । सुवर्णजारणकार्यमें श्वेत अभ्रक वर्जनीय है ॥ २६ ॥

त्रुटिशो दत्त्वा मृदितं सोष्णे खल्वेऽभ्रहेमलोहादि ।
चरति रसेन्द्रः क्षितिखगवत् सजम्बीरबीजपूराम्लैः ॥
पूर्वसाधितकाञ्जिकेनापि ॥ २७ ॥

भाषा-थोडासा अभ्रक, सुवर्ण और लोहादि देकर जम्बीरीके रससे अथवा पूर्वसाधित कांजीसे रसधातुको गरम खरलमें मलनेसे वह क्षितिखगवत् (रेतेकी नाईं) तैरती है ॥ २७ ॥

अभ्रकजारणमादौ गर्भद्रुतिजारणं च हेम्नोऽन्ते ।
यो जानाति न वादौ वृथैव सोऽर्थक्षयं कुरुते ॥ २८ ॥

भाषा-सबसे पहले पारेके अभ्रकको जारण कर तदुपरान्त सुवर्णजारण और सबसे पीच्छे गर्भद्रुति जारण करे । जो इस रीतिको नहीं जानता केवल वृथाही उसके धनका नाश होता है ॥ २८ ॥

व्योमसत्वं समांशेन ताप्यसत्वेन संयुतम् ।
साकल्येन चरेद्देवि गर्भद्रावी भवेद्रसः ॥ २९ ॥

भाषा-हे देवि ! व्योमसत्व (अभ्रकसत्व) और ताप्यसत्व (स्वर्णमाक्षिक सत्व) इन दोनोंके बराबर देनेसे रसधातुका गर्भ द्रव हो जाता है ॥ २९ ॥

एवं हेमाभ्रताराभ्रादयः स्वस्वरिपुणा निर्व्यूढाः प्रयोजनमवलोक्य प्रयोज्याः ॥ ३० ॥

भाषा-इस प्रकार आवश्यकतानुसार विचार करके हेमाभ्र और माक्षिकाभ्र आदिका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३० ॥

अतस्तल्लक्षणमाह ।

गर्भद्रुतिमन्तरेण जारणैव न स्यात् । वह्निव्यतिरेकेऽपि रस-ग्रासीकृतानां लोहानां द्रवत्वं गर्भद्रुतिः ॥ ३१ ॥

भाषा-विना गर्भद्रुतिके जारणकर्म नहीं होता । इस कारण उसके लक्षण कहे जाते हैं । अग्निके सिवाय जो धातुएं रसको ग्रास करनेवाली हैं, उनके पि-घलनेका नाम गर्भद्रुति है ॥ ३१ ॥

अथ जारणम् ।

बीजानां संस्कारः कर्त्तव्यः ताप्यसत्वसंयोगात् ।
तेन द्रवन्ति गर्भा रसराजस्याम्लवर्गयोगेन ॥ ३२ ॥

भाषा-ताप्यसत्व अर्थात् सोनामक्खीके सत्वके मेलसे और अम्लवर्गके मेलसे पारद धातुका बीज संस्कार करना पड़ता है । इस प्रकार करनेसे पारेकी गर्भद्रुति-क्रिया हो जाती है ॥ ३२ ॥

शिलया निहतं नागं ताप्यं वा सिन्धुना हतम् ।
ताभ्यां तु मारितं बीजं सूतको द्रवति क्षणात् ॥ ३३ ॥

भाषा-मैनाशिलसे सीसेको और सेन्धेसे सोनामक्खीको मारकर इन दोनोंसे पारेको घोटे तो पारा द्रव जाय ॥ ३३ ॥

पट्वम्लक्षारगोमूत्रस्नुहीक्षीरप्रलेपिते ।
वह्निश्च बद्धवस्त्रेण भूर्जे ग्रासनिवेशितम् ॥
क्षारारनालमूत्रेषु स्वेदयेत् त्रिदिनं भिषक् ॥ ३४ ॥

भाषा-अम्ल, क्षार, गोमूत्र और थूहरका दूध इनसे भोजपत्रपर लेप करके वह भोजपत्र पारेमें रक्खे, तिसका बाहिरी भाग कपडेसे लपेट दे । फिर क्षार, कांजी और गोमूत्रमें उस पारेको तीन दिनतक स्वेद दे अर्थात् दोलायंत्रकी विधिसे स्वेद दे ॥ ३४ ॥

क्रमेणानेन दोलायां जार्यं ग्रासचतुष्टयम् ।
ततः कच्छपयन्त्रेण ज्वलने जारयेद्रसम् ॥ ३५ ॥

भाषा-इस प्रकार पारेको दोलायंत्रमें चार ग्रासका स्वेद देकर तदुपरान्त कच्छपयंत्रसे अग्निमें जारित करे ॥ ३५ ॥

चतुःषष्ट्यंशकः पूर्वो द्वात्रिंशांशो द्वितीयकः ।
तृतीयः षोडशांशस्तु चतुर्थोऽष्टांश एव च ॥ ३६ ॥

भाषा-चौंसठ अंशसे प्रथम ग्रास, बत्तीस अंशसे दूसरा, सोलह अंशसे तीसरा और आठ अंशसे चौथा ग्रास होता है ॥ ३६ ॥

चतुःषष्ट्यंशकग्रासाद्दण्डधारी भवेद्रसः । जलौका च द्वितीये तु ग्रासयोगे सुरेश्वरि ॥ ग्रासेन तु तृतीयेन काकविष्टासमो भवेत् । ग्रासेन तु चतुर्थेन दधिमण्डसमो भवेत् ॥ ३७ ॥

भाषा-हे सुरेश्वरि ! चौंसठ ग्रासमें पारा दण्डधारी हो जाता है, दूसरे ग्रास अर्थात् बत्तीस अंश ग्रासमें जोककी समान हो जाता है, तीसरे ग्रास अर्थात् सोलह अंश ग्रासमें कागकी वीटके समान और चौथे ग्रासमें अर्थात् आठ अंश ग्रासमें दधिमण्डकी समान हो जाता है ॥ ३७ ॥

भगवद्गोविन्दपादस्तु कलांशमेव ग्रासं लिखन्ति। यथा पञ्चभि-रेभिर्ग्रासैर्घनसत्वं जारयित्वादौ गर्भद्रावे निपुणो जारयति बीजं कलांशेन ॥ ३८ ॥

भाषा-भगवान् गोविन्दपादने कलांशग्रास जैसा लिखा है सो कहा जाता है। यथा गर्भद्रावमें निपुण चिकित्सकको चाहिये कि सबसे पहले पंचविध ग्राससे घनसत्व (अभ्रसत्व) को जारित करके फिर कलांशसे बीजको जारित करे ॥३८॥

तन्मते चतुःषष्टिचत्वारिंशत्रिंशद्विंशतिषोडशांशा पंच ग्रासाः ॥३९

भाषा-इनके मतसे ग्रास पांच प्रकारके हैं। ६४ अंश, ४० अंश, ३० अंश, २० अंश और १६ अंश ॥ ३९ ॥

अथ विडोत्पत्तिः।

वास्तूकैरण्डकदलीदेवदालीपुनर्नवाः। वासापलाशनिचुलतिलकाञ्चनमोक्षकाः ॥ सर्वाङ्गं खण्डशश्छिन्नं नातिशुष्कं शिलातले। दग्धं काण्डं तिलानां च पंचाङ्गं मूलकस्य च ॥ प्लावयेन्मूत्रवर्गेण जलं तस्मात् परिस्रुतम्। लोहपात्रे पचेद्यन्त्रे हंसपाकाग्निमानवित् ॥ बाष्पाणां बुद्बुदानां च बहूनामुद्गमो यदा। तदा कासीससौराष्ट्रीक्षारत्रयकटुत्रयम् ॥ गन्धकश्च सितो हिङ्गु लवणानि च षट्ट तथा। एषां चूर्णं क्षिपेद्देवि लोहकं पुटमध्यतः ॥ सप्ताहं भूगतं पश्चात् धारयेस्तु प्रचरो विडः ॥ ४० ॥

भाषा-वथुआ, एरण्ड, कदली, वन्दाल, पुनर्नवा (श्वेत पुनर्नवा), विसोंटा, पलाश (ढाक), निचुल (जलवेंत), तिल, कांचन और मोक्षक (दाख) वृक्षके छोटे २ टुकडे करके कुछेक सुखाय शिलापर रक्खे। फिर जले हुए तिलसठ और मूलीके पञ्चाङ्ग मूत्रवर्गमें भिगोवे। उससे जो पानी निकले उसको लोहेके बरतनमें डालकर हंसपाककी रीतिसे पाक करे। जब वाफ और बहुतसे बबूले उठने लगे तब कासीस, सौराष्ट्री मिट्टी, तीन[1] क्षार, त्रिकटु, श्वेत गन्धक, हींग और पांचों नमक इन सबको पीसकर उस लोहेके बर्त्तनमें डाल दे। फिर लोहेके बर्त्तनको बंद करके एक सप्ताहतक जमीनमें गाड रखना चाहिये। इस प्रकार करनेसे एक प्रकारका विड उत्पन्न होता है ॥ ४० ॥

हंसपाकयन्त्रकथनम्।

खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरि क्षिपेत्।
तुल्यं च खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥
हंसपाकं समाख्यातं यन्त्रं तद्वार्त्तिकोत्तमैः ॥ ४१ ॥

---

१ तीनो क्षार-सज्जीखार, जवाखार, सुहागा।

भाषा-एक खपरेको रेतेसे भरके ऊपर उसके बराबर और एक खपरा रखके धीरे २ मन्दी आंचपर पकावे इसकोही हंसपाकयंत्र कहते हैं ॥ ४१ ॥

एकविंशतिवारं तु बिडोऽयं सर्वजारणे ॥ ४२ ॥

भाषा-ऊपर जो विडका विषय कहा इस रीतिसे इक्कीस वार साधन करनेपर जो विड बनता है, वह सर्व प्रकारकी धातुओंके जारणमें समर्थ होता है ॥ ४२ ॥

मूलकार्द्रकवह्नीनां क्षारं गोमूत्रगालितम् । वस्त्रपूतं द्रवं ग्राह्यं गन्धकं तेन भावयेत् ॥ शतवारं खरे घर्मे बिडोऽयं हेमजारणे । एवं बिडान्तराण्येव सन्धेयानि पुनः पुनः ॥ ४३ ॥

भाषा-मूली, अदरख और चीतेका क्षार इन सबको गोमूत्रमें गलाय कर कपडेसे छान ले । उस छने हुए द्रव पदार्थसे गन्धकको शत वार (१००) तेज धूपमें भावना दे तो वह गन्धक स्वर्णजारणमें श्रेष्ठ है । इस प्रकारसे दूसरे विडको वारंवार तलाश करे ॥ ४३ ॥

अथ क्षाराः ।

जम्बीरबीजपूरचाङ्गेरीवेतसाम्लसंयोगात् ।
क्षारा भवन्ति नितरां गर्भद्रुतिजारणे शस्ताः ॥ ४४ ॥

भाषा-जम्बीरी, बिजौरा, नोनिया और अमलवेत इन सबके मेलसे जो क्षार उत्पन्न होता है वह गर्भद्रुतिजारणमें अत्यन्त ठीक है ॥ ४४ ॥

अथ रंजनम् ।

तारकर्मणि अस्य न तथा प्रयोगो दृश्यते ।
केवलं निर्मलं ताम्रं वापितं दरदेन तु ॥
कुरुते त्रिगुणं जीर्णं लाक्षारसनिभं रसम् ॥ ४५ ॥

भाषा-अब रंजन कहा जाता है । तारकर्ममें अर्थात् चांदीके कार्यमें रंजनका ऐसा प्रयोग नहीं देखा जाता। केवल मैलरहित तांबेको सिंगरफके[1] साथ मलकर (घोटकर) तिससे पारेको द्विगुण जारित करे तो वह पारा लाखके रसकी समान हो जाता है ॥ ४५ ॥

गन्धकेन हतं नागं जारयेत् कमलोदरे ।
एतस्य त्रिगुणे जीर्णे लाक्षाभो जायते रसः ॥
एतत्तु नागसन्धानं न रसायनकर्मणि ॥ ४६ ॥

---

१ यहांपर वैद्यलोग ३ भाग तांवा और १ भाग सिंगरफ ग्रहण करते हैं ।

भाषा-गन्धकसे कमलानींबूके भीतरे जो सीसेको जारित करके उस सीसेकी भस्मसे पारेको त्रिगुण जारित करे तो वह पारा लाखके रसकी समान हो जाता है । परन्तु यह सीसेके सम्बन्धका जारण रसायनकार्यमें प्रयोग नहीं करना चाहिये ॥४६॥

किंवा यथोक्तसिद्धबीजोपरि त्रिगुणताम्रोत्तरेणान्यद्बीजम् ।
समजीर्णं स्वतंत्रेणैव रंजयति ॥ ४७ ॥

भाषा-अथवा बराबर तांबेके सहित शिंगरफ जारित करके तिसके साथ बराबर पारेको त्रिगुण जारित करके पुट देनेसे वह पारा सहजसे रंजित हो जाता है ॥४७॥

अथ तारबीजम् ।

कुटिलं विमला तीक्ष्णं समचूर्णं प्रकल्पयेत् ।
पुटितं पंचवारं तु तारे वाह्यं शनैर्धमन् ॥
यावद्दशगुणं तत्तु तावद्बीजं भवेच्छुभम् ॥ ४८ ॥

भाषा-अब रौप्यबीज कहा जाता है । कुटिल (कान्तलोह), विमला (चांदी) और तीक्ष्णलोह इनको बराबर लेकर चूर्ण करे, पांच वार पुट दे फिर चांदीके बाहिरी भागमें तिस कालतक दशगुण ताप दे कि जबतक मनोहर रौप्यबीज उत्पन्न न होवे ॥ ४८ ॥

सत्वं तालोद्भवं वङ्गं समं कृत्वा तु धामयेत् । तच्चूर्णं वाहयेत्तारे गुणान्येव हि षोडश ॥ प्रतिबीजमिदं श्रेष्ठं सूतकस्य निबन्धनम् । चारणात् सारणाच्चैव सहस्रांशेन विद्ध्यति ॥ ४९ ॥

भाषा-हरितालसत्व और रांग बराबर लेकर ग्रहण करके अग्निके ऊपर रखके प्रधमित करे अर्थात् फूंक लगावे । तदनन्तर उस चूर्ण रौप्यके साथ १६ वार पुट देनेसेही जो प्रतिबीज उत्पन्न होता है वह पारा बांधनेके पक्षमें श्रेष्ठ जानना चाहिये । इस प्रकार चारण और सारण करके बीज सहस्रांशवेधी हो जाया करता है ४९

वङ्गाभ्रं वाहयेत्तारे गुणानि द्वादशानि च ।
एतद्बीजं समे चूर्णे शतवेधी भवेद्रसः ॥ ५० ॥

भाषा-एक भाग चांदी, बारह भाग रांगा और अभ्रकसत्व मिलाकर जारित करनेसे जो बीज उत्पन्न होता है, वह बराबर वजन पारेके साथ मिल जाय तो वह पारा शतवेधी होता है ॥ ५० ॥

नागाभ्रं वाहयेद्धेम्नि द्वादशानि गुणानि च ।
प्रतिबीजमिदं श्रेष्ठं पारदस्य निबन्धनम् ॥ ५१ ॥

भाषा–एकभाग सुवर्ण, १२ भाग सीसा और १२ भाग अभ्रक इकट्ठा करके जारित करनेसे जो बीज उत्पन्न होता है, वह पारा बांधनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

माक्षिकेण हतं ताम्रं नागं च रंजयेन्मुहुः । न नागं वाहयेद्बीजे द्विषोडशगुणानि च ॥ बीजं त्विदं वरं श्रेष्ठं नागबीजं प्रकीर्तितम् । तच्च रत्तिकमात्रेण सहस्रांशेन विध्यति ॥ ५२ ॥

भाषा–सोनामक्खी करके मरे हुए पारेसे सीसा भली भांति रंजित होता है । यह बीज ३२ भाग सीसेमें मिलाये जानेसे जो बीज उत्पन्न होता है, वह श्रेष्ठ नागबीज कहाता है । इसका केवल एक रत्ती बीज सहस्रांशवेधी होता है ॥ ५२ ॥

अथ रंजनार्थं सारणार्थं च तैलम् ।

मंजिष्ठा किंशुकं चैव खदिरं रक्तचंदनम् । करवीरं देवदारु सरलो रजनीद्वयम् ॥ अन्यानि रक्तपुष्पाणि पिष्ट्वा लाक्षारसेन तु । तैलं विपाचयेत्तेन कुर्याद्बीजादिरंजनम् ॥ द्विगुणे रक्तपुष्पाणां पीतचतुर्गुणस्य च । क्वाथे चतुर्गुणं क्षीरं तैलमेकं सुरेश्वरि ॥ ज्योतिष्मतीकरंजाख्यकटुतुम्बीसमुद्भवैः । पाटलाकाकतुण्डाह्वमहाराष्ट्रीरसैः पृथक् ॥ भेकशूकरमेषाहिमत्स्यकूर्मजलौकसाम् । वसया चैकया युक्तं षोडशांशैः सुपेषितः ॥ भूलतामलमाक्षीकं द्वन्द्वमेलाख्यकौषधैः । पाचितं गालितं चैव सारणातैलमुच्यते ॥ ५३ ॥

भाषा–अब रंजन और सारणके लिये तेल कहा जाता है । मजीठ, ढाक, खैर, लाल चन्दन, कनेर, देवदारु, धूपसरल, हलदी, दारुहलदी और लाल वर्णके फूल मलकर लाखरसके साथ विधानानुसार तेलपाक करे । इस तेलकरकेही बीजादिरंजन करना चाहिये । हे सुरेश्वरि ! लाल फूल दूने और चार गुण पीले फूलके क्वाथमें चौगुन दूध, एकगुना तिलतैल और कंगनी, कंजुआ, कडवी तूंबी, पाढल, कौआठोडी, जलपीपल इन सबका रस और मेढक, शूकर, मेंढा, सांप, मत्स्य, कछुआ, जलौका[1] इन सब जीवोंकी वसा पोडशांश इकट्ठी करके केंचुओंकी मिट्टी, सहद, बडी इलायची और छोटी इलायची इन सब वस्तुओंके क्वाथके साथ पाक कर लेनेसेही तेल तैयार हो जायगा । इसकोही सारणातैल कहते हैं ॥ ५३ ॥

---

१ इस स्थानमे जलौकसशब्दसे कोई जलौका (जोक) अर्थ करते है और कोई २ वैद्य जलचर जीव अर्थ करके जोंककी चरवी ग्रहण नहीं करते ।

अथ गन्धर्वरसहृदयस्वरसात्।

ऊर्णाटङ्कणगिरिजतुमहिषीकर्णाक्षिमलइन्द्रगोपककर्कटकाः द्वन्द्वमेलाख्यकौपधानि॥ यथाप्राप्तैः श्वेतपुष्पैर्नानावृक्षसमुद्भवैः। रसं चतुर्गुणं योज्यं कङ्गुनीतैलमध्यतः॥ पचेत्तैलावशेषं तु तस्मिंस्तैले निषेचयेत्। द्रावितं तारबीजं तु एकविंशतिवारकम्॥ रंजितं जायते तत्तु रसराजस्य रंजनम्॥ कुटिले बलमत्यधिकं रागस्तीक्ष्णे च पन्नगे स्नेहः। रागस्नेहबलानि तु कमले नित्यं प्रशंसन्ति॥ ५४॥

भाषा-यहांपर गन्धर्वतैल तैयार करनेकी रीतिभी उद्धृत होती है। ऊन, सुहागेकी खील, शिलाजीत, माहिषीकर्ण, नेत्रका मैल, वीरबहूटी, केकडा, छोटी और बडी इलायची इन सब चीजोंका कल्कसिद्ध तेल ग्रहण करे। यह कल्कसिद्ध कंगनीके तेलके साथ जितने प्राप्त हो सके उतने अनेक प्रकारके वृक्षोंके श्वेत फूलोंके रसको देकर पाक करे। जब तेलही रह जाय तब चांदीके बीजको इक्कीस वार द्रावित करके उस तेलमें डाले। इस तेलसे पारा अत्युत्तम रंजित होता है। इससे कान्तलोहमें बलाधान होता है, तीक्ष्णलोहमें रसकी वृद्धि होती है, सीसेमें स्नेह उत्पन्न होता है, तांबेमें राग, स्नेह और बल बढता है। वैद्यलोग नित्य इसकी प्रशंसा करते हैं। इसकाही नाम गन्धर्वतैल है॥ ५४॥

अन्यच्च-बलमास्तेऽभ्रकसत्वे जारणरागाः प्रतिष्ठितास्तीक्ष्णे। बन्धश्च रसो लौहः क्रामणमथ नागवङ्गगतम्॥ क्रामति तीक्ष्णेन रसः तीक्ष्णेन च जीर्यते ग्रासः। हेम्नो योनिस्तीक्ष्णं रागान् गृह्णाति तीक्ष्णेन॥ तदपि च दरदेन हतं कृत्वा वा माक्षिकेण रविसहितम्। वासितमपि वासनया घनवचमार्यं जार्यं च॥ सर्वैरभिर्लौहैर्माक्षिकमृदितैर्द्रुतैस्तथा गर्भे। बिडयोगेन च जीर्णे रसराजो बन्धमुपयाति॥ निर्बीजं समजीर्णे पादोने षोडशांशे तु। अर्द्धेन पादकनकं पादेनैकेन तुल्यकनकं च॥ समादिजीर्णस्य सारणायोग्यत्वं शताधिवेधनकत्वं च। इतो न्यूनजीर्णस्य पत्रलेपाधिकार एव॥ ५५॥

भाषा–पारेके जारणमें जो अभ्रकसत्व कहा, उस अभ्रकसत्वमें जारणशक्ति बहुतायतसे है, इस प्रकार तीक्ष्णलोहमें रंजनशक्ति, कान्तलोहमें बन्धनशक्ति; सीसे व रांगमें गतिशक्ति बहुतसी विद्यमान है । तीक्ष्णलोहसे कामनशक्ति और ग्रासशक्ति उत्पन्न होती है । तीक्ष्णलोह हेमयोनि है, अतः इससे सुवर्ण रंजित हो जाता है । जो तीक्ष्णलोह सिंगरफ, तांबा और सोनामक्खीके साथ मिले तो पारा अचार्य (अचल) और अजर्य (जारणके अयोग्य) हो जाता है । ऐसेही सर्व प्रकारकी जो सोनामक्खीके साथ घोटे और उनसे पारा मर्दन किया जाय तो गर्भ-जारण होकर वह पारा बंध जाता है। बिडके मेलसेभी ऐसेही बंध जाता है । जो पारा समान बीजसे अथवा तृतीयांशसे या सोलहवें अंशसे जारित हो तो उसमें वेधक-शक्ति उत्पन्न होती है । समजारणसे पारेमें सारणाशक्ति उत्पन्न होती है और शतवेधकत्वशक्ति पैदा होती है । यदि इससे कम अंशकरके जारित हो तो केवल पत्रलेपनशक्ति उत्पन्न होती है ॥ ५५ ॥

अत्यम्लितमुद्वर्तिततारारिष्टादिपत्रमतिशुद्धम् । आलिप्य रसेन ततः क्रमेण लिप्तं पुटेषु विश्रान्तम् ॥ अर्द्धेन मिश्रयित्वा हेम्ना श्रेष्ठेन तद्दलं पुटितम् । क्षितिखगपटुरक्तमृदा वर्णपुटोऽयं ततो देयः ॥ ५६ ॥

भाषा–पहले अम्लवर्गसे चांदीके पत्तरको और तांबेके पत्तरको शुद्ध करके फिर स्वर्णबीजसे लेप कर पुट दे फिर तिसके साथ अर्द्धांश सोनेका पत्तर मिला-कर पहलेकी समान वारंवार पुट दे । फिर केंचुओंकी मिट्टी, नमक और गेरू इन सबको इकट्ठा कर वर्णके लिये पुट दे ॥ ५६ ॥

रज्जुभिर्मेकरङ्गाभैः स्तम्भयोः सारलोहयोः ।
बध्यते रसमातंगो युक्त्या श्रीगुरुदत्तया ॥ ५७ ॥

भाषा–गुरुकी दी हुई युक्तिके बलसे अभ्रक और रांगरूपी रस्सीसे वज्रक्षार और कान्तलोहरूप खम्भमें पारदरूपी हाथी बांध दिया जाता है ॥ ५७ ॥

शिलाचतुष्कं गन्धेशो काचकूप्यां सुवर्णकृत् ।
कीलालायःकृतो योगः खटिकालवणाधिकः ॥ ५८ ॥

भाषा–एक भाग गन्धक, चार भाग मैनशिल एक कांचकी शीशीमें भरके लोह, खडिया और लवणके संयोगसे तिसका मुख बन्द करके विधिपूर्वक पाक करनेसे सुवर्ण संजात होता है ॥ ५८ ॥

मण्डूकपारदशिलाबलयः समानाः संमर्दिताः क्षितिबिलेशय-कांत्रविद्धैः। यन्त्रोत्तमेन गुरुभिः प्रतिपादितेन स्वल्पैर्दिनैरिह पतन्ति न विस्मयध्वम् ॥ ५९ ॥

भाषा-काला अभ्रक, पारा, मैनशिल और गन्धक इन सबको बराबर ले एक साथ मर्दन कर विवरमें रहनेवाले जन्तुकी आंतमें भरके गुरुके बताये यंत्रमें पाक करनेसे थोडेही दिनमें पारा बन्ध जाता है, इसमें कोई विस्मयका कारण नहीं है ॥ ५९ ॥

लोहं गन्धं टङ्कणं भ्रामयित्वा तेनोन्मिश्रं भेकमावर्त्तयेत्तत्।
तालं कृत्वा ताप्यवङ्गान्तराले रूप्यस्याद्यं तच्च सिद्धोक्तबीजम् ६०

भाषा-लोहा, गन्धक और सुहागा इन तीनोंको पहले इकट्ठा मलकर फिर अभ्रक मिलायकर चलावे। फिर उसको पिण्डाकार करके सुवर्ण और रांगके भीतर पुट देनेसे चांदीका सिद्धोक्त बीज उत्पन्न होता है ॥ ६० ॥

अथ सारणक्रिया।

अन्धमूषा तु कर्त्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
सैव छिद्रान्विता मध्ये गम्भीरा सारणोचिता ॥ ६१ ॥

भाषा-सारणक्रिया करनी हो तो गौके थनकी आकारवाली एक अन्ध घडिया बनावे। यह घडिया छेददार और गहरी होनी चाहिये ॥ ६१ ॥

सारितो जारितश्चैव पुनः सारितजारितः। एवं शृंखलिकायोगात् कोटिवेधी भवेद्रसः ॥ इत्यादीनि कर्म्माणि पुनः केवलमीश्वरैकानुग्रहसाध्यत्वात् न प्रपञ्चितानि ॥ ६२ ॥

भाषा-पहले पारेको सारित और जारित करके फिर उसकी सारण और जारण-क्रिया सिद्ध करे। इस प्रकार सिलसिले वार करनेसे पारेमें कोटिवेधकत्वशक्ति पैदा होती है। यह समस्त कर्म केवल ईश्वरकी कृपासे होते हैं इस कारण इनका विस्तार न किया ॥ ६२ ॥

शिलया निहतो नागो वङ्गं वा तालकेन शुद्धेन।
क्रमशः पीते शुक्ले क्रामणमेतत् समुद्दिष्टम् ॥ ६३ ॥

भाषा-मैनशिलसे सीसेको और शुद्ध हरितालसे रांगको मारना चाहिये। इन दोनोंके संयोगसे पारेमें पीतत्वसंक्रमण और शुभ्रत्वसंक्रमण करना होता है ॥ ६३ ॥

अथ जारणरंजनार्थं विडवटी ।

खोटकं स्वर्णसंतुल्यं समावर्त्तं तु कारयेत् । माक्षिकं कान्तपाषाणं शिलागन्धं समं समम् ॥ भूनागैर्मर्दयेद्यामं वल्लमात्रं वटीकृतम् । एषा विडवटी ख्याता योज्या सर्वत्र जारणे ॥६४॥

भाषा–अब खोटमार्गके अनुसार जारण और रंजन कहा जाता है । पहले सुवर्णकी वरावर पारदखोट आगमें गलाकर एक साथ मिला ले फिर बराबर सोनामक्खी, कान्तलोह, मैनशिल और गन्धक इकट्ठा करके भूनाग (उपधातु) से घोटकर वल्ल (६ रत्तिके) प्रमाणकी गोली वनावे । इसकोही विडवटी कहते हैं । सब जगह जारणकार्यमें इसका प्रयोग होता है ॥ ६४ ॥

अथ पारदरंजनम् ।

दरदं माक्षिकं गन्धं राजावर्त्तं प्रवालकम् । शिला तुत्थं च कङ्कुष्ठं समचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ वर्गाभ्यां पीतरक्ताभ्यां कङ्गुनीतैलकैः सह । भावयेद्दिवसान् पञ्च सूर्यतापे पुनः पुनः॥ जारितं सूतखोटं च कल्केनानेन संयुतम् । वालुकाहण्डिमध्यस्थं शरावपुटमध्यगम् ॥ त्रिदिनं पाचयेच्चुल्यां कल्कं देयं पुनः पुनः । रंजितो जायते सूतः शतवेधी न संशयः ॥ ६५ ॥

भाषा–सिंगरफ, सोनामक्खी, गन्धक, राजावर्त (मणिभेद), मूंगा, मैनसील, तूतिया, कंगुष्ठ (एक प्रकारकी पहाडी मिट्टी) इन सवको वरावर लेकर चूर्ण करे, फिर पीले और लाल फूलोका वर्ग वजन वरावर इकट्ठा करके कंगनीके तेलके साथ पांच दिन सूर्यकी धूपमें वारंवार भावना दे । फिर जारित पारेको कल्कके साथ सरैयाके सम्पुटमे वालुकाके पात्रमें भरकर तीन दिनतक इसका पाक करे । पाकके समय वारंवार यह कल्क डालना चाहिये । इस प्रकार करनेसे पारा रंजित होता है और उसमे निःसन्देह शतवेधकत्वशक्ति उत्पन्न होती है ॥ ६५ ॥

लोहं गन्धं टङ्कणं ध्मातमेतत् तुल्यं चूर्णं भानुभेकाहिरङ्गैः । सूतं गन्धं सर्वसाम्येन कूप्यामीषत् साध्यं चित्त नो विस्मयध्वम्॥६६॥

भाषा–लोहा, गन्धक, सुहागा, काला अभ्रक, सीसा, रांगा पारा इन सबको बरावर ले कांचकी शीशीमे भरकर मंदी आंच देनेसे पारा, रंजित होता है, इसमें विस्मयका कोई कारण नहीं है ॥ ६६ ॥

पारदादियोगेन सुवर्णोत्पत्तिः ।

रसदरदताप्यगन्धकमनःशिलाभिः क्रमेण वृद्धाभिः ।
पुटमृतशुल्बं तारे त्रिव्यूढं हेमकृष्टिरियम् ॥ ६७ ॥

भाषा-पारा, सिंगरफ, सोनामक्खी, गन्धक और मैनशिल इन सबको क्रमानुसार एक २ भाग बढाकर ग्रहण करे अर्थात् एक भाग पारा, दो भाग सिंगरफ, तीन भाग सोनामक्खी, चार भाग गन्धक और पांच भाग मैनशिल लेकर तिसके साथ एक भाग चांदी और तीन भाग तांबा मिलाकर जारित करे इस प्रकार करनेसे श्रेष्ठ सुवर्ण उत्पन्न होता है ॥ ६७ ॥

अथ शतांशविधिः ।

अष्टनवतिभागं च रूप्यमेकं च हाटकम् ।
सूतकेन च वेधः स्यात् शतांशविधिरीरितः ॥ ६८ ॥

भाषा-अट्ठानवें भाग चांदी, एक भाग सुवर्ण, एक भाग पारा इन तीनोंको मिलानेसे जो कल्क उत्पन्न होता है उसका नाम शतांशविधि है ॥ ६८ ॥

चन्द्रस्यैकोनपञ्चाशत्तथा शुद्धस्य भास्वतः ।
वह्निरेकः शम्भुरेकः शतांशविधिरीरितः ॥ ६९ ॥

भाषा-उनचास भाग सुवर्ण, उनचास भाग हरिताल, एक भाग पारा और एक भाग चीता इन सबके एकत्र करनेसे जो कल्क बनता है उसकोभी शतांशविधि कहते हैं ॥ ६९ ॥

द्वावेव रजतयोनिताम्रयोनित्वेनोपचर्यंते ।
एवं सहस्रवेधादयो जारणबीजवशादनुसर्त्तव्याः ॥ ७० ॥

भाषा-यह दोनो शतांशविधि रौप्ययोनि और ताम्रयोनि कही जाती है इस प्रकार जारण और सारण क्रमसे पारा सहस्रवेधी होता है ॥ ७० ॥

चत्वारः प्रतिवापाः सलाक्षया मत्स्यपित्तभावितया । तारे वा शुल्बे वा तारारिष्टेऽथवा कृष्टौ ॥ तदनुक्रमेण मृदितः सिक्थकपरिवेष्टितो देयः । अतिविद्रुते च तस्मिन् वेधोऽसौ दण्डवेधेन ॥ तदनु सिद्धतैलेनाप्लाव्य भस्मावच्छादनपूर्वकम् । अवतार्य स्वाङ्गशैत्यपर्यन्तमपेक्षितव्यमिति ॥ ७१ ॥

भाषा—मत्स्यके पिण्डमें भावित हुई लाखके संगमें ऊपर लिखे हुए चार प्रकारके प्रतिवापको क्रमानुसार चांदीमें, तांबेमें, चांदीके अरिष्टमें व कृष्टिसे पीसे और मोम लगाकर आगपर चढ़ा दे। जब वह अग्निके तापसे गल जाय तो दण्डवेधी कल्क उत्पन्न होता है। फिर राखसे ढकके पहले कहे हुए सिद्धतेलके भीतर डुबाकर नीचे उतार ले। जबतक शीतल न हो तबतक ठहरा रहे ॥ ७१ ॥

विद्धं रसेन यद्द्रव्यं पक्षाहं स्थापयेद्भुवि ।
तत आनीय नगरे विक्रीणीत विचक्षणः ॥ ७२ ॥

भाषा—चतुर मनुष्यको चाहिये कि रसवेधी वस्तुओंको एक पक्षतक पृथ्वीमें गाडकर फिर बाहिर निकाले और नगरमें ले जाकर वेचे ॥ ७२ ॥

समर्प्योन्तः सैन्धवखण्डकोटरे विधाय पिष्टिं सिकताख्ययन्त्रे ।
विशुद्धगन्धादिभिरीषदग्निना समस्तमश्नात्यशनीयमीशजः॥७३

भाषा—शुद्ध गन्धक आदिके संगमें पारेकी पिट्ठीको तैयार करके सेंधेके टुकड़ेके कोटरमें भरे। फिर उसको सिकतायंत्रमें मंदी आंच दे तो वह पारा समस्त वस्तुओंके ग्रास करनेको समर्थ होता है ॥ ७३ ॥

अथ सिद्धदलकल्कः ।

तालताम्रशिलागन्धसंयुतं दरदं यदि ।
कुप्पिकायां मुहुः पक्वं द्रवकारि तदा मतम् ॥ ७४ ॥

भाषा—जो हरिताल, ताम्र, मैनशिल, गन्धक और सिंगरफ इन सबको इकट्ठा करके कुप्पीके भीतर रखके वारंवार पाक किया जाय तो वे द्रवकारी हो जाते हैं ॥ ७४ ॥

अथ मात्राकथनम् ।

गुंजामात्रं रसं देवि हेमजीर्णं तु भक्षयेत् ।
द्विगुणं तारजीर्णस्य रविजीर्णस्य च त्रयम् ॥
तीक्ष्णाभ्रकान्तमाषैका प्रायो मात्रेति कीर्तिता ॥ ७५ ॥

भाषा—अब पारा सेवन करनेकी मात्रा कही जाती है। हे देवि ! सुवर्णसे जारित हुआ पारा चोटलीभर सेवन करना चाहिये। ऐसेही चांदीसे जारित हुआ पारा दो चोटली और तावेसे जारित हुआ पारा तीन गुण अर्थात् ३ चोटली सेवन करना योग्य है। तीक्ष्ण लोहसे जारित हुआ पारा, अभ्रकसे जारित हुआ पारा और कान्तलोहसे जारित हुआ पारा एक मासा सेवन करे ॥ ७५ ॥

रसायने बंधनयुक्तपारदस्य त्यागः।

नागवंगादिभिर्बद्धं विषोपविषबद्धितम्।
मूत्रशुक्रहठाद्बद्धं त्यजेत् कल्पे रसायने ॥ ७६ ॥

भाषा-सीसे और रांगादिसे बंधा हुआ, विष या उपविषसे बंधा हुआ और मूत्र या शुक्रसे हठात् बंधे हुए पारेको रसायन कर्ममें त्याग कर दे ॥ ७६ ॥

अथ पारदभस्मप्रशंसा।

भस्मनस्तीक्ष्णजीर्णस्य लक्षायुः पलभक्षणात्।
एवं भुक्त्वा दशपलं तीक्ष्णजीर्णस्य भक्षयेत् ॥
तदा जीवेन्महाकल्पं प्रलयान्ते शिवं व्रजेत् ॥ ७७ ॥

भाषा-जो तीष्ण लोहसे जारित पारेकी भस्म एक पल सेवन की जाय तो मनुष्य लक्ष वर्षतक जीवित रह सकता है। दश पल सेवन कर ले तो वह मनुष्य महाप्रलयतक जीवित रहकर शिवरूप हो जाय ॥ ७७ ॥

भस्मनः शुल्वजीर्णस्य लक्षायुः पलभक्षणात्।
कोट्यायुर्ब्राह्ममायुष्यं वैष्णवं रुद्रजीवितम् ॥
द्वित्रिचतुःपंचषष्ठे महाकल्पायुरीश्वरः ॥ ७८ ॥

भाषा-एक पल ताम्रजारित पारदभस्मके सेवन करनेसे लक्ष वर्षकी आयु होती है। दो पल सेवन करनेसे कोटि वर्षकी परमायु होती है। तीन पल सेवन करनेसे ब्रह्माकी समान परमायु हो सकती है। चार पल सेवन करनेसे वैष्णवत्व प्राप्त होता है और पांच पल सेवन करनेसे रुद्रत्व प्राप्त होता है अर्थात् रुद्रकी समान परमायु धारण करता है। ६ पल सेवन करनेसे ईश्वरकी समान महाकल्पायु होता है ॥ ७८ ॥

भस्मनो हेमजीर्णस्य लक्षायुः पलभक्षणात्।
विष्णुरुद्रशिवत्वं च द्वित्रिचतुर्भिराप्नुयात् ॥ ७९ ॥

भाषा-एक पल सुवर्णजारित पारदभस्मके सेवन करनेसे लक्ष वर्ष जी सकता है। दो पल सेवन करनेसे विष्णुपन, तीन पल सेवन करनेसे रुद्रत्व और चार पल सेवन करनेसे शिवत्व प्राप्त होता है ॥ ७९ ॥

गुंजामात्रं हेमजीर्णं ज्ञात्वा चाग्निबलाबलम्।
घृतेन मधुना चाद्यात् तांबूलं कामिनीं त्यजेत् ॥ ८० ॥

भाषा–सुवर्णजारित १ चोटलीभर सेवन करना चाहिये । अथवा अग्निका बलाबल विचार तिसके अनुसार मात्रा नियत करके घी और सहदके साथ सेवन करे । इसको सेवन करके पान खाना व नारीप्रसंग करना वर्जित है ॥ ८० ॥

एको हि दोषः सूक्ष्मोऽस्ति भक्षिते भस्मसूतके ।
त्रिःसप्ताहाद्वरारोहे कामान्धो जायते नरः ॥ ८१ ॥

भाषा–हे वरारोहे ! पारदभस्मके सेवन करनेमें एक सूक्ष्म दोष है । इसके सेवन करनेसे तीन सप्ताहके मध्यमें पारदभस्म सेवनकारी मनुष्य कामान्ध हो जाता है ॥ ८१ ॥

नारीसंगाद्विना देवि अजीर्णं तस्य जायते ।
मैथुनाच्चलिते शुक्रे जायते प्राणसंशयः ॥
युवत्या जल्पनं कार्यं तावत्तु मैथुनं त्यजेत् ॥ ८२ ॥

भाषा–हे देवि ! पारा सेवन करके नारीसंग न करनेसे अजीर्ण रोगकी उत्पत्ति होती है, परन्तु नारीसंग होनेसेभी मैथुन करनेके कारण वीर्यके चलायमान होनेसे प्राणनाशकी शंका है । इस अवस्थामें मैथुन छोडकर युवतिके साथ वातचीत करनाही उचित है ॥ ८२ ॥

ब्रह्मचर्येण वा योगी सदा सेवेत सूतकम् ।
समाधिकारणं तस्य क्रमणं परमं पदम् ॥ ८३ ॥

भाषा–योगी पुरुष ब्रह्मचर्यके अनुसार पारेका सेवन करे । तव समाधि सिद्ध होकर उसको परम पद प्राप्त होता है ॥ ८३ ॥

पारदभक्षणे पथ्यापथ्यविचारः ।

प्रभाते भक्षयेत् सूतं पथ्यं यामद्वयाधिके ।
न लंघयेत्त्रियामं तु मध्याह्ने चैव भोजयेत् ॥ ८४ ॥

भाषा–प्रातःकाल पारा सेवन करके २ पहर समय वीततेही पथ्य करे । परन्तु तीसरा प्रहर किसी प्रकारसे न वीते । पथ्य मध्याह्नमेंही सेवन करना उचित है ॥ ८४ ॥

सकणाममृतां भुक्त्वा मलबद्धे स्वपेन्निशि ।
ताम्बूलान्तर्गते सूते किट्टबद्धो न जायते ॥ ८५ ॥

भाषा–मल बंध जाय तो सोंठका चूर्ण और हरीतकीका चूर्ण मिलाय सेवन कर रात्रिको शयन करे । पानके भीतर रखकर पारा सेवन करनेसे मल नहीं बंधता ॥८५॥

अतिपानं चात्यशनमतिनिद्रां प्रजागरम् ।
स्त्रीणामतिप्रसङ्गं च अध्वानं च विवर्जयेत् ॥ ८६ ॥

भाषा-पारा सेवन करनेके पीछे अधिक जल पीना, अधिक भोजन, अधिक नींद, रातको जागना, नारीसंग और मार्गका घूमना त्यागना उचित है ॥ ८६ ॥

अतिकोपं चातिहर्षं नातिदुःखमतिस्पृहाम् ।
शुष्कवादं जलक्रीडामतिचिंतां च वर्जयेत् ॥ ८७ ॥

भाषा-अत्यन्त क्रोध प्रकट करना या अधिक आनंद, अतिदुःख, किसी बातमें अत्यन्त स्पृहा, सूखा शब्द, जलविहार और अधिक चिन्ता ये काम पारा सेवन करनेवालेको छोडने चाहिये ॥ ८७ ॥

अथककाराष्टकम् ।

कूष्माण्डकं कर्कटी च कलिङ्गं कारवेल्लकम् । कुसुम्भिका च कर्कोटी कदली काकमाचिका ॥ ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः । पातकं च न कर्त्तव्यं पशुसङ्गं च वर्जयेत् ॥ ८८ ॥

भाषा-पारा सेवन करनेके पीछे पेठा, ककडी, तरबूज, करेला, कुसुम्भिका, ककोडा, केला, मकोय इस ककाराष्टकको खाना छोड दे । किसी प्रकारका पाप या पशुसंसर्ग न करे ॥ ८८ ॥

चतुष्पथे न गन्तव्यं विण्मूत्रं च न लंघयेत् ।
धीराणां निन्दनं देवि स्त्रीणां निन्दां च वर्जयेत् ॥ ८९ ॥

भाषा-हे देवि ! पारा सेवन करके चौराहेपर न जाय, मलमूत्रको न लांघे, धीर पुरुषकी और स्त्रीकी निन्दा न करे ॥ ८९ ॥

सत्येन वचनं ब्रूयादप्रियं न वदेद्वचः । कुलत्थानतसीतैलं तिलान् माषान् मसूरिकान् ॥ कपोतान् काञ्जिकं चैव तक्रभक्तं च वर्जयेत् । हेमचन्द्रादिकं चैव कुक्कुटानपि वर्जयेत् ॥९०॥

भाषा-सदा सत्य वचन कहे । कुलथी, अलसीका तेल, तिल, उरद, मसूर, कबूतरका मांस, कांजी और मट्ठेसे मिला हुआ अन्न छोड दे । हेमचन्द्रादि और कुक्कुटमांस सेवन करनाभी वर्जित है ॥ ९० ॥

कट्वम्लतिक्तलवणं पित्तलं वातलं च यत् । बदरं नारिकेलं च सहकारं सुवर्चलम् ॥ नागरङ्गं कामरंगं शोभांजनमपि त्यजेत् ९१॥

भाषा–पारेको सेवन करके कडुआ, अम्ल, कटु, लवण, वातपित्तकारी वस्तु, बेर, नारियल, आम, काला नमक, नारंगी, कमरख और सहजना इनको छोड देना चाहिये ॥ ९१ ॥

न वादजल्पनं कुर्याद्दिवा चापि न पर्यटेत् ।
नैवेद्यं नैव भुञ्जीत कर्पूरं वर्जयेत् सदा ॥ ९२ ॥

भाषा–जिसने पारा सेवन किया हो वह किसीसे झगडा न करे, दिनमें भ्रमण करना छोड दे, नैवेद्य और कपूरका सेवन न करे ॥ ९२ ॥

कुंकुमालेपनं वर्ज्यं न शयेत् कुशलः क्षितौ ।
न च हन्यात् कुमारीं च वातलानि च वर्जयेत् ॥ ९३ ॥

भाषा–पारा सेवन करनेके पीछे कुङ्कुमका लेप नहीं करना चाहिये, पृथ्वीपर सोना उचित नहीं, कुमारीको मारे नहीं और वात बढानेवाले द्रव्योंको छोडे ॥९३॥

क्षुधार्त्तो नैव तिष्ठेत्तु अजीर्णे नैव भक्षयेत् ।
दिवारात्रं जपेन्मंत्रं नासत्यवचनं वदेत् ॥ ९४ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणौ रससिद्धान्तप्रकरणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भाषा–पारदसेवी भूंखा हो तो भूंखको न मारे, अजीर्ण हो तो भोजन न करे, दिनरात अभीष्टमंत्र जपे, कभी मिथ्या वचन न बोले ॥ ९४ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थे बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां तृतीय अध्याय ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाभ्रीयं व्याचक्ष्महे ॥ यदञ्जननिभं क्षिप्तं सद्वह्नौ विकृतिं व्रजेत् । वज्रसंज्ञं हि तद्योज्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत् ॥ १ ॥

भाषा–अब अभ्रकका विषय कहा जाता है । जो अभ्रक अंजनकी समान काला हो, अग्निमे तपानेसे जिसको विकार प्राप्त न हो, उसको वज्रअभ्रक कहते हैं । इस अभ्रकके सिवाय और दूसरे अभ्रकका प्रयोग बहुधा नहीं होता ॥ १ ॥

अथाभ्रकसत्वम् ।

चूर्णीकृतं गगनपत्रमथारनाले धृत्वा दिनैकमवशोष्य च शूर-

णस्य । भाव्यं रसैस्तदनुमूलरसैः कदल्याः पादांशटङ्कणयुतं शफरैः समेतम् ॥ पित्तीकृतं तु बहुधा महिषीमलेन संशोष्य कोष्ठगतमाशु धमेद्दृढाग्नौ । सत्वं पतत्यतिरसायनजारणार्थ-योग्यं भवेत् सकललोहगुणाधिकं च ॥ २ ॥ ३ ॥

भाषा-अब अभ्रकसत्वके पातित करनेकी विधि कही जाती है । अभ्रकचूर्णको एक दिन कांजी तथा दूसरे दिन जिमीकन्दके रसमें भिगो दे । तदनन्तर केला-कन्दके रसमें भावना देकर चतुर्थांश सुहागेकी खील और छोटी मछलीका कल्क मिलाय भैंसके गोबरके साथ छोटी गोलियां बनाय धौंकनीसे आग देवे । इस प्रकार करनेसे रसायन और जारणके लिये अभ्रकसत्व निकल आता है । यह सबसे अधिक गुणवाला है ॥ २ ॥ ३ ॥

कणशो यद्भवेत् सत्वं मूषायां प्रणिधाय तत् ।
मित्रपंचकयुग्ध्मातमेकीभवति कांस्यवत् ॥ ४ ॥

भाषा-अभ्रकसत्वके कणोंको इकट्ठाकर उनमें मित्रपंचक मिलाय घडियामें रखके तीव्राग्नि देनेसे समस्त सत्वके कण मिलकर कांसीके समान हो जाते हैं ॥४॥

पञ्चमित्रम् ।

घृतमधुगुग्गुलुगुञ्जाटंकणमिति पंचमित्रसंज्ञं च ।
मेलयति सप्तधातूनंगाराग्नौ तु धमनेन ॥ ५ ॥

भाषा-घी, सहद, गूगल, चोटली और सुहागा इनका नाम पंचमित्र है। सात प्रकारकी धातु इस पंचमित्रके साथ कोयलोंकी आगमें दग्ध करनेसे इकट्ठी होकर मिल जाती है ॥ ५ ॥

शोधनमारणविधिः ।

अयोधातुवच्छोधनमारणमेतस्य ॥ ६ ॥

भाषा-इसके शोधन और मारणकी रीति अयोधातुवत् अर्थात् लोहेके समान है ॥ ६ ॥

प्रकारान्तरम् ।

चूर्णमभ्रकसत्वस्य कान्तलोहस्य वा ततः । तीक्ष्णस्य वा महादेवि त्रिफलाक्काथभावितम् ॥ यावदञ्जनसंकाशं वस्त्र-च्छन्नं विशोष्य च । भृङ्गामलकसारेण हरिद्राया रसेन च ॥ मिश्रितं क्रौञ्चजघृतमधुसंमिश्रितं ततः । लोहसंपुटमध्यस्थं

मासं धान्ये प्रतिष्ठितम् ॥ घृतेन मधुना लिह्यात् क्षेत्रीकरण-मुत्तमम् । एवं वर्षप्रयोगे च सहस्रायुर्भवेन्नरः ॥ ७ ॥

भाषा–और रीति यथा हे महादेवि ! अभ्रकचूर्ण, कान्तलोहचूर्ण और तीक्ष्ण लोहचूर्ण बराबर लेकर त्रिफलाके क्काथमे भिगो दे । जब वह अंजनकी समान काला हो जाय तो कपडेसे छानकर खुश्क कर ले । तदुपरान्त भांगरा, आमला, हलदी इन तीनोंके रस और क्रौंचघृत व मधु इन सबके साथ मिलाकर लोहेके सम्पुटमें रखके एक महीनेतक धानोंमें रक्खा रहने दे । फिर निकालकर घी और मधुके संयोगसे सेवन करे । यह श्रेष्ठ क्षेत्रीकरण कहा है । एक वर्षतक इसका सेवन करनेसे सहस्र वर्षकी परमायु हो सकती है ॥ ७ ॥

अभ्रद्रुतिः ।

अगस्तिपुष्पनिर्यासैर्मर्दितं सूरणोदरे ।
गोष्ठभूस्थो घनो मासं जायते जलसन्निभः ॥ ८ ॥

भाषा–अब अभ्रककी द्रुति कही जाती है । पहले अगस्तियाके फूलके रसके साथ अभ्रकको पीसकर उसको जिमीकन्दके पोलमें भर दे (जिमीकन्दके टुकडों-सेही उसका मुँह बन्द करे) फिर ढोरोंके बंधनेकी जगह उसको गाड दे । एक मासके पीछे निकाले तो अभ्रक पानीकी समान हो जायगा ॥ ८ ॥

धान्याभ्रभस्मप्रकारः ।

धान्याभ्रभस्मप्रयोगस्य अरुणकृष्णभेदेन प्रकारद्वयं लिख्यते ॥९॥

भाषा–धान्याभ्रभस्मप्रयोग दो प्रकारका है अरुण और कृष्ण सो लिखते हैं ॥९॥

वज्राभ्रं च धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिःक्षिपेत् । भिन्नपत्रं तु तत् कृत्वा तंडुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ भावयेदष्टयामं तु देवं शुध्यति चाभ्रकम् । कृत्वा धान्याभ्रकं तत्तु शोषयित्वा तु मर्द्दयेत् ॥ अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यमर्कमूलद्रवेण वा । वेष्टयेदर्कपत्रैस्तु स-म्यग्गजपुटे पचेत् ॥ पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं प्रयत्नतः । ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ म्रियते नात्र सन्देहः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १० ॥

भाषा–पहले वज्राभ्रकको अग्निसे भस्म करके दूधमें डाल दे । फिर अभ्र-कके पत्त खोलकर उनको चौलाईके रसमें और नींबूके रसमें आठ पहरतक भिगो रक्खे । इस प्रकारसे अभ्रक शुद्ध हो जाता है । फिर सूखनेपर उसको पीस ले

फिर आकके गोंद या आककी जड़के क्काथमें एक दिनतक पीसकर आकके पत्तोंमें लपेट दे। तदुपरान्त गजपुटसे पाक करना चाहिये। इस प्रकार सात वार पीसकर और पाक करवडकी जटाके क्काथमें पीसने और तीन वार पुट देनेसे अभ्रकका मारण हो जाता है। इस प्रकारका मृताभ्रही सब रोगोंमें प्रयोग किया जाता है ॥१०॥

मतान्तरम्।

धान्याभ्रकस्य भागैकं द्वौ भागौ टंकणस्य च।
पिष्ट्वा तदर्द्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत्॥
स्वभावशीतलं चूर्णं सर्वरोगेषु योजयेत्॥ ११॥

भाषा-अन्य प्रकार। यथा एक भाग धान्याभ्रक और दो भाग सुहागा इन दोनोंको भली भांति पीसकर अंधी घड़ियामें बन्द करके तेज आंचसे पुट दे। जब स्वभावशीतल हो जाय तब चूर्ण करके सर्व रोगोंमें व्यवहार करे॥ ११॥

अन्यच्च।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्ताक्काथैः पुटत्रयम्। तद्वत्पुनर्नवा-नीरैः कासमर्दरसैस्तथा॥ दत्त्वा पुटत्रयं पश्चात् त्रिः पुटेन्मुस-लीजलैः। त्रिर्गोक्षुरकषायेण त्रिः पुटेद्वानरीरसैः॥ मोचकन्द-रसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षजैः। रसैः पुटेच्च लोध्रस्य क्षीरा-देकपुटं ततः॥ दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा। एकमेकं पुटं दद्यादभ्रस्यैवं मृतिर्भवेत्॥ सर्वरोगहरं व्योम जायते रोगहारकम्। कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं पुंस्त्वोपघाति-नाम्॥ वृष्यमायुष्करं शुक्रवृद्धिसन्तानकारकम्॥ १२॥

भाषा-दूसरा प्रकार। यथा धान्याभ्रकको मोथेके क्काथ, सफेद सांठके क्काथ, कसोंदीके क्काथसे अलग २ पीसकर क्रमानुसार तीन २ पुट दे। फिर ता-लमूली, गोखरू, कदलीकन्द और तालमखाना इनके रसमें अलग २ तीन दिन-तक पीसे और पाक करे। तदुपरान्त लोधके क्काथमें एक दिन और गायके दूधमें पीसकर एक २ वार पुट दे। फिर घीके साथ, मधुके साथ और शक्करके साथ क्रमानुसार एक दिन पीसकर पुटकर अभ्रक मारित हो जाता है। इस प्रकार मृत अभ्रकसे समस्त रोग दूर होते हैं, ध्वजभंगका नाश होता है, इससे स्त्रियोंका गर्व खर्व होता है। यह बलकारी, आयुका बढानेवाला, शुक्रका बढानेवाला और निःसन्देह सन्तानका करनेवाला है॥ १२॥

अथ गगनमारकगणः ।

तण्डुलीयकबृहतीनागवल्लीतगरपुनर्नवाहिलमोचिकामण्डूकपर्णीतिक्तिकाखुपर्णिकामदनार्कार्द्रकपलाशसूतमातृकादिभिर्मर्दनपुटैरपि मारणीयम् ॥ १३ ॥

भाषा–अब अभ्रक मारनेके गण कहे जाते हैं । चौलाई, बड़ी कटेरी, पान, तगर, सांठ, हुलहुल, ब्रह्ममण्डूकी, चिरायता, मूसाकानी, मेनफल, अर्क (आक), ढाक और इन्द्रायण इन सब वस्तुओंसे पीसकर पुट देनेसे अभ्रकमारण हो जाता है ॥ १३ ॥

रम्भाङ्घ्रिरभ्रं लवणेन पिष्ट्वा चक्रीकृतं टङ्कणमध्यवर्त्ति ।
दग्धेन्धनेषु व्यजनानिलेषु स्नुह्यर्कमूलाखुपुटं च सिद्ध्यै ॥ १४ ॥

भाषा–अभ्रकको केलेकी जड़के रस और लवणके साथ पीसकर सुहागेकी खीलमें भरकर थूहर और आककी डाढीकी आगमें जलावे । इससेभी अभ्रक मर जाता है ॥ १४ ॥

अथ अमृतीकरणम् ।

तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् ।
घृते जीर्णे तदभ्रं तु सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ १५ ॥

भाषा–अब अमृतीकरण कहा जाता है । अभ्रककी भस्मके समान गायका घी लेकर लोहेकी कढाईमें चढाय उसमें अभ्रकको पचावे । जब घी मर जाय तब जाने कि अभ्रकका अमृतीकरण हो गया । यह उतारकर सब कामोंमें दे ॥ १५॥

अन्यच्च ।

त्रिफलोत्थकषायस्य पलान्यादाय षोडश । गोघृतस्य पलान्यष्टौ मृताभ्रस्य पलान् दश ॥ एकीकृत्य लोहपात्रे पाचयेन्मृदुनाग्निना । द्रवे जीर्णे समादाय सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ अरुणस्य पुनरमृतीकरणेन गुणवृद्धिहानी स्तः ॥ १६ ॥

भाषा–अन्य प्रकार । यथा त्रिफलाका काढा १६ पल, गायका घी ८ पल, मृत अभ्रक १० पल इनको इकट्टा कर लोहेकी कढाईमें मन्दी आंचसे पकावे । जब घी और जल जलकर केवल अभ्रक बाकी रहे तब उतारकर सर्व रोगोंमें प्रयोग करे । फिर अमृतीकरणमे गुणकी कमताई या वृद्धि नहीं होती ॥ १६ ॥

अथ सत्वद्रुतिः।

सत्वप्रसंगात् द्रुतयो लिख्यन्ते ॥ १७ ॥

भाषा-सत्वके प्रसंगसे अभ्रकका पिघलाना कहा जाता है ॥ १७ ॥

स्वरसेन वज्रवल्ल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम्।
पक्वं च शरावपुटे बहुवारं भवति रसरूपम् ॥ १८ ॥

भाषा-अभ्रकको बराबर सौवर्चल लवणके साथ मिलाकर हडसंहारीके रसमें घोले फिर भली भांतिसे घोटकर सरैयाके पुटमें करके वारंवार पाक करे। इस प्रकार करनेसे अभ्रक द्रावित हो जाता है ॥ १८ ॥

निजरसबहुपरिभावितसुरदालीचूर्णवापेन।
द्रवति पुनः संस्थानं भजते कनकत्वं कालेऽपि ॥ १९ ॥

भाषा-अभ्रकको गरम करके देवदालीके रसके संगमें और चूर्णके साथ भावना करे। इस प्रकारसे अभ्रक गल जाता है और काल पाकर कनकत्वको प्राप्त हो जाता है ॥ १९ ॥

निजरसशतपरिभावितकंचुकिकंदोत्थपरिवापात्।
द्रुतमास्तेऽभ्रकसत्वं तथैव सर्वलोहानि ॥ २० ॥

भाषा-अभ्रकको यवचूर्ण और यवरसके साथ एक शत वार भावना दे। इस प्रकारसेभी अभ्रक गल जाता है। ऐसेही सर्वधातुओंको समझो ॥ २० ॥

कृष्णागुरुणाभियोगाद्रसोनसितरामठैरिमा द्रुतयः।
सोष्णैर्मिलन्ति मर्द्याः कुसुमपलाशबीजरसैः ॥ २१ ॥

भाषा-काला अगर, लहसन, शर्करा, हींग, लौंग और पलाशबीजक्काथ इन सबको कुछेक गरम करके अभ्रकके साथ पीसे इस प्रकार करनेसेभी अभ्रक गल जाता है ॥ २१ ॥

मुक्ताफलानि सप्ताहं वेतसाम्लेन भावयेत्। जम्बीरोदरमध्यस्थं धान्यराशौ निधापयेत् ॥ पुटपाकेन तच्चूर्णं द्रविते सलिलं यथा। कुरुते योगराजोऽयं रत्नानां द्रावणं प्रिये ॥ २२ ॥

भाषा-अमलवेतका काढा करके तिसमे मोतीको सात दिन भावना दे। फिर नींबूके खोखलेमे भरके धानोमे स्थापन करे। फिर उसको चूर्ण करके पुटपाक करे तो जलकी समान हो जायगा। हे प्रिये! इस योगराजसे समस्त रत्नही पिघल जाते हैं॥२२॥

अथ सामान्यतः सत्वपातनमुच्यते ।

गुडः पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा । ऊर्णा सर्जरसश्चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ॥ एतत् सर्वं तु संचूर्ण्य छागदुग्धेन पिण्डिकाः । कृता ध्माताः खराङ्गारैः सत्वं मुंचंति नान्यथा ॥ पाषाणमुक्तिकादीनि सर्वलोहानि वा पृथक् । अन्यानि यान्यसाध्यानि व्योमसत्वस्य का कथा ॥ २३ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिन्तामणौ चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

भाषा–अब साधारणसे सब धातुओंका सत्व निकालना कहा जाता है । गुड, गूगल, लाख, खल, सुहागा, ऊन, राल, छोटी मछली इन सबको बराबर लेकर पीसे, फिर बकरीके दूधमें घोटे । जब वह गोलाकार हो जाय, तब चाहे कोईभी धातु हो उसके साथ मिलाय तेज आग लगातेही उसका सत्व निकल आवेगा । अभ्रक तो एक ओर रहा; पत्थर मुक्ता आदि जो कोई धातु हो या कोई असाध्य धातु हो उन सबका सत्व इस प्रकारसे निकल आता है ॥ २३ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिन्तामणिग्रन्थे पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे
अभ्रकसत्वप्रकरणे चतुर्थ अध्याय ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातः सर्वगन्धकाध्यायं व्याचक्ष्महे ॥ आदौ गन्धकटङ्कादि क्षालयेज्जम्भवारिणा । इष्टसंलग्नधूल्यादि मलं तेन विशीर्यते ॥ गन्धः सक्षीरभाण्डस्थो वस्त्रे कूर्म्मपुटाच्छुचिः । अथवा कांजिके तद्वत् सघृते शुद्धिमाप्नुयात् ॥ गन्धकमत्र नवनीताख्यमुपादेयम् ॥ १ ॥

भाषा–अब सर्व प्रकार गन्धकाध्याय कहा जाता है । पहले गन्धक, सुहागा आदि धातुको नींबूके रसमें धोवे इससे गन्धकमें लगी हुई धूरादि दूर हो जायगी फिर इसको दुग्धके पात्रमें भरकर कूर्मपुट दे । ऐसे गन्धक शुद्ध होता है । अथवा घृतयुक्त कांजीमेंभी इस प्रकार करनेसे गन्धक शुद्ध होता है । यहांपर गन्धकशब्दसे नवनीतगन्धक समझना चाहिये ॥ १ ॥

मतान्तरम्।

लोहपात्रे विनिःक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत्। तप्ते तप्ते तत्समानं क्षिपेद्गंधकजं रजः॥ विद्रुतं गंधकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनिःक्षिपेत्। एवं गन्धकशुद्धिः स्यात् सर्वकार्येषु योजयेत्॥ २॥

भाषा-दूसरा प्रकार। यथा प्रथम कढाईमे घी करके आगपर चढा दे। जब वह गरम हो जाय तब उसमें घीकी बराबर गन्धक पीसकर डाले। गन्धक गल जाय तो उसको दूधमें डाल दे। इस प्रकार करनेसे गन्धक शुद्ध होता है। ऐसा गन्धक सब कामोंमें लेना चाहिये॥ २॥

मतान्तरम्।

गन्धकस्य च पादांशं दत्त्वा च टङ्कणं पुनः। मर्दयेन्मातुलुङ्गाद्भै रुबुतैलेन भावयेत्॥ चूर्णं पाषाणगं कृत्वा शनैर्गन्धं खरातपे॥३॥

भाषा-दूसरा मत। गन्धकसे चौथाई सुहागा लेकर बिजौरा नींबूके रसमें घोटे। जब भली भांतिसे घुट जाय तो पत्थरके वर्त्तनमें भरके तेज धूपमें अरण्डीके तेलसे भावना देवे। इस प्रकार करनेसे गन्धक शुद्ध हो जाता है॥ ३॥

प्रकारान्तरम्।

विचूर्ण गन्धकं क्षीरे घनीभावं व्रजेद्यथा। ततः सूर्यावर्त्तरसं पुनर्दत्त्वा पचेच्छनैः॥ पश्चाच्च पातयेत् प्राज्ञो जले त्रैफलसम्भवे। हरते गन्धको गन्धं निजं नास्तीह संशयः॥ ४॥

भाषा-पहले गन्धकका चूर्ण ग्रहण करके दूधके साथ बांधे। फिर हुलहुलका रस मिलाय मन्दाग्निमें पाक करे। पीछे चतुर वैद्यको चाहिये कि इसको त्रिफलाके पानीमें डाले। इस प्रकार करनेसे निःसन्देह गन्धककी गन्धका नाश हो जाता है॥४॥

मतान्तरम्।

देवदाल्यम्लपर्णी वा नागरं वाथ दाडिमम्। मातुलुङ्गं यथालाभं द्रवमेकस्य वा हरेत्॥ गंधकस्य तु पादांशं टङ्कणद्रवसंयुतम्। अनयोर्गन्धकं भाव्यं त्रिभिर्वारं ततः पुनः॥ धत्तूरतुलसी कृष्णा लशुनं देवदालिका। शिग्रुमूलं काकमाची कर्पूरं शंखिनीद्वयम्॥ कृष्णागुरुश्च कस्तूरी वन्ध्या कर्कोटकी समम्। मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा क्षिपेदेरण्डतैलके॥ अनेन लोह-

पात्रस्थं भावयेत् पूर्वगन्धकम् । त्रिवारं क्षौद्रतुल्यस्तु जायते गंधवर्जितः ॥ ५ ॥

भाषा–देवताड, अम्लपर्णी (लताविशेष), नारंगी, दाडिम, बिजौरा नींबू इनमेंसे जो कोई प्राप्त हो उसका रस ले । गन्धकसे चौगुणे सुहागाद्रवको और गन्धकको मिलाकर तीन वार भावना दे । फिर धतूरा, श्याम तुलसी, लहसन, देवताड, सहजनेकी जड, मकोय, कपूर, मोरके पंख दो प्रकारके, काला अगर, कस्तूरी, कडवी ककडी इन सबको बराबर लेकर बिजौरा नींबूके रसमें घोटके अंडीके तेलमें डाल दे । फिर इस तेलसे कढाईमें रक्खे हुए गन्धकको तीन वार भावना दे । ऐसा करनेसे गन्धक गन्धहीन होकर सहदकी समान हो जाता है ॥ ५ ॥

अन्यच्च ।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा । गंधकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं विलेपयेत् ॥ तद्वर्त्तिर्ज्वलिता भाण्डे धृता धार्याप्य-धोमुखी । तैलं पतत्यधो भाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ ६ ॥

भाषा–गजभर कपडेको सात वार आकके दूधमें, सात वार थूहरके दूधमें भिगोकर सुखावे । फिर मक्खन मिलाय गन्धकको मर्दन करके उस कपडेपर लेप करे फिर उस कपडेकी वत्ती बनाय जलायकर उसका मुख नीचेको लटका दे । उसके नीचे एक पात्र रक्खे । उस पात्रमें जोलवत्तीसे टपककर गिरे, वह तेल सब कामोंमें प्रयोग किया जाता है ॥ ६ ॥

अन्यमतम् ।

आवर्त्तमाने पयसि दद्याद् गन्धकजं रजः । तज्जातदधिजं सर्पिर्गन्धतैलं नियच्छति ॥ गंधतैलं गलत्कुष्ठं हन्ति लेपाच्च भक्षणात् । अनेन पिष्टिका कार्या रसेन्द्रस्योक्तकर्मसु ॥ ७ ॥

भाषा–गन्धक पीसकर घुमाते हुए दहीमे डालकर तिससे दही जमावे । फिर उस दहीसे मथकर घी निकाले इसकाही नाम गन्धकतैल है । इस गन्धकतैलको शरीरमे लगानेसे अथवा सेवन करनेसे गलत्कुष्ठ दूर हो । इससेही पारेके पहले कहे हुए कर्मसे पिष्टी की जाती है ॥ ७॥

मतान्तरम् ।

शुद्धसूतपलैकं तु कर्षकं गन्धकस्य च ।
स्विन्नखल्वे विनिःक्षिप्य देवदालीरसप्लुतम् ॥

मर्दयेच्च कराङ्गुल्या गन्धबद्धः प्रजायते ॥ ८ ॥

भाषा-दो तोले गन्धक, ८ तोले पारा इकट्ठा कर उसीजी हुई खलमें डाल देवदालीके रसमें भिगोकर अंगुलीसे पीसे रगड़े। इस प्रकार करनेसे गन्धक बंध जाता है ॥ ८ ॥

अन्यच्च ।

भागा द्वादश सूतस्य द्वौ भागौ गन्धकस्य च ।
मर्दयेद् घृतयोगेन गन्धबद्धः प्रजायते ॥ ९ ॥

भाषा-२ भाग गन्धक और १२ भाग पारा इकट्ठा घीमें मिलाकर घोटनेसे पारा बंध जाता है ॥ ९ ॥

अन्यमतम् ।

अष्टौ भागा रसेन्द्रस्य भाग एकस्तु गान्धिकः ।
विषतैलादिना मर्द्यो गन्धबद्धः प्रजायते ॥ १० ॥

भाषा-एक भाग गन्धकके साथ आठ भाग पारा मिलाय विषतैलादिसे पीसे इस प्रकार करनेसे गन्धक बंध जाता है ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

दशनिष्कं शुद्धसूतं निष्कैकं शुद्धगन्धकम् । स्तोकं स्तोकं क्षिपेत् खल्वे मर्दयेच्च शनैः शनैः ॥ कुट्टनाज्जायते पिष्टिः सेयं गन्धकपिष्टिका ॥ फलमस्य गन्धजारणनागमारणादि ॥ ११ ॥

भाषा-एक तोला शुद्ध गन्धक, १० तोले शुद्ध पारा थोडा २ खरलमें डालकर धीरे २ घोटे। इस प्रकार करनेसे बनी हुई पिट्ठीको गन्धकपिष्टिका कहते हैं। इसका फल गन्धकजारण और सीसामारणादि अर्थात् इससे गन्धक जारित होता है और सीसेका मारणकार्य सिद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

शुद्धगन्धो हरेद्रोगान् कुष्ठमृत्युजरादि च ।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ १२ ॥

इति रसेन्द्रचिंतामणौ पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

भाषा-शुद्ध गन्धकसे अनेक प्रकारके रोग, कोढ, मृत्यु और जरादिका नाश हो जाता है। यह अग्निका बढानेवाला, महा गरम और वीर्यका बढानेवाला है ॥१२॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणिनामकग्रन्थे पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादे गन्धकप्रकरणे पञ्चम अध्याय ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातः सर्वलोहाऽध्यायं व्याचक्ष्महे ॥ वशीभवन्ति लोहानि मृतानि सुरवंदिते । विनिघ्नंति जराव्याधीन् रसयुक्तानि किं पुनः ॥ स्वर्णताराररताम्रायःपत्राण्यग्नौ प्रतापयेत् । निषिंचेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे गवां जले ॥ कांजिके च कुलत्थानां कषाये सप्तधा पृथक् । एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः संप्रजायते ॥ १ ॥

भाषा-हे प्रिये ! अब सर्व प्रकारका लोहाध्याय कहा जाता है। हे सुरवन्दिते ! मृतक धातुयें वश हो जानेपर जब कि जरा और व्याधिके परदेको दूर करती हैं, तब उनका पारेसे मेल होना कहांतक फल दिखावेगा, सो क्या कहा जाय ? सुवर्ण, चांदी, तांबा, हरिताल और लोहके पत्रको अग्निमें जलाकर तेल, मट्ठा, गोमूत्र, कांजी और कुलथीके क्वाथमें अलग २ सात वार डुवानेसे शुद्ध हो जाते हैं ॥१॥

नागवंगौ प्रतप्तौ च गलितौ तैर्निषेचयेत् ।
सप्तधैव विशुद्धिः स्यात् रविदुग्धेन सप्तधा ॥ २ ॥

भाषा-सीसा और रांगा इन दो धातुओंको गलाकर आकके दूधमें सात वार डुवावे तो यह शुद्ध हो ॥ २ ॥

अन्यमतम् ।

तप्तानि सर्वलोहानि कदलीमूलवारिणि ।
सप्तधाभिनिषिक्तानि शुद्धिमायान्त्यनुत्तमाम् ॥ ३ ॥

भाषा-समस्त धातुये तत्ती करके सात वार कदलीकंदके रसमें बुझाई जाय तो परम शुद्ध हो जाती हैं ॥ ३ ॥

रसयुक्तं भस्म ।

सिद्धलक्ष्मीश्वरप्रोक्तप्रक्रियाकुशलो भिषक् ।
लोहानां सरसं भस्म सर्वोत्कृष्टं प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥

भाषा-सिद्धलक्ष्मीश्वरमे कही हुई क्रियाके जाननेमे चतुर वैद्य पारेके साथ धातुको भस्म करे, यही सबसे श्रेष्ठ भस्म है ॥ ४ ॥

मतान्तरम् ।

शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सप्त धातवः ।
म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ ५ ॥

भाषा-मैनशिल, गन्धक और स्वर्णादि सात प्रकारकी धातुओंमें आकका दूध लगाकर बारह वार पुट देनेसेभी धातु भस्म होती हैं। गुरुका यह वचन सत्य जाने ॥ ५ ॥

मतान्तरम् ।

सूतकाद्द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कृत्वा च कज्जलीम् । द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः ॥ यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पत्रके । घर्मे धृत्वोरुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः ॥ यामार्द्धेनोष्णता भूयात् धान्यराशौ न्यसेत्ततः । दत्त्वोपरि शरावं तु त्रिदिनान्ते समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् । एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि मारयेत् ॥ रसमिश्राश्चतुर्यामं स्वर्णाद्याः सप्त धातवः । म्रियन्ते सिकतायन्त्रे गंधकैरमृताधिकाः॥ गन्धैरेकद्वित्रिवारान् पच्यन्ते फलदर्शनात् । षड्गुणादिश्च गन्धोऽत्र गुणाधिक्याय जार्यते ॥ ६ ॥

भाषा-पहले तो गन्धक ले, गन्धकसे दूना पारा लेकर कज्जली बनावे । फिर पारे और गन्धककी बराबर लोहचून लेकर दो प्रहरतक घीकारके रसमें घोटे जब वह पिण्डाकार हो जाय तब धूपमें सुखा ले । जब आधे प्रहरमें यह तप जाय तब तांबेके बरतनमें रखकर धान्यमें रख दे । मुखपर सरैया ढके । दिन ३ पीछे निकालकर वस्त्रमें छाने तो लोहा जलकी समान होकर निकलेगा । इस प्रकारसे स्वर्णादि समस्त धातुयें जलकी समान हो जाती हैं । स्वर्णादि सात प्रकारकी धातुओंको बराबर पारे और गन्धकके साथ मिलाकर वालुकायंत्रमें चार प्रहरतक, पाक करे तो सब धातुयें मृतक होकर अमृतकी समान हो जाती हैं । महाफल प्रत्यक्ष करनेके हेतुसे त्रिगुण गन्धकमे जारित की जाती हैं । परन्तु षड्गुण गन्धकमें जारित होनेपर अत्यन्त गुणवाली होती हैं ॥ ६ ॥

अथ पृथक् फलशुद्धिमारणान्युच्यन्ते ।

आयुर्लक्ष्मीप्रभाधीस्मृतिकरमखिलव्याधिविध्वंसि पुण्यं
भूतावेशप्रशान्तिकरं भवसुखदं सौख्यपुष्टिप्रकाशि ।
गांगेयं चाथ रूप्यं गदहरमजराकारि मेहापहारि
क्षीणानां पुष्टिकारि स्फुटमधिकरणं कारणं वीर्यवृद्धेः ॥ ७ ॥

भाषा-अब अलग २ फल, शुद्धि और मारणका वर्णन होता है । सुवर्ण व चांदी, परमायुवर्द्धक, श्रीवृद्धिकर, बुद्धिदायक, कान्तिकारी, स्मृतिशक्तिवृद्धिकारक, रोगहारक, पुण्यकर, भूतावेशध्वंसक, सुखदाई, पुष्टिदाई, जरामेहनाशक, क्षीणको पुष्टिदायक और बुद्धिको बढानेमे केवल एक हेतु है ॥ ७ ॥

ताम्रभस्मगुणाः ।

गुल्मपाण्डुपरिणामशूलहृल्लेखनं कृमिहरं विशोधनम् ।
प्लीहकुष्ठजठरामशूलजिच्छ्लेष्मवातहरणं रविनाम ॥ ८ ॥

भाषा-तांबेसे गोला, पाण्डु, परिणामशूल और कीडोंका नाश होता है। यह लेखन विशोधन, तिल्ली, कोढ उदररोग, आंव और वातश्लेष्माको हरण कर लेता है ८

रीतिकादि भस्मगुणाः ।

रीतिका श्लेष्मपित्तघ्नी कांस्यमुष्णं च लेखनम् ।
वङ्गो दाहहरः पाण्डुजन्तुमेहविनाशनः ॥ ९ ॥

भाषा-पीतलसे कफपित्तका नाश हो जाता है । कांसी गरम और लेखन है । बंग, दाह, पाण्डु, कृमि और मेहका नाश करता है ॥ ९ ॥

नागभस्मगुणाः ।

दशनागनामा धातुर्वीर्यायुःकान्तिवर्द्धनः ।
रोगान् हन्ति मृगो नागः सेव्यारङ्गोऽपि तद्गुणः ॥
तृष्णामशोथशूलार्शःकुष्ठपाण्डुत्वमेहजित् ।
वयस्यं गुरु चक्षुष्यं सरं मेदोऽनिलापहम् ॥ १० ॥

भाषा-दश प्रकारके सीसेसे कान्ति, परमायु और वीर्य बढता है । मरा सीसा और मरा रांगा बराबर गुणवाले और अनेक रोगोंके हारक है । विशेष करके इनसे प्यास, शोथ, शूल, बवासीर, कोढ, पाण्डु, मेहका नाश होता है । यह आयुवर्द्धक, भारी और नेत्रानन्ददायक है । इनसे मेद और वायुका नाश होता है ॥ १० ॥

लोहभस्मगुणाः ।

आयुःप्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोगापहर्त्ता मदनस्य धाता ।
अयःसमानं न हि किञ्चिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम् ॥ ११ ॥

भाषा-परमायुका दाता, बलवीर्य करनेवाला, रोग हरनेवाला और कामदेवका बढानेवाला है । मनुष्योंके लिये लोहेकी बराबर अत्यन्त श्रेष्ठ रसायन दूसरी नहीं है ॥ ११ ॥

लोहकान्तगुणाः ।

सामान्याद्द्विगुणं क्रौंचं कालिङ्गोऽष्टगुणः स्मृतः। कलेर्दश गुणा भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ वज्रात् सप्तगुणः पंडिर्निरविर्दशभिर्गुणैः। तस्मात् सहस्रगुणितमिदं कान्तं महागुणम् ॥ यल्लोहे यद्गुणं प्रोक्तं तत्किट्टे चापि तद्गुणम् ॥ १२ ॥

भाषा-साधारण लोहेसे क्रौञ्च लोहा दूना हितकारी है और कालिंग लोहा आठगुणा उपकारी है। कालिङ्ग लोहेसे भद्रलोहा दशगुणा, भद्रसे वज्रलोहा हजारगुणा, वज्रसे पण्डिलोहा सातगुणा, पण्डिसे निरविलोहा दशगुणा और इससे महागुणशालीकान्तलोहा हजारगुणा उपकारी है। जिस लोहेमें जिस प्रकारका गुण कहा उसकी कीटमेंभी वैसाही गुण है ॥ १२ ॥

मण्डूरगुणाः ।

शतोर्द्ध्वमुत्तमं किट्टं मध्यं चाशीतिवार्षिकम् ।
अधमं षष्टिवर्षीयं ततो हीनं विषोपमम् ॥ १३ ॥

भाषा-शतवर्षका मण्डूर (लोहेका मैल) सर्वश्रेष्ठ है, अस्सी वर्षका मध्यम और साठ वर्षका अधम है। इससे कम वर्षका मण्डूर हो तो उसे विषकी समान जानना ॥ १३ ॥

अथ सुवर्णशुद्धिः ।

वर्णमृत्तिकया लिप्त्वा सप्तधा ध्मापितं वसु ।
शुध्यतीति शेषः ॥ १४ ॥

भाषा-वर्णमिट्टी (गेरू) से सुवर्णको लेपकरके सात पुट दे तो शुद्ध हो जायगा ॥ १४ ॥

मतान्तरम् ।

वल्मीकमृत्तिकाधूमं गैरिकं चेष्टकापटुः ।
इत्येता मृत्तिकाः पंच जम्बीरैरारनालकैः ॥
पिष्टा लिप्य स्वर्णपत्रं श्रेष्ठपुटेन शुध्यति ॥ १५ ॥

भाषा-वमईकी मिट्टी, धुआं, गेरू, ईंट और लवण इन पांचों मिट्टियोंको जम्बीरीके रस और कांजीके साथ घोटकर तिससे सुवर्णके पत्रपर लेप करे फिर पुट दे तो सुवर्ण शुद्ध हो जायगा ॥ १५ ॥

अथ रौप्यशुद्धिः ।

नागेन टङ्कणेनैव द्रावितं शुद्धिमिच्छति ।
रजतं दोषनिर्मुक्तं किं वा क्षाराम्लपाचितम् ॥ १६ ॥

भाषा—चांदीको सीसा और सुहागेके साथ गलावे अथवा अम्लक्षारके साथ पाक करे तो चांदी शुद्ध हो जाती है ॥ १६ ॥

अथ ताम्रशुद्धिः ।

स्नुह्यर्कक्षीरलवणकांजिके ताम्रपत्रकम् ।
लिप्त्वा प्रताप्य निर्गुण्डीरसे सिञ्चेत् पुनः पुनः ॥
वारान् द्वादशतः शुद्धयेल्लेपात् तापाच्च सेचनात् ॥ १७ ॥

भाषा—आकका दूध, दूध, लवण और कांजी इन सबको मिलाय चांदीके पत्रपर लेप करे, फिर उसको आगसे तपावे । फिर उसपर वारंवार संभालूका रस छिड़के । इस प्रकार बारह वार लेप करे, तपावे और संभालूका रस छिडके तो ताम्र शुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

अन्यमतम् ।

गोमूत्रेण पचेद्यामं ताम्रपत्रं दृढाग्निना । शुद्धयतीति शेषः ॥ १८ ॥

भाषा—गोमूत्रके साथ तांबेके पत्तरको एक प्रहरतक तेज आंचपर पाक करे तो तांबा शुद्ध हो जायगा ॥ १८ ॥

अथ पित्तलकांस्यादिशुद्धिः ।

राजरीतिं तथा घोषं ताम्रवच्छोधयेद्भिषक् ।
ताम्रवच्छोधनं तेषां ताम्रवद्गुणकारकम् ॥ १९ ॥

भाषा—अब पीतल, कांसी, हरिताल, सीसा, रांगा इत्यादिका शोधन लिखा जाता है । श्रेष्ठ पीतल और कांसीको ताम्र शुद्ध करनेकी रीतिसे जारित और शुद्ध करना चाहिये । ऐसा करनेसे इनमें ताम्रकी समान गुण हो जाता है ॥ १९ ॥

घोषारनागवंगं च भिषकैर्मुनितुल्यकैः ।
निर्गुण्डीरसमध्ये तु शुध्यते नात्र संशयः ॥ २० ॥

भाषा—कांसी, हरिताल, सीसा, रांगा इन धातुओंको सात वार अग्निमें तपाय सात वार संभालूके रसमें बुझावे तो यह शुद्ध हो जाता है ॥ २० ॥

शुद्धलोहगुणाः ।

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम् । तत्क्वाथे पादशेषे

तु लोहस्य पलपंचकम् ॥ कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्त वारान्नि-षेचयेत् । एवं प्रलीयते दोषो गिरिजो लोहसंभवः ॥ तत्त-द्व्याध्युपयुक्तौषधिनिषेकांश्च कुर्यात् ॥ सर्वाभावे निषिक्तव्यं क्षीरतैलाज्यगोजले ॥ एतत्तु शोधितस्य गुणाधिक्याय ॥ २१ ॥

भाषा-१२८ पल जलमें १६ पल त्रिफला डालकर अग्निपर चढावे जब ३२ पल शेष रहे तो उस क्वाथको उतारकर तिसमें पांच पल लोहेके भस्म हुए पत्तर सात वार डुबावे । इस प्रकार करनेसे लोहेका गिरिजदोष नष्ट हो जाता है । अधिक करके तिस २ रोगकी हरनेवाली औषधि क्वाथमें डालनेसेभी शुद्ध हो जाता है । पहली कही वस्तुयें न मिलें तो दूध, तेल, घी और गोमूत्रमें बुझावे । इस रीतिसे शुद्ध किया हुआ लोहा अधिक गुणवाला होता है ॥ २१ ॥

स्वसत्वं लोहवच्छोध्यं ताम्रवत्ताप्य सत्वकम् ।
रसकालशिलातुत्थसत्वं क्षाराम्लपाचनैः ॥
दिनैकेनैव शुध्यन्ति भूनागाद्यास्तथाविधैः ॥ २२ ॥

भाषा-लोहेके शोधन करनेकी रीतिसे अभ्रकको व तांबा शुद्ध करनेकी रीतिसे चांदीको शुद्ध करे । पारा, हरिताल, मैनशिल, तूतिया, सीसा इन धातुओंको एक दिनतक क्षाराम्लके साथ पाक करे तो ये दोषरहित होते हैं ॥ २२ ॥

स्वर्णमारणम् ।

समसूतेन वै पिष्टिं कृत्वाग्नौ नाशयेद्रसम् ।
स्वर्णं तत्समताप्येन पुटितं भस्म जायते ॥ २३ ॥

भाषा-अब समस्त धातुओंकी मारणरीति कही जाती है । सबसे पहले सुवर्णका मारण कहा जाता है । सुवर्ण और पारा इन दोनोंको बराबर लेकर पिट्टी बनावे । फिर उनको अग्निमें पुट देनेसे पारेका अंश नष्ट हो जायगा । फिर उस सुवर्णको बराबर ताम्रके साथ पुट दे तो सुवर्ण मृतक हो जायगा ॥ २३ ॥

मतान्तरम् ।

हेमपत्राणि सूक्ष्माणि जम्भाम्भो नागभस्मतः ।
लेपतः पुटयोगेन त्रिवारं भस्मतां नयेत् ॥
पुनः पुटे त्रिवारं तत् म्लेच्छतो नागहानये ॥ २४ ॥

भाषा-सीसेकी भस्म और नींबूके रसके साथ सूक्ष्म सुवर्णके पत्तरपर लेप

देवे, तीन वार पुट दे तो सुवर्ण भस्म हो जाता है । फिर सुवर्णको सिंगरफके साथ तीन वार पुट देनेसे सीसेका नाश हो जाता है ॥ २४ ॥

मतान्तरम् ।

शुद्धसूतसमं स्वर्णं खल्वे कृत्वा तु गोलकम् । ऊर्ध्वाधो गंधकं कृत्वा सर्वतुल्यं निरुध्य च ॥ त्रिंशद्वनोपलैर्देयं पुटैश्चैवं चतुर्दश । नियतं जायते भस्म गंधो देयः पुनः पुनः ॥ २५ ॥

भाषा—बराबर पारा और सुवर्ण एकसाथ खरल करे गोलाकार बना ले । फिर पारा और सुवर्णकी समान बराबर गन्धक घडियामें ऊपर नीचे डाल १४ पुट दे । प्रतिवारमें ३० अरने उपलोंकी आंचसे पुट दे, हरेकवार गन्धक डालता जाय इस प्रकार करनेसे सुवर्ण मर जाता है ॥ २५ ॥

स्वर्णमावर्त्य तोलैकं माषैकं शुद्धनागकम् । क्षिप्त्वा चाम्लेन संचूर्ण्य तत्तुल्यौ गन्धमाक्षिकौ ॥ अम्लेन मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत् । गन्धः पुनः पुनर्देयो म्रियते दशभिः पुटैः ॥ २६ ॥

भाषा—एक तोला सुवर्ण और एक मासा सीसा एकत्र कर अम्लमें मिलाय अग्निपर चढाय चलावे । फिर उसका चूर्ण करे । उस चूर्णके साथ बराबर गंधक और सोनामक्खी देकर एक प्रहरतक अम्लरसमें घोटे भलीभांति घुट जानेपर १० वार पुट दे । प्रत्येक पुटमेंही गन्धक देना चाहिये । इस क्रियासेभी सुवर्णभस्म होता है ॥ २६ ॥

अथ रौप्यमारणम् ।

विधाय पिष्टिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत् ।
तालगन्धसमं पश्चान्मर्दयेन्निम्बुकद्रवैः ॥
द्वित्रिपुटैर्भवेद्भस्म योज्यमेवं रसादिषु ॥ २७ ॥

भाषा—अब चांदी मारनेकी रीति कही जाती है । चांदीका पत्तर और पारा मिलाय तिसमे चांदीके बराबर हरताल और गन्धक छोडे । फिर नींबूके रसमें डाल खरलमे घोटकर पिट्ठी बनावे । अनन्तर उसको घडियामें डालकर गजपुटसे पाक करे । दो वार वा तीन वार पुट देतेही चांदी मृतक होकर रसायनकार्यके योग्य हो जाती है ॥ २७ ॥

अथ ताम्रमारणम् ।

गन्धेन ताम्रतुल्येन ह्यम्लपिष्टेन लेपयेत् । कंठवेध्यं ताम्रपत्रं

मूषामध्ये पुटे पचेत् ॥ उद्धृत्य चूर्णयेत्तस्मिन् पादांशं गंधकं क्षिपेत् । पाच्यं जम्भाम्भसा पिष्टं समो गंधश्चतुः पुटे ॥ मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा पुटमेकं प्रदापयेत् । सितशर्करयाप्येवं पुटदाने मृतिर्भवेत् ॥ २८ ॥

भाषा-अब तांबा मारनेकी रीति कही जाती है । तांबेकी बराबर गन्धक लेकर पहले अम्लरसमें मले । फिर सूक्ष्म तांबेके पत्तरपर उसका लेप करके अन्धमूषामें पाक करे । विधिविधानसे पाक समाप्त हो जानेपर उसको निकालकर तांबेके एक चतुर्थांश गन्धकके साथ जम्बीरीके रसमें पीसकर चार वार पुट दे । फिर बिजौरा नींबूके रसमें मलकर एक वार पुट देकर फिर शर्कराके साथ एक वार पुट दे । इस प्रकार करनेसे तांबा मृतक हो जाता है ॥ २८ ॥

मतान्तरम् ।

ताम्रपादांशतः सूतं ताम्रतुल्यं तु गन्धकम् । कन्यारसेन संपिष्य ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ निःक्षिप्य हण्डिकामध्ये शरावेण निरोधयेत् । हण्डिकां पटुनापूर्य पचेद्यामत्रयं भिषक् ॥ सूताभावे भिषग्युक्त्या हिंगुलं च समर्पयेत् । ततो म्रियते इति शेषः ॥ २९ ॥

भाषा-तांबेका पत्तर और गन्धक बराबर लेकर जितना तांबा हो उससे चौथाई पारा ग्रहण करे । पहले गन्धक और पारेको घीक्वारके रसमें घोटकर उससे ताम्रपत्रपर लेप करे । फिर इस तांबेके पत्तरको हांडीमें रक्खे, फिर उस हांडीको नमकसे भरकर मुँहपर सरैया ढक दे फिर ३ प्रहरतक विधिपूर्वक आंच देनेसे तांबा मृतक हो जाता है । पारा न हो तो सिंगरफ ग्रहण करे ॥ २९ ॥

अथ ताम्रस्य वान्तिदोषनाशनम् ।

अम्लपिष्टं मृतं ताम्रं शूरणस्थं बहिर्मृदा । पुटेत् पंचामृतैर्वापि त्रिधा वान्त्यादिशान्तये ॥ शूरणपुटपक्षे बृहत्पुटप्रदानम् ॥ ३० ॥

भाषा-जिस प्रकारसे तांबेका वान्तिदोष नष्ट होवे सो कहते हैं । पहले जारित तांबेको अम्लमे पीसकर जिमीकन्दका खोकला कर उसमें भरे, मिट्टीसे उस जिमीकन्दपर लेप देवे । फिर ३ पुट देतेही पारेका वान्तिदोष जाता रहता है । अथवा पंचामृतसे पीसके पुट देनेपरभी वान्तिदोषका नाश हो जाता है । शूरण-पुटके लिये बड़ा पुट देना ठीक है ॥ ३० ॥

जम्भाम्भसा सैन्धवसंयुतेन सगन्धकं स्थापयेच्छुल्वपत्रम् ।
पंकायमानं पुटयेत् सुयुक्त्या वान्त्यादिकं यावदुपैति शान्तिम् ३१

भाषा–ताम्रपत्रको नींबूके रस, गन्धक और सेन्धेके साथ मिलाय पीसकर कर्दमकी समान गाढा करे। फिर पुट देतेही उसका वान्तिदोष नष्ट हो जाता है ॥ ३१ ॥

अथ नागमारणम् ।

नागं खर्परके निधाय कुनटीचूर्णं ददीत द्रुते निम्बूत्थद्रवगन्धकेन पुटितं भस्मीभवत्याशु तत् । एवं तालकवापतन्तु कुटिलं चूर्णीकृतं तत् पुटेत् गंधाम्लेन समस्तदोषरहितं योगेषु योज्यं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–अब नागभस्मकी रीति और नागसिन्दूरके बनानेकी रीति कही जाती है। मिट्टीके वर्त्तनमें सीसेको रखकर उसमे मैनशिल, गन्धक और नींबूका रस डाले फिर पुट देतेही सीसा शीघ्र मर जाता है। अथवा सीसेको हरिताल-चूर्ण, गन्धक और नींबूके रसके साथ पुट देतेही सीसा मर जाता है। यह सीसा दोषहीन होकर व्यवहार करनेके योग्य होता है ॥ ३२ ॥

भुजंगममगस्त्यस्य पिष्ट्वा पत्रं प्रलेपयेत् । तत्र संविद्रुते नागे वासापामार्गसम्भवम् ॥ क्षारं वा मिश्रयेत्तत्र चतुर्थांशं गुरूक्तितः । प्रहरं पाचयेच्चुल्ल्यां वासादर्व्या च घट्टितम् ॥ तत उद्धृत्य तच्चूर्णं वासानीरैर्विमर्दयेत् । पुटेत् पुनः समुद्धृत्य तेनैव परिमर्दयेत् ॥ एवं सप्तपुटैर्नागः सिन्दूरो जायते ध्रुवम् । तारस्य रञ्जनो नागो वातपित्तकफापहः ॥ ३३ ॥

भाषा–विसोंटेके पत्तोंको मलकर उनसे सीसेपर लेप करे। फिर सीसेको आगसे गलाय तिसके साथ सीसेसे चौथाई बिसोंटेका क्षार और चिरमिटेका क्षार मिलाकर एक प्रहरतक चूल्हेपर पाक करे । पकानेके समय विसोंटेके डंडेसे-ही चलाता जाय। फिर उसको निकालके चूर्ण करे, विसोंटेके क्काथके साथ पीसकर ७ पुट दे। ऐसा करतेही सीसा सिन्दूरकी समान हो जाता है। इससे चादी रंगीन होती है, वायुपित्तका नाश होता हैं। इसका नाम नागसिन्दूर है ॥ ३३ ॥

अथ लोहमारणम् ।

लौहं पत्रमतीव तप्तमसकृत् क्काथे क्षिपेत् त्रैफले चूर्णीभूतमतो

भवेत्रिफलजे क्काथेऽथ वा गोजले। मत्स्याक्षीत्रिफलारसेन पुटयेद्यावन्निरुत्थं भवेत् पश्चाद्द्रावितमद्भुतं सुपुटितं सिद्धं भवेदायसः ॥ ३४ ॥

भाषा–अनन्तर लोहभस्मकी रीति कही जाती है। पहले लोहेके पत्तरको अत्यन्त तपाकर वारंवार त्रिफलाके क्काथमें डुबावे। फिर उसका चूर्ण करके त्रिफलाके क्काथमें, गोमूत्रमें अथवा शालिंचके रसमें वारंवार पीसनेपर पुट देतेही मृतक हो जाता है ॥ ३४ ॥

मतान्तरम् ।

**परिप्लुतं दाडिमपत्रवारा लौहं रजः स्वल्पककटोरिकायाम् ।
म्रियेत वस्त्रावृतमर्कभासा योज्यं पुटे सात्रिफलादिकानाम् ॥३५॥**

भाषा–छोटी कटोरीमें दाडिमके पत्तोंका रस रखके तिसमें लोहचून डाले। तदुपरान्त उस चूर्णको कपडेसे ढककर धूपमें सुखावे। अनन्तर त्रिफलाआदिके क्काथके साथ पीसकर पुट देतेही लोहा मृतक हो जाता है ॥ ३५ ॥

**पुटबाहुल्यं गुणाधिक्याय शतादिपुटपक्षे मुद्गनिभं
कृत्वा पुटान् दद्यात् वस्त्रपूतं च न कुर्यात् ।
त्रिफलादिरमृतसारलोहे वक्ष्यते ॥ ३६ ॥**

भाषा–अधिक गुणवान् करनेके लिये अधिक पुट देने चाहिये। जहां शतादि पुट देने हों वहांपर लोहेको मूंगकी समान करना चाहिये। परन्तु वस्त्रसे न लपेटे। त्रिफलादि किसको कहते हैं सो अमृतसार लोहमें कहेंगे ॥ ३६ ॥

सर्वमेतन्मृतं लौहं धातव्यं मित्रपञ्चकम् । यद्येवं स्यान्निरुत्थानां सेव्यं वारितरं हि तत् ॥ मध्वाज्यं मृतलौहं च रौप्यसंपुटके क्षिपेत् । रुद्ध्वाध्माते च संग्राह्यं रूप्यकं पूर्वमानकम् ॥ तदा लौहं मृतं विद्यादन्यथा मारयेत् पुनः । गन्धकं चोत्थितं लौहं तुत्थं खल्वे विमर्दयेत् ॥ दिनैकं कन्यकाद्रावे रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् । इत्येवं सर्वलौहानां कर्त्तव्येयं निरुत्थितिः ॥ ३७ ॥

इति रसेन्द्रचिन्तामणौ सर्वलोहाध्यायो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

भाषा–मित्रपंचकसे सुवर्णादि समस्त धातुओंको पुटित करना चाहिये। इस

प्रकार मृतक होनेपर जलकी समान उनका सेवन किया जा सकता है । मरे लोहेको, शहद और घीके साथ रजतपुटमें धरके पुट दे । यदि उसमें चांदी पहले प्रमाणकी समान दिखाई दे तो जाने कि लोहा मर गया । नहीं तो दुबारा पुट देना चाहिये । सब धातुओंके मारणमे यह विधि जाने ॥ ३७ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिन्तामणौ बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादसहितः सर्वलोहाध्यायो नाम षष्ठ अध्याय ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथ विषोपविषसाधनाध्यायं व्याचक्ष्महे ॥
विषं हि नाम निखिलरसायनानामूर्ज्जस्वमखिल-
व्याधिविध्वंसविधायकतामासादयति ॥ १ ॥

भाषा–अब विष उपविषके साधनाध्यायका वर्णन किया जाता है । विष समस्त रसायनोंमें तेज प्रधान है और सम्पूर्ण व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥१॥

यवाष्टकं भवेद्यावदभ्यस्ततिलमात्रया ।
सर्वरोगोपशमनं दृष्टिपुष्टिकरं भवेत् ॥ २ ॥

भाषा–एक तिलसे लेकर ८ जौतक विष खानेका अभ्यास हो जाय तो विष सब रोगोंका नाश करता है । दृष्टि शक्ति और पुष्टिको वढाता है ॥ २ ॥

अष्टादश विषप्रकाराः ।

तत् खल्वष्टादशप्रकारं भवति। तत्र सक्तुकमुस्तककौर्म्मदर्वी-कसार्षपसैकतवत्सनाभश्वेतशृङ्गिभेदानि प्रयोगार्थमाहरणी-यानि भवन्ति ॥ ३ ॥

भाषा–विष अठारह प्रकारके हैं । तिनमे सक्तुक, मुस्तक, कौर्म, दर्वीक, सार्षप, सैकत, वत्सनाभ, शृङ्गीविष ये आठही औषधीमें व्यवहारके लिये लिये जाते हैं ॥ ३ ॥

विषलक्षणम् ।

चित्रमुत्पलकन्दाभं सुपेष्यं सक्तुवद्भवेत् ।
सक्तुकं तद्विजानीयात् दीर्घवेगमहोल्वणम् ॥ ४ ॥

भाषा–अव विषके लक्षण कहे जाते हैं । जो चित्रवर्ण कमलकन्दकी समान हो,

जो सहजमें पीसकर सत्तूकी समान हो, जो बडा वेगवाला हो, अत्यन्त उग्र हो उसकाही नाम सक्तुक विष है ॥ ४ ॥

ह्रस्ववेगं च रोगघ्नं मुस्तकं मुस्तकाकृति ।
कूर्म्माकृति भवेत्कौर्म्मं दर्व्वीकोऽहिफणाकृति ॥ ५ ॥

भाषा-जिसका वेग हलका हो, जो रोगका नाश करे, जिसका आकार नागरमोथाकी समान हो उसको मुस्तक विष कहते हैं । जिस विषका आकार कछुएकी समान हो उसका नाम कौर्म है । जिसका आकार सांपके फनकी समान हो तिसको दर्वीक विष कहते हैं ॥ ५ ॥

ज्वरहृत् सार्षपं रोलिम सर्षपाभकणाचितम् ।
स्थूलसूक्ष्मैः कणैर्युक्तः श्वेतपीतैर्विलोमकः ॥ ६ ॥

भाषा-जिससे ज्वरका नाश हो जाता है, जो सरसोंकी समान और पीपलकी समान होता है तिसका नाम सार्षप है । जिस विषपर पीले, बडे और सूक्ष्म विन्दु हों उसका नाम विलोमक है ॥ ६ ॥

ज्वरादिसर्वरोगघ्नः कन्दः सैकतमुच्यते । यः कन्दो गोस्तनाकारो न दीर्घः पंचमांगुलात् ॥ न स्थूलो गोस्तनादूर्द्ध्वं द्विविधो वत्सनाभकः । आशुकारी लघुत्यागी शुक्लकृष्णोऽन्यथा भवेत् ॥ प्रयोज्यो रोगहरणे जारणायां रसायने ॥ ७ ॥

भाषा-ज्वरादि सब रोगोंका जो नाश करता है तिसको सैकतविष कहते हैं । जो विष गौथनके आकारका हो, पांच अंगुलसे बडा नहीं हो और गौथनसेभी बडा नहीं हो तिसका नाम वत्सनाभ है । वत्सनाभ दो प्रकारका है, काला और सफेद । सफेद वत्सनाभ हलका, दस्तावर, शरीरमें जादा गुण करता है । काला विष इससे विपरीत गुणवाला है । इसको रोगहरण, रसायनकर्म और जारणकर्ममें व्यवहार करना चाहिये ॥ ७ ॥

दशविधत्याज्यविषाणि ।

कालकूटमेषशृङ्गीदर्दुरहलाहलकर्कोटिग्रन्थिहारिद्ररक्तशृङ्गीकेशरयमदंष्ट्रप्रभेदेन दश विषाणि परिवर्जनीयानि ॥ ८ ॥

भाषा-कालकूट, मेषशृङ्गी, दर्दुर, हलाहल, कर्कोटी, ग्रन्थि, हारिद्रक, रक्तशृङ्ग, केशरक और यमदंष्ट्र ये दश विष त्यागने योग्य हैं ॥ ८ ॥

कालकूटविषम् ।

वृत्तकन्दो भवेत् कृष्णो जम्बीरफलवच्च यः ।
तत् कालकूटं जानीयात् घ्रातमात्रं मृतिप्रदम् ॥ ९ ॥

भाषा—जिसका कन्द गोल हो, रंग काला हो, जम्बीरी नींबूके समान गोल हो ऐसे विषका नाम कालकूट है । इसको सूंघतेही प्राण जाते रहते हैं ॥ ९ ॥

दर्दुरविषम् ।

मेषशृङ्गाकृतिः कन्दो मेषशृङ्गी च कीर्त्यते ।
दर्दुराकृतिकन्दः स्याद्दर्दुरः कथितस्तु सः ॥ १० ॥

भाषा—जिसका कन्द मेढेके सींगकी समान हो वह मेषशृङ्गी कहा जाता है । मेढककी समान आकारवाले विषको दर्दुर विष कहते हैं ॥ १० ॥

कर्कोटकविषम् ।

अन्तर्नीलं बहिः श्वेतं विजानीयात् हलाहलम् ।
कर्कोटकाभं च कर्कोटं रेखाभ्यन्तरतो मृदु ॥ ११ ॥

भाषा—जिसका भीतरी भाग नील रंगका और वाहिरी भाग शुभ्र हो तिसका नाम हलाहल है । जो कर्कोटक सर्पकी ममान हो, जिसका भीतरी भाग नम्र हो उसका नाम कर्कोटकविष है ॥ ११ ॥

हारिद्रकविषम् ।

हरिद्राग्रन्थिवद्ग्रंथिः स स्यात् कृष्णोऽतिभीषणः ।
मूलाग्रयोः सुवृत्तः स्यादायतः पीतगर्भकः ॥
कञ्चुकाढ्यः स्निग्धपर्वा हारिद्रः सकुकन्दकः ॥ १२ ॥

भाषा—जो हलदीकी गांठके समान हो और काला हो तिसको भयंकर विष जाने । इसकाही नाम ग्रन्थि विष है । जिसकी जड व नोक गोल और वडी हो, भीतरी भाग पीला हो, पोरियें चिकनी और कंचुव्याप्त हो तिसका नाम हारिद्रक विष है ॥ १२ ॥

रक्तशृंगविषम् ।

गोशृङ्गाग्रोऽथ संक्षितो नासयासृक् प्रवर्त्तते ।
कन्दो लघुर्गोस्तनवद्रक्तशृङ्गीति तद्विषम् ॥ १३ ॥

भाषा—जिसका अग्र भाग गायके सींगकी समान सूक्ष्म और छोटा हो,

जिसके कंदको सूंघनेसे नाकमेंसे रुधिर निकले, जिसका कन्द छोटा और गौके थनकी समान हो उसका नाम रक्तशृंगी है ॥ १३ ॥

यमदंष्ट्राविषम् ।

शुष्कार्द्र इव किञ्जल्कमध्ये तत् केशरं विदुः ।
श्वदंष्ट्रारूपसंस्था या यमदंष्ट्रा च सोच्यते ॥ १४ ॥

भाषा-जिसके केशरमें सूखे अदरखकी समान कुछ दिखाई दे उसको केशरक कहते हैं और जो विष कुत्तेकी डाढके समान आकारवाला हो उसका नाम यम-दंष्ट्रा है ॥ १४ ॥

रसायने त्याज्यविषाणि ।

रसायने धातुवादे विषवादे क्वचित् क्वचित् ।
दशैतानि प्रयुज्यन्ते न भैषज्यरसायने ॥ १५ ॥

भाषा-कहींपर विष रसायनकर्ममें, कहीं धातुवादमें और कहीं विषवादमें काममें लाये तो जाते हैं परन्तु ये दश प्रकारके विष भैषज्यरसायनमें प्रयोग न करे ॥ १५ ॥

रसायने योग्यविषाणि ।

उद्धरेत् फलपाके च विषं सिद्धं घनं गुरु । अव्याहतं विषहरै-वातादिभिरशोधितम् ॥ विषभागांश्चणकवत् स्थूलान् कृत्वा तु मार्जने । तत्र गोमूत्रकं क्षिप्त्वा प्रत्यहं नित्यनूतनम् ॥ शोष-येद्विदिनादूर्ध्वं धृत्वा तीव्रातपे ततः । प्रयोगेषु प्रयुञ्जीत भागमा-नेन तद्विषम् ॥ १६ ॥

भाषा-जो विष घन, भारी, विषनाशन, वातादिसे अदुष्ट और अशुष्क (गीला) हो फलीपाकके अंतमें तिसको लेना चाहिये । इस प्रकार ग्रहण कर चनेकी समान बडे २ टुकडे कर मिट्टीके वर्तनमे रखकर ३ दिनतक गोमूत्रमें रक्खे प्रतिदिन नये गोमूत्रमें रखना चाहिये तदुपरान्त धूपमें सुखा ले यह विष यथाप्र-माण भागके अनुसार औषधिमें प्रयोग करे ॥ १६ ॥

समटङ्कणसंपिष्टं तद्विषं मृतमुच्यते ।
योजयेत् सर्वरोगेषु न विकारं करोति तत् ॥ १७ ॥

भाषा-विषके समान सुहागा डालकर घोटनेसे विष मर जाता है । इसको सब रोगोंमे दिया जा सकता है, इससे किसी प्रकारका विकार नहीं होता ॥ १७ ॥

अतिमात्रं यदा भुक्तं वमनं कारयेत्तदा । अजादुग्धं ददेत्तावत् यावद्भ्रान्तिर्न जायते ॥ अजादुग्धं यदा देहे स्थिरीभवति देहिनः । विषवेगं तदोत्तीर्णं जानीयात् कुशलो भिषक् ॥ १८ ॥

भाषा–किसीने बहुत विष खा लिया हो तो उसे जबतक वमन बंद न हो बकरीका दूध पिलाते जाय, जब बकरीका दूध रोगीके शरीरमें रह जाय अर्थात् वमन न हो तब जाने कि विषके वेगका नाश हो गया ॥ १८ ॥

विषं हन्याद्रसे पीते रजनीमेघनादयोः ।
सर्पाक्षी टङ्कणं वापि घृतेन विषहृत् परम् ॥
पुत्रजीवकमज्जा वा पीतो निंबुकवारिणा ॥ १९ ॥

भाषा–हलदी और मेघनादरस एकत्र सेवन करनेसे अथवा प्रसारणी (नाकुलीकन्द) या सुहागा घीके साथ सेवन करनेसे विषध्वंस होता है । पतिजीयाकी मज्जा अर्थात् जियापोताकी मींग नींबूके रसके साथ पीनेसेभी विष पीनेवालेका विषदोष ध्वंस हो जाता है ॥ १९ ॥

विषवर्णाः ।

श्वेतो रक्तश्च पीतश्च कृष्णश्चेति चतुर्विधः ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्रमाज्ज्ञेयश्च शूद्रकः ॥ २० ॥

भाषा–विष चार प्रकारका है सफेद, लाल, पीला और काला । ये चार प्रकारके विष क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र कहे जाते हैं । अर्थात् सफेद विषको ब्राह्मण, लालको क्षत्री, पीलेको वैश्य और कालेको शूद्र जाने ॥२०॥

सर्वरोगहरो विप्रः क्षत्रियो रसवादकृत् ।
वैश्योऽपि रोगहर्त्ता स्याद् शूद्रः सर्वत्र निंदितः ॥ २१ ॥

भाषा–ब्राह्मणविष सब रोगोंका नाश करता है, क्षत्रीविष रसवादमें देना चाहिये, वैश्यविष व्याधिका नाश करता है, शूद्रविष सर्वथा निन्दनीय है ॥ २१ ॥

रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारयेत् ।
ब्राह्मणो दीयते रोगे क्षत्रियो विषभक्षणे ॥
वैश्यो व्याधिषु दातव्यः सर्पदष्टाय शूद्रकः ॥ २२ ॥

भाषा–लाल सरसोंके तेल मिले वस्त्रमें विषको धारण करना चाहिये । विप्रविष रोगमे दे । क्षत्रीविष विषभक्षणमे प्रयोग करे । वैश्यविष व्याधिमें दे और शूद्रविष उसको दे जिसे सांपने काटा हो ॥ २२ ॥

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु वर्षासु च तु दापयेत् ।
चतुर्मासे हरेद्रोगान् कुष्ठलूतादिकानपि ॥ २३ ॥

भाषा-शरदऋतु, ग्रीष्म, वर्षा, वसन्त इन समस्त कालमें विष दे । इन चार मासके सेवनसे कोढ और लूतादि रोगका नाश हो जाता है ॥ २३ ॥

प्रथमं सर्षपं मात्रा द्वितीये सर्षपद्वयम् ।
तृतीये च चतुर्थे च पंचमे दिवसे तथा ॥
षष्ठे च सप्तमे चैव क्रमवृद्ध्यापि वर्द्धयेत् ॥ २४ ॥

भाषा-पहले दिन सरसोंके समान विषकी मात्रा ग्रहण करे, दूसरे दिन दो सरसोंकी बराबर ले । इस प्रकार तीसरे चौथे, पांचवे, छठे और सातवे दिन यथाक्रमसे क्रम बढायकर देना योग्य है ॥ २४ ॥

सप्तसर्षपमात्रेण प्रथमं सप्तकं नयेत् ।
क्रमहान्या तदा नेयं द्वितीयं सप्तकं विषम् ॥
यवमात्रं विषं देयं तृतीये सप्तके क्रमात् ॥ २५ ॥

भाषा-पहले सप्ताहमे सात सरसोंतक देकर दूसरे सप्ताहमेंभी सात सरसों ले फिर तीसरे सप्ताहमे क्रमानुसार यव (जौ) की समान मात्रा देना योग्य है ॥ २५ ॥

वृद्ध्या हान्या च दातव्यं चतुर्थे सप्तके तथा ।
यवमात्रं ग्रसेत् सुस्थो गुंजामात्रं तु कुष्ठवान् ॥ २६ ॥

भाषा-चौथे सप्ताहमे एक दिन कम और एक दिन विशेष इस क्रमसे देवे । तन्दुरुस्त आदमी एक जव विष सेवन करे, कोढी एक चोंटलीभर सेवन करे॥२६॥

वयपरत्वेन विषत्यागः ।

अशीतिर्यस्य वर्षाणि चतुर्वर्षाणि यस्य वा ।
विषं तस्मै न दातव्यं दत्तं वै दोषकारकम् ॥ २७ ॥

भाषा-अस्सी वर्षके बूढेको वा चार वर्षके बालकको विष न दे । इनको विष देनेसे महाअनिष्ट होता है ॥ २७ ॥

दातव्यं सर्वरोगेषु घृताशिनि हिताशिनि ।
क्षीराशनं प्रयोक्तव्यं रसायनरते नरे ॥ २८ ॥

भाषा-जो घीका खानेवाला, हितकारी वस्तुओंका खानेवाला सर्व रोगोंमें विष खाय सकता है । रसायन सेवन करनेवाले पुरुषके लिये दूधही पीना उचित है ॥ २८ ॥

विषकल्पे ब्रह्मचर्यप्रधानम् ।

ब्रह्मचर्यं प्रधानं हि विषकल्पे तदाचरेत् ।
पथ्यैः सुस्थमना भूत्वा तदा सिद्धिर्न संशयः ॥ २९ ॥

भाषा-विषकल्पमें ब्रह्मचर्यही प्रधान माना गया है । इस कारण तिस कालमें ब्रह्मचर्यसे रहे । सुपथ्यको सेवन कर सुस्थमनवाला हो तो निःसन्देह सिद्धि प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

मात्राधिकं यदा वैद्यः प्रमादाद्भक्षयेद्विषम् ।
अष्टौ वेगास्तदा तस्य जायन्ते चैव देहिनः ॥ ३० ॥

भाषा-जो वैद्य प्रमादसे (मूर्खता या धोकेसे) विषकी अधिक मात्रा सेवन करा दे तो उस पीनेवालेकी देहमें आठ प्रकारके वेग उत्पन्न होते हैं ॥ ३० ॥

विषवेगवर्णनम् ।

प्रशमः प्रथमे वेगे द्वितीये वेपथुर्भवेत् । तृतीयवेगे दाहः स्यात् चतुर्थे पतनं भुवि ॥ फेनं तु पंचमे वेगे षष्ठे विकलता भवेत् । जडता सप्तमे वेगे मरणं चाष्टमे भवेत् ॥ ३१ ॥

भाषा-पहले वेगसे चेष्टाका जाता रहना, दूसरा कंप, तीसरा दाह, चौथा पृथ्वीपर गिर जाना, पांचवां मुखसे झाग निकालना, छठा विकलता, सातवा जडता और आठवे वेगसे मरण होता है ॥ ३१ ॥

विषवेगानिति ज्ञात्वा मंत्रतंत्रैर्विनाशयेत् । न क्रोधिते न पित्तार्ते न क्लीबे राजयक्ष्मणि ॥ क्षुत्तृष्णाश्रमकर्माध्वसेविनि क्षयकर्मणि । गर्भिणीबालवृद्धेषु न विषं राजमन्दिरे ॥ न दातव्यं न भोक्तव्यं विषं वादे कदाचन । आचार्येण तु भोक्तव्यं शिष्यप्रत्ययकारकम् ॥ ३२ ॥

भाषा-इस प्रकारसे विषवेगको जानकर मंत्र तंत्रके वलसे उस वेगका नाश करनेकी चेष्टा करे । क्रोधयुक्त, पित्तप्रकृति, नपुंसक, क्षईरोगवाला, भूंखा, प्यासा, थका हुआ, मार्गमे चलकर थका हुआ, यक्ष्मरोगी, गर्भवती, बालक, वृद्ध इन सबको कभीभी विष न दे । राजाके गृहमेभी विष न देना । शिष्यके विश्वासके लिये गुरु स्वयं विषका सेवन करे ॥ ३२ ॥

मतान्तरेण विषभेदाः ।

कालकूटो वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपनः ।
हलाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥
सौराष्ट्रिक इति प्रोक्तो विषभेदा अमी नव ॥ ३३ ॥

भाषा-दूसरे मतमें विष नौ प्रकारके कहे हैं । कालकूट, वत्सनाभ, शृंगक, प्रदीपन, हलाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्रक, सक्तुक और सौराष्ट्रिक ॥ ३३ ॥

उपविषाणि ।

अर्कसेहुण्डधत्तूरलाङ्गलीकरवीरकाः ।
गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ ३४ ॥

भाषा-उपविष सात हैं । आक, थूहर, धतूरा, करिहारी, कनेर, चोंटली और अफीम ॥ ३४ ॥

एतैर्विमर्दितः सूतः छिन्नपक्षश्च जायते ।
मुखं च जायते तस्य धातूंश्च ग्रसति त्वरा ॥ ३५ ॥

भाषा-इन सबसे पारेको पीसे तो उस पारेका पंख कट जाय, मुख हो आवे और वह पारा शीघ्रही सब धातुओंका ग्रास कर सकता है ॥ ३५ ॥

अथ वज्रलक्षणम् ।

श्वेतरक्तपीतकृष्णा द्विजाद्या वज्रजातयः ।
स्त्रीपुंनपुंसकात्मानो लक्षणेन तु लक्षयेत् ॥ ३६ ॥

भाषा-अनन्तर हीरेके लक्षण, मारण और शोधनादि कहे जाते हैं । हीरे चार प्रकारके हैं। सफेद, लाल, पीले और काले । श्वेत हीरा ब्राह्मण, लाल रंगका क्षत्री, पीले रंगका वैश्य और काले रंगका शूद्र कहा जाता है । हीरेका पुरुषपन, स्त्रीपन और नपुंसकपन आगे लिखे हुए लक्षणोसे जाना जायगा ॥ ३६ ॥

वृन्ताकफलसम्पूर्णास्तेजस्वन्तो बृहत्तराः ।
पुरुषास्ते समाख्याता रेखाबिन्दुविवर्जिताः ॥ ३७ ॥

भाषा-जो बैंगनके फलकी समान, तेजवान्, बडा, रेखाहीन, बिन्दुरहित हो वह हीरा पुरुषजातीय है ॥ ३७ ॥

रेखाबिन्दुसमायुक्ताः षट्कोणास्ते स्त्रियो मताः ।
त्रिकोणाः पत्तला दीर्घा विज्ञेयास्ते नपुंसकाः ॥ ३८ ॥

भाषा-जो हीरा लकीर और विन्दियोंदार हो, छः कोण हो उसको स्त्रीजातिका जाने। जिस हीरेमे ३ कोण हों, पतला और खडा हो तिसको नपुंसक कहते हैं॥३८॥

सर्वेषां पुरुषाः श्रेष्ठा वेधका रसबंधकाः ।
स्त्रीवज्रं देहसिद्ध्यर्थं क्रमेण स्यान्नपुंसकम् ॥ ३९ ॥

भाषा-पुरुषजातीय हीरा सबसे प्रधान, वेधक और रसका बांधनेवाला है। स्त्रीजातिका हीरा शरीर शुद्ध करनेके योग्य है और नपुंसक हीरा संक्रामक कहा है ॥ ३९ ॥

वज्रस्य वर्णविवरणम् ।

विप्रो रसायने प्रोक्तः क्षत्रियो रोगनाशने ।
वादे वैश्यं विजानीयाद्वयःस्तम्भे तुरीयकम् ॥ ४० ॥

भाषा-ब्राह्मण जातिके हीरेका रसायनकार्यमें व्यवहार किया जाता है। क्षत्रियजातिके हीरेको व्याधिका क्षय करनेके लिये देते हैं, वैश्यजातिका हीरा वादमें दिया जाता है और शूद्र जातिके हीरेका आयुके थामनेमें प्रयोग होता है ॥ ४० ॥

स्त्री तु स्त्रीणां प्रदातव्या क्लीबे क्लीबं तथैव च ।
सर्वेषां सर्वदा योज्याः पुरुषा बलवत्तराः ॥ ४१ ॥

भाषा-स्त्रीजातिका हीरा स्त्रियोंके प्रति, नपुंसक हीरा क्लीवके प्रति और पुरुषजातिका हीरा सदा सबके प्रति दिया जा सकता है ॥ ४१ ॥

वज्रशोधनम् ।

व्याघ्रीकन्दोदरे क्षिप्त्वा सप्तधा पुटितः परि ।
हयमूत्रस्य निर्वापात् शुद्धः प्रतिपुटं भवेत् ॥ ४२ ॥

भाषा-कटेरीके कन्दमें हीरेको रखकर सात वार भस्म कर घोडेके मूत्रमें बुझावे। इस प्रकार करतेही हीरा शुद्ध हो जाता है ॥ ४२ ॥

वज्रमारणम् ।

त्रिवर्षनागवल्ल्याश्च कार्पास्या वाथ मूलिकाम् ।
पिष्ट्वा तन्मध्यगं वज्रं कृत्वा मूषां निरोधयेत् ॥
मुनिसंख्यैर्गजपुटैर्म्रियते ह्यविचारितम् ॥ ४३ ॥

भाषा-तीन वर्षके उत्पन्न हुए पानकी जड और तीन वर्षकी उत्पन्न हुई कपासकी जड एक साथ कूट पीसकर लुगदी बनावे तिसमें हीरेको रक्खे। फिर उसको घाडियामें रखके बन्द कर दे, सात वार गजपुटमें पाक करतेही हीरा भस्म हो जाता है ॥ ४३ ॥

मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत् सुधीः।
न भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् ॥
तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ ४४ ॥

भाषा-बुद्धिमान् वैद्य किसी मेंढकको पकडकर उसको कांसीके किसी बर्तनमें रक्खे जब वह डरके पात्रमें जो मूत दे उस मूत्रमें भस्म हीरेको डुबा रक्खे। बारंबार भस्म कर इस प्रकार मेंढकके मूत्रमें डुबानेसे हीरा मारित हो जाता है॥ ४४ ॥

हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तक्काथे कौलत्थजे क्षिपेत्।
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयात् चूर्णं त्रिसप्तधा ॥ ४५ ॥

भाषा-इक्कीस वार हीरेको दग्ध करके हींग और सेंधेसे मिले कुलथीके काढेमें इक्कीस वार बुझावे। ऐसा करनेसे हीरेका चूर्ण हो जाता है ॥ ४५ ॥

रसे यत्र भवेद्वज्रं रसः सोऽमृतमुच्यते।
भस्माभावगतं युक्त्या वज्रवत् कुरुते तनुम् ॥ ४६ ॥

भाषा-पारेकी जिस औषधिमें हीरा मिला रहता है, वह अमृतकी समान कही जाती है ऐसी औषधिका सेवन करनेसे शरीर वज्ररूप हो जाता है॥४६ ॥

अथ वैक्रान्तविधिः।

वैक्रान्तं वज्रवच्छोध्यं नीलं श्वेतं च लोहितम्। वज्रलक्षणसंयुक्तं दाहाघातासहिष्णु तत् ॥ हयमूत्रेण तत् सिञ्चेत् तप्तं तप्तं त्रिसप्तधा। पंचाङ्गोत्तरवारुण्या लिप्तं मूषागतं पुटैः॥ कुंजराख्यैर्मृतिं याति वैक्रान्तं सप्तभिस्तथा। भस्मीभूतं तु वैक्रान्तं वज्रस्थाने नियोजयेत् ॥ ४७ ॥

भाषा-अब वैक्रान्तकी विधि कही जाती है। वैक्रान्त नामक मणि तीन प्रकारकी होती है। सफेद, नीली और लाल। हीराके शोधनेकी रीतिसे इसका शोधन होता है। हीरेमे जो लक्षण है, वही वैक्रान्तमे है। वैक्रान्त दाह और आघातको नहीं सह सकता। वैक्रान्तमणिको इक्कीस वार अग्निमें भस्म करके घोडेके मूत्रमें बुझावे। फिर मेढासिगीके पंचाङ्गके साथ घोटकर गोला बनावे। उस गोलेके भीतर वैक्रान्त रख सरैयामे धरकर सात गजपुटसे पाक करे। ऐसा करनेसे वैक्रान्त मर जाता है। जिन औषधादिमे हीरेका प्रयोग किया जाता है, उस औषधिमें हीरेके बदले वैक्रान्त दिया जा सकता है ॥ ४७ ॥

अथ हरितालादिविधिः ।

तालकं पोटलीं बद्ध्वा सचूर्णे कांजिके क्षिपेत् । दोलायंत्रेण यामैकं ततः कूष्माण्डजे रसे ॥ तिलतैले पचेद्यामं भस्मीभूतो न दोपकृत् । संशुद्धः कान्तिर्वीर्यं च कुरुते मृत्युनाशनः ॥ ४८ ॥

भाषा–अब हरितालविधि कही जाती है । पहले एक पोटलीमे हरितालको भरकर उसको चूर्णयुक्त कांजीमे डाल दे । फिर दोलायंत्रसे पेठेके रसमें एक प्रहर, तिलतेलमें एक प्रहर और त्रिफलाके रसमें चार प्रहरतक पचावे । ऐसा करनेसे हरितालभस्म होता है । उस हरितालके प्रयोगसे किसी प्रकारका दोप नहीं हो सकता । ऐसे हरितालसे कान्ति बढती है, वीर्य बढता है और मृत्युका नाश हो जाता है ॥ ४८ ॥

हरितालादीनां सत्वप्रकारः ।

लाक्षाराजीतिलाः शिग्रु टङ्कणं लवणं गुडम् । तालकार्द्धेन संमिश्य छिद्रमूषां निरोधयेत् ॥ पुटेत् पातालयंत्रेण सत्वं पतति निश्चयम् । तालवच्च शिलासत्वं ग्राह्यं तैरेव भेपजैः ॥४९॥

भाषा–लाख, राई, काले तिल, सहजना, सुहागा, नमक और गुड यह सब वस्तु और अर्द्धांश हरिताल ग्रहण करके इकट्ठा करे, घडियाके भीतर रखके बंद कर दे । इस प्रकार करनेसे हरितालका सत्व निकल आता है । वैद्योंको चाहिये कि इसही विधिसे मैनशिलका सत्व निकाले ॥ ४९ ॥

ऊर्णा लाक्षा गुडश्चेति पुरटंककैः सह । संमर्द्य वटिका कार्या छागीदुग्धेन यत्नतः ॥ ध्मातं ताप्यं च तीव्राग्नौ सत्वं मुंचति लोहितम् । एवं तालशिलाधातुविमलाखर्परादयः ॥ मुंचन्ति निजसत्वानि धमनात् कोष्ठकाग्निना ॥ ५० ॥

भाषा–मेंढेके रुएँ, लाख, गुड, गूगल, सुहागेकी खील इन सबको बराबर लेकर बकरीके दूधके साथ पीसकर गोलियां बनावे । उन गोलियोंके साथ सोनामक्खीको तेज आंचमें तपातेही वह गलेगी और उसमेंसे लाल रंगका सत्व निकलेगा । इस प्रकारसेही हरिताल, मैनशिल, विमल, खपरिया आदिको कोष्ठकाग्निमें चढाय सत्व निकाले ॥ ५० ॥

स्वर्णमाक्षिकसत्वप्रकारः ।

समगन्धं चतुर्यामं पक्त्वा ताप्यं ततः पचेत् ।

अर्द्धगन्धं यामयुग्मं भृष्टटङ्कार्द्धसंयुतम् ॥
अन्धमूषागतं ध्मातं सत्वं मुंचति शुल्ववत् ॥ ५१ ॥

भाषा-सोनामक्खी और गन्धक बराबर लेकर ४ प्रहरतक पाक करे। फिर आधा भाग गन्धक और आधा भाग सुहागेकी खील इस सोनामक्खीके साथ अन्धी घडियामे धरकर आंच लगावे। ऐसा करतेही सोनामक्खीका सत्व निकल आता है ॥ ५१ ॥

जैपालसत्वविधिः।

जैपालसत्ववातारिबीजमिश्रं च तालकम्।
कुप्पीस्थं वालुकायंत्रे सत्वं मुंचति यामतः ॥ ५२ ॥

भाषा-बराबर जमालगोटेका सत्व, अंडीके बीज और हरितालको ग्रहण करके मिलाय कुप्पीके भीतर स्थापित करे। फिर उसको एक प्रहरतक वालुका-यंत्रमें पाक करतेही सत्व निकल आता है ॥ ५२ ॥

अथवा कुक्कुटं वीरं धृत्त्वा मंदिरमागतम्। मलं मूत्रं गृहीत्वा च संत्यज्य प्रथमांशिकम् ॥ आलोड्य क्षीरमध्वाज्यैर्धमेत् सत्वार्थमादरात्। मुंचन्ति ताम्रवत् सत्वं तन्मुद्राजलपानतः ॥ नश्यन्ति जङ्गमविषं स्थावरं च न संशयः ॥ ५३ ॥

भाषा-अथवा ३ भाग मोरकी वीट या कुक्कुटकी वीट एकत्र करके दूध, घी और सहदके साथ यत्नसाहित अग्निपर पाक करे। ऐसा करनेसे उसका सत्व निकल आता है। उस सत्वको पीनेसे निःसन्देह स्थावर और जंगमविषका नाश होता है ॥ ५३ ॥

भूनागसत्वम्।

क्षीरेण पक्त्वा भूनागांस्तन्मृदा वाथ टङ्कणैः। मृष्टैश्चक्रीं विधायाथ पात्यं सत्वमयत्नतः ॥ यत्रोपरसभागोऽस्ति रसे तत्सत्व-योजनम्। कर्त्तव्यं तत्फलाधिक्यं रसज्ञमतमिच्छता ॥ ५४ ॥

भाषा-दूधके साथ खपरियाको पाक करके मिट्टी और भूने हुए सुहागेके साथ चकती बनावे। फिर उसका सत्व निकाले। जिसमें उपरसकी अधिकाई है यदि उस औषधिमे भूनागसत्व मिलाया जाय तो अधिक फल दिखलाई देता है ॥ ५४ ॥

अथ मनःशिलाशुद्धिः ।

जयन्तिकाद्रवे दोलायंत्रे शुद्धा मनःशिला ।
दिनमेकमजामूत्रे भृंगराजरसेऽपि वा ॥
शिला स्निग्धा कटुस्तिक्ता कफघ्नी लेखनी सरा ॥ ५५ ॥

भाषा–अब मैनशिलका शोधन कहा जाता है । जयंतीरस, बकरीका मूत्र और भांगरेका रस इन सबके साथ मैनशिलको दोलायंत्रमें अलग २ एक दिन पाक करनेसे अर्थात् जयन्तीरसके साथ एक दिन, बकरीके मूत्रके साथ एक दिन और भांगरेके रसके साथ एक दिन पाक करनेसे शुद्ध होती है । शुद्ध मनशिल स्निग्ध, कटु, तिक्त, कफनाशक, लेखन और विरेचक है ॥ ५५ ॥

कूपिकादौ परीपाकात् स्वर्णस्य कालिमापहा ।
कटुतैले शिलाचंपकदल्यान्तः सरत्यपि ॥ ५६ ॥

भाषा–चंपाकदलीके बीचमें मैनशिलको रखके कुप्पी आदिमें स्थापन करके कडवे तेलके साथ पाक करनेसे तिससे सुवर्णके कालेपनका नाश होता है ॥५६॥

अथ खर्परशुद्धिः ।

नरमूत्रे च गोमूत्रे जलाम्ले च ससैन्धवे ।
सप्ताहं त्रिदिनं वापि पक्वः शुध्यति खर्परः ॥ ५७ ॥

भाषा–अब खपरियाकी शुद्धि कही जाती है । खपरियाको मनुष्यमूत्र, गोमूत्र अथवा सेंधा पडे खट्टे पानीमें तीन रात्रि वा सात दिन पाक करनेसे शुद्ध होती है ॥ ५७ ॥

अथ तुत्थशुद्धिः ।

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं सममातोर्दशांशतः । टङ्कणेन समं पिष्ट्वाऽथवा लघुपुटे पचेत् ॥ तुत्थं शुद्धं भवेत् क्षौद्रे पुटितं वा विशेषतः । वान्तिर्भ्रान्तिर्यदा न स्तस्तदा शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ लेखनं भेदि च ज्ञेयं तुत्थं कण्डुकृमिप्रणुत् ॥ ५८ ॥

भाषा–अब तूतियेकी शुद्धि कही जाती है । दशांश बिल्लीकी विष्ठाके साथ एक भाग तूतिया पीसकर लघुपुटमें पाक करे अथवा सुहागेके साथ घोटकर लघुपुट दे अथवा सहदके साथ पचावे तब तूतिया शुद्ध होगा । जब देखे कि तूतियेका वान्तिदोष और भ्रान्तिदोष दूर हो गया है, तब उसको दोषहीन जाने । शुद्ध तूतिया लेखन, दस्तावर है । दाद और कृमिका नाश करनेवाला है ॥ ५८ ॥

अथ माक्षिकशुद्धिः ।

जम्बीरस्य रसे स्विन्नो मेषशृंगीरसे तथा ।
रंभातोयेन वा पाच्यं घस्रं विमलशुद्धये ॥ ५९ ॥

भाषा–अब माक्षिक शोधन कहा जाता है । जम्बीरीका रस, मेढासिंगीका रस वा केलेके रससे रौप्यमाक्षिकको एक दिन पाक करनेसे शुद्धि होती है ॥ ५९ ॥

अगस्त्यपत्रनिर्यासैः शिग्रुमूलं सुपेषितम् ।
तन्मध्ये पुटितं शुध्येत् ताप्यं वा चाम्लपाचितम् ॥ ६० ॥

भाषा–सहजनेकी जडको बिसोटेके पत्तेके साथ घोटके तिसमें सोनामक्खीको भरे । फिर उसमें पुट देकर अम्लरससे पचावे तो शुद्धि होगी ॥ ६० ॥

मतान्तरेण माक्षिकशोधनम् ।

सिन्धूद्भवस्य भागैकं त्रिभागं माक्षिकस्य च । मातुलुंगरसैर्वापि जम्बीरोत्थद्रवेण वा ॥ कृत्वा तदा लोहपात्रे लोहदर्व्या च चालयेत् । सिन्दूराभं भवेद्यावत् तावन्मृद्वग्निना पचेत् ॥ संशुद्धं माक्षिकं विद्यात् सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ६१ ॥

भाषा–दूसरा मत । एक भाग सेंधा और तीन भाग सोनामक्खीको मिलाय बिजौरा नीबूके रससे मन्दी आगपर पचावे । कढाईमें पकाना चाहिये, पकानेके समय लोहेकी करछीसे चलाता जाय । जब सिन्दूरकी समान लाल हो जाय तब फिर न चलावे । ऐसा करनेसे सोनामक्खी शुद्ध होती है और वह सब रोगमें दी जा सकती है ॥ ६१ ॥

माक्षिकस्य चतुर्थांशं गन्धं दत्त्वा विमर्दयेत् । उरुबूकस्य तैलेन ततः कुर्यात् सुचक्रिकाम् ॥ शरावसंपुटे कृत्वा पुटेद् गजपुटेन च । सिन्दूराभं भवेद्भस्म माक्षिकस्य न संशयः ॥ ६२ ॥

भाषा–सोनामक्खीके साथ तिससे चौथाई गन्धक मिलाय अंडीके तेलके साथ पीसकर चक्रिया बनावे । फिर उसको शरावपुटमे रखके गजपुटसे पाक करनेपर निःसन्देह सिन्दूरकी समान होगा ॥ ६२ ॥

माक्षिकं पित्तमधुरं मेहार्शःकृमिकुष्ठनुत् ।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम् ॥ ६३ ॥

भाषा–सोनामक्खी तिक्त, मधुर, मेहनाशक, बवासीरको हरनेवाली, कृमिकोढको दूर करनेवाली, कफपित्तनाशक, बलकारी और योगवाही रसायन है ॥ ६३ ॥

अथ कासीसशुद्धिः ।

सकृद्भृंगाम्बुना स्विन्नं कासीसं विमलं भवेत् ।
कासीसं शीतलं स्निग्धं श्वित्रनेत्ररुजापहम् ॥
पित्तापस्मारशमनं रसवद् गुणकारकम् ॥ ६४ ॥

भाषा–अब कासीसकी शुद्धि कही जाती है । भांगरेके रसके साथ एक वार कासीसको पाक करनेसे वह शुद्ध हो जाता है । शुद्ध कासीस शीतल, चिकना, श्वित्ररोगका नाशक, नेत्ररोगहर, पित्त और मृगीका नाशक और रसकी समान गुणकारी है ॥ ६४ ॥

अथ कान्तपाषाणशुद्धिः ।

लवणानि तथा क्षारौ शोभांजनरसे क्षिपेत् । अम्लवर्गयुतेनादौ दिनं घर्मे विभावयेत् ॥ तद्द्रव्यैर्दोलिकायंत्रे दिवसं पाचयेत्सुधीः । कान्तपाषाणशुद्धौ तु रसकर्म्म समाचरेत् ॥ ६५ ॥

भाषा–अब कान्तपाषाणका शोधन कहा जाता है । पांचो नोन, सज्जीखार और जवाखारको सहजनेके रसमे डाल दे फिर अम्लवर्गके रससे अर्थात् चांगेरी, लिचकुच, अमलवेत, जम्वीरी, बिजौरा, नारंगी, दाड़िम और कैथ इन सबके रससे एक दिन धूपमे भावना दे फिर इन समस्त रसोंमे एक दिन दोलायंत्रमे पाक करनेसे शुद्ध होता है । इस प्रकार शुद्ध कान्तपाषणही रस कर्ममे प्रयोग करना चाहिये ॥६५॥

अथ वराटिकाशुद्धिः ।

पीताभा ग्रन्थिला पृष्ठे दीर्घवृन्ता वराटिका ।
सार्द्धनिष्कभारा श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ॥
पादोननिष्कभारा च कनिष्ठा परिकीर्त्तिता ॥ ६६ ॥

भाषा–अब कौडीका शोधन कहा जाता है । जिस कौडीका रंग पीलापन लिये हो, जिसकी पीठं गठीली हो, जो गोल और लम्बी हो, जिस कौडीका वजन ३६ चोटलीभर हो उस कौडीको सर्वप्रधान जाने । जिस कौडीका वजन २४ रत्ती हो सो मध्यम है और जिसका वजन १८ रत्ती है, सो अधम जाने ॥ ६६ ॥

वराटी कांजिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयात् । परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयहारिणी ॥ कटूष्णा दीपनी वृष्या तिक्ता वातकफापहा । रसेन्द्रजारणे प्रोक्ता बिडद्रव्येषु शस्यते॥६७॥

भाषा-कौडीको दग्ध करके एक प्रहरतक कांजीमें रक्खे तो वह शुद्ध होती है इससे परिणामादि समस्त शूल , ग्रहणी, क्षयरोग, वात और कफका नाश हो जाता है । यह तीखी, गरम, दीपन, वृष्य, कडवी है और यह रसेन्द्रजारणमें और विडद्रव्यमें श्रेष्ठ कही गई है ॥ ६७ ॥

अथ हिंगुलशुद्धिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् । सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चयम् ॥ तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधसमुद्भवम् । मेहकुष्ठहरं रुच्यं बल्यं मेधाग्निवर्द्धनम् ॥ ६८ ॥

भाषा-अब सिंगरफका शोधन कहा जाता है । सिंगरफको भेडके दूधसे अथवा अम्लवर्गसे सात भावना दे तो वह निःसन्देह शुद्ध हो जायगा । यह तिक्त, गरम है । मेह, कुष्ठका नाशक, रुचिजनक, बलकारी, मेधा व अग्निका बढानेवाला है । यह पारे और गन्धकसे उत्पन्न हुआ है ॥ ६८ ॥

अथ सौवीरकंगुष्ठादिशुद्धिः ।

सौवीरं टङ्कणं शंखं कंगुष्ठं गैरिकं तथा ।
एते वराटवच्छोध्या भवेयुर्दोषवर्जिताः ॥ ६९ ॥

भाषा-अब सौवीरमिट्टी, शंखभस्म, मुरदाशंखादिका शोधन कहा जाता है । सौवीरमिट्टी, सुहागा, शंखभस्म, मुरदाशंख और गेरू इन सबको इस प्रकारसे शोधन करे जैसे कौडी शुद्ध होती है । इस रीतिसे यह शुद्ध होगी ॥ ६९ ॥

अन्यच्च ।

जम्बीरपयसा शुध्येत् काससीटंकणाद्यपि ।
नीलांजनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ॥
दिनैकमातपे शुद्धं भवेत् कार्येषु योजयेत् ॥ ७० ॥

भाषा-हीराकसीस व सुहागा इत्यादिको जम्बीरीके रसमे शोधन करना चाहिये । रसौतका चूर्ण करके एक दिन जंबीरीके रसमें भावना दे । यह सूखनेपर शुद्ध होता है । ऐसी शुद्ध रसौत सब कार्योंमे लेनी ॥ ७० ॥

अथ मंडूरशुद्धिः ।

अक्षांगारैर्धमेत् किट्टं लोहजं तद्द्रवां जलैः । सेचयेत्तप्ततप्तं च सप्तवारं पुनः पुनः ॥ चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलोद्भवैः । आलोडच भर्जयेद्वह्नौ मंडूरं जायते वरम् ॥ ७१ ॥

भाषा—अब मंडूर (कीट) शोधनकी विधि कही जाती है । बहेडेकी लकडीको लेकर उसमें पुरानी कीट खूब धमावे । लाल हो जानेपर गोमूत्रमें बुझावे ऐसे ७ वार चूर्ण करके दूना त्रिफलेका काढा एक हंडियामें भरे. उसमें पीसी हुई कीटको डालकर उसका मुँह अच्छी तरह वन्द करके कपरोटी कर अरने उपलोंके गजपुटमें फूंक दे । जब अपने आप शीतल हो जाय तब हांडीसे निकाल ले तो कीटका शुद्ध मण्डूर उत्पन्न हो । यह मण्डूर श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥

अथ सर्वरत्नशुद्धिः ।

पुंवज्रं गरुडोंगारं माणिक्यं पंचमं तथा । वैदूर्यपुष्पं गोमेदं मौक्तिकं च प्रवालकम् ॥ एतानि नव रत्नानि सदृशानि सुधारसैः । शुध्यत्यम्लेन माणिक्यं जयन्त्या मौक्तिकं तथा ॥ विद्रुमं क्षारवर्गेण तार्क्ष्यं गोदुग्धतस्तथा । पुष्परागं च सन्धानैः कुलत्थकाथसंयुतैः ॥ तंडुलीयजलैर्वज्रं नीलं नीलीरसेन वा । रोचनाभिश्च गोमेदं वैदूर्यं त्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥

भाषा—अब सर्व प्रकारके रत्नोंकी शुद्धि कही जाती है । पुरुषजातीय हीरा, गरुडमणि (पन्ना), अंगार (नीलकान्तमणि), माणिक, वैदूर्य, पुखराज, गोमेद, मोती और मूंगा इन नौ प्रकारके रत्नोंको अमृतकी समान जाने । इसमें अम्लसे माणिक, जयंतीरससे मोती, क्षारवर्गसे मूंगा, गायके दूधसे पन्ना, कुलथीके काथसे पुखराज, चौलाईके काथसे हीरा, नीलीके रससे नीलकान्तमणि, गोरोचनसे गोमेद और त्रिफलाके जलसे वैदूर्यमणिको शोधन करे ॥ ७२ ॥

मुक्तादिष्वथ शुद्धेषु न दोषः स्याच्च शास्त्रतः ।
तथापि गुणवृद्धिः स्याच्छोधनेन विशेषतः ॥ ७३ ॥

भाषा—मोती आदि अशोधित हो तोभी शास्त्रानुसार दोषकी सम्भावना नहीं जो शुद्ध हो जाय तो अधिक गुण दीखता है ॥ ७३ ॥

रत्नमारणविधिः ।

अम्लक्षारविपाचितं तु सकलं लोहं विशुद्धं भवेन्माक्षीकोऽपि शिलापि तुत्थगमनं तालं च सम्यक्तथा । मुक्ताविद्रुमशुक्तिकाथ चपला शुद्धा वराटाः शुभा जायन्तेऽमृतसन्निभाः पयसि च क्षिप्तः शुभः स्याद्बलिः ॥ ७४ ॥

भाषा–अम्लक्षारसे पाक करनेपर समस्त लोह शुद्ध होते हैं। सोनामक्खी, मैनशिल, तूतिया, अभ्रक, हरिताल, मोती, मूंगा, सीपी, शंख, कौडी और गन्धक इन सबको अग्निमें जलाय दूधके भीतर डाले । तब वे शुद्ध होकर अमृतकी समान होते हैं॥ ७४ ॥

लकुचद्रवसंपिष्टैः शिलागंधकतालकैः ।
वज्रं विनान्यरत्नानि म्रियन्तेऽष्टपुटैः खलु ॥ ७५ ॥

भाषा–मैनशिलको लिचकुचके रसमें पीसकर गन्धक व हरितालके साथ मिलाय तिसमें आठ पुट दे, तब सब रत्न मारित हो जाते हैं। परन्तु हीरा इस नियमसे मारित नहीं होता ॥ ७५ ॥

मतान्तरम् ।

स्वेदयेद्दोलिकायंत्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ।
मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकात् शोधनं भवेत् ॥ ७६ ॥

भाषा–जयंतीके पत्तोंके रसके साथ मणि, मोती, मूंगा आदि रत्नको दोलायंत्रमें एक प्रहरतक पकावे । ऐसा करनेसे शुद्धि हो जाती है ॥ ७६ ॥

कुमार्या तंडुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् । प्रत्येकं सप्तधैकं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः॥ मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः । क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियन्ते नात्र संशयः ॥ वज्रवत् सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ॥ ७७ ॥

भाषा–मोती, मूंगा और दूसरे रत्नोको दग्ध करके घीक्वारके रसमें डालकर सात बार चौलाईके रसमें डाले । फिर स्तनदुग्धमें सात बार डाले । ऐसा करनेसे ये रत्न जारित हो जाते हैं। हीरेके शोधन और मारनेकी रीतिके अनुसार सब रत्नोंका शोधन और मारण हो सक्ता है ॥ ७७ ॥

अथ सकलबीजानां तैलपातनविधिः ।

सुपक्वभानुपत्राणां रसमादाय धारयेत् ।
समस्तबीजचूर्णे यदुक्तानुक्तं पृथक् पृथक् ॥
आतपे मुञ्चते तैलं साध्यासाध्यं न संशयः ॥ ७८ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिन्तामणौ विषोपविषसाधनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

भाषा–अब समस्त बीजोंका तेल निकालनेकी विधि कही जाती है। इस

पुस्तकमें जिन बीजोंके चूर्णका वर्णन है और जिनका वर्णन नहीं है उन बीजोंको तपे हुए तालके रसमें भावना देकर धूपमें रखनेसे तेल निकल आता है ॥ ७८ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिन्तामणौ बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषानुवादयुक्त-
विषोपविषसाधन नाम सप्तम अध्याय ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातः प्रयोगीयमध्यायं व्याचक्ष्महे ॥ तत्र श्लोकचतुष्टयमिदं प्रागधिगन्तव्यम् । यथा साग्नीनां चरकमतं फलमूल्याद्यौषधं यदविरुद्धं तदपि रसानुपीतं भवेत्तदा त्वरितमुल्लाघः । मात्रा-वृद्धिः कार्या तुल्यायासुपकृतौ क्रमाद्विदुपा मात्राह्रासः कार्यः वैगुण्ये त्यागसमये च ॥ १ ॥

भाषा–अब प्रयोगाध्याय कहा जाता है । यहांपर प्रथम पहले कहे हुए चार श्लोकोका विचार करना उचित है । साग्निक लोगांके लिये चरकमें लिखे हुए फलमूलादि जो औषधियें अविरुद्ध हैं । यदि वे पारा सेवन करनेके अन्तमें व्यवहार की जांय तो शीघ्र फल मिल जाता है । जो फल समासम हो तथापि बुद्धिमान् पुरुष क्रमानुसार औषधिकी मात्रा बढावे । जब विकार देखा जाय, तब अथवा त्यागनेके समय क्रमसे मात्राको घटावे ॥ १ ॥

औषधीनां ग्राह्याग्राह्यविचारः ।

वल्मीककूपतरुतलरथ्यादेवालयश्मशानेषु ।
जाता विधिनापि हृता औषध्यः सिद्धिता न स्युः ॥ २ ॥

भाषा–जो औषधियें वमईपर, कुएके निकट, वृक्षकी मूलमे, गलीकूंचोमें, देव-मन्दिर और मसानमे उत्पन्न होती हैं, तिनको ग्रहण न करे । विधिके अनुसार ग्रहण करनेपरभी उनसे सिद्धि नहीं होती ॥ २ ॥

मुद्रावर्णनम् ।

सर्वप्रयोगयोग्यतया रसेन्द्रमारणाय शाम्भवीं मुद्रामभिदध्मः॥ अधस्ताप उपर्यापो मध्ये पारदगंधकौ । यदि स्यात् सुदृढा मुद्रा मंदभाग्योऽपि सिध्यति ॥ यदि कार्यमयोयन्त्रं तदा तत्सार इष्यते ॥ ३ ॥

भाषा-सर्व प्रयोगोंमें योग्यताके हेतु रसेन्द्र मारनेके लिये शाम्भवी मुद्राका वर्णन होता है। निचले भागमें ताप, ऊपरले भागमें जल और विचले भागमे पारा और गन्धक रक्खे। मुद्रा दृढ हो तो हीनभाग्यभी सिद्धिको प्राप्त करता है। यंत्र लोहेका बना हो तो सिद्धि निश्चय जाने ॥ ३ ॥

समे गन्धे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्। जीर्णे गुणत्रये गन्धे कामिनीदर्पनाशनः॥ चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रविशारदः। भवेत् पंचगुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्युजिद्भवेत् ॥ ४ ॥

भाषा-बराबर गन्धकसे जारित होनेपर रोगका नाश होता है। ऐसेही दुगुने गन्धकसे जारित होनेपर राजयक्ष्मा दूर होता है, त्रिगुण गन्धकसे जारित होनेपर स्त्रियोका गर्व खर्व होता है। चौगुने गन्धकसे जारित होनेपर तेजस्वी और सर्वशास्त्रविशारद होता है। पांच गुण गन्धकसे जारित होनेपर सिद्धि प्राप्त होती है और षड्गुण गन्धकमें जारित होनेपर मृत्युको जीत लिया जाता है ॥४॥

षड्गुणो रोगघ्न इति यदुक्तं तत्तु अन्तर्धूमयोरेवा-
धिगन्तव्यम्। तत्र गन्धस्य समग्रजारणाभावात्।
स्वर्णादिपिष्टिकायामपि रीतिरियम् ॥ ५ ॥

भाषा-पहले जो कहा है कि षड्गुण गन्धक रोग दूर करता है, सो अन्तर्धूम और वहिर्धूम जारणमें समझे। तिसमे गन्धकके समस्त जारणाभाव हेतु करके सुवर्णादिकी पिष्टीमभी यह नियम जाने ॥ ५ ॥

शुद्धविषप्रकारः।

वंशे वा माहिषे शृंगे स्थापयेत् शोधितं रसम्।
अमृतं च विषं प्रोक्तं शिवेन च रसायनम् ॥ ६ ॥

भाषा-शुद्ध पारेको बांस या भैंसके सींगमें रखना चाहिये। महादेवजीने कहा है कि, विष अमृतकी समान और रसायन है ॥ ६ ॥

योग्यायोग्यविचारः।

अमृतं विधिसंयुक्तं विधिहीनं तु तद्विषम्।
रेचनान्ते इदं सेवेत् सर्वदोषापनुत्तये ॥ ७ ॥

भाषा-विधिके अनुसार विषप्रयोग करनेसे वह विष अमृतकी समान हो जाता है, परन्तु अविधिसे कार्य करनेपर विषकाही कार्य करते हैं। जुलाब लेनेके पीछे पारा सेवन करनेसे समस्त दोष दूर हो जाते हैं ॥ ७ ॥

क्षेत्रीकरणम् ।

मृताभ्रं भक्षयेन्मापमेकमादौ विचक्षणः ।
पश्चात्तं योजयेद्देहे क्षेत्रीकरणमिच्छता ॥ ८ ॥

भाषा-जो बुद्धिमान् क्षेत्रीकरणकी वासना करता है, वह पहले एक मासा मृत अभ्रक सेवन करनेसे फिर शरीरमें योजित करे ॥ ८ ॥

अक्षेत्रीकरणे सूतो मृतोऽपि विषवद्भवेत् ।
फलसिद्धिः कुतस्तस्य सुबीजस्योपरे यथा ॥ ९ ॥

भाषा-विना क्षेत्रीकरणके हुए मृतक पाराभी विषकी समान अनिष्टकारी होता है । ऊपर भूमिमें श्रेष्ठ बीज बोनेकी समान तिसका फल मिलनेकी सम्भावना नहीं ॥ ९ ॥

कर्त्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने ।
न क्षेत्रकरणाद्देवि किंचित् कुर्याद्रसायनम् ॥ १० ॥

भाषा-हे देवि ! सर्व प्रकारकी रसायनोंमें क्षेत्रीकरण करना चाहिये । विना क्षेत्रीकरणके हुए रसायन सिद्ध नहीं होती ॥ १० ॥

वमनविधिः ।

निम्बक्काथं भस्मसूतं वचाचूर्णयुतं पिबेत् ।
पित्तान्तं वमनं तेन जायते क्लेशवर्जितम् ॥ ११ ॥

भाषा-बराबर वजन पारेकी भस्म और वचचूर्ण लेकर नीमक्काथके साथ सेवन करनेसे पित्तका ध्वंस होता है । परन्तु उस वमनमें किसी प्रकारका क्लेश नहीं होता ॥ ११ ॥

गन्धामृतो रसः ।

भस्मसूतं द्विधा गन्धं क्षणं कन्यां विमर्दयेत् ।
रुद्ध्वा लघुपुटे पच्यादुद्धृत्य मधुसर्पिषा ॥
निष्कमात्रं जरामृत्युं हन्ति गन्धामृतो रसः ॥ १२ ॥

भाषा-अब गन्धामृतरस नामक औषधि बनानेकी रीति कही जाती है । पारा भस्मसे दूना गन्धक पारेमें मिलाय घीक्वारके रसमें कुछ देर घोटे । फिर घडियाके भीतर बन्द करके लघुपुट दे । इसका नाम गन्धामृत रस है । निष्कपरिमाण यह औषधी लेकर घी और सहतके साथ मिलाय सेवन करे । इससे जरा और मृत्युका नाश हो जाता है ॥ १२ ॥

योगः ।

समूलं भृङ्गराजं तु छायाशुद्धं विमर्दयेत् ।
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत् ॥
पलैकं भक्षयेच्चानु अब्दान् मृत्युजरापहम् ॥ १३ ॥

भाषा-जडसहित भांगरेको उखाड छायामें सुखाय कर पीसे लेवे । फिर इसमें बराबर भाग त्रिफला चूर्णका मिलावे फिर इन सबकी बराबर शर्करा मिलाय एक पल सेवन करे, इसके सेवन करनेसे जराको उल्लंघन करके दीर्घजीवी हो सकता है ॥ १३ ॥

हेमसुन्दरो रसः ।

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत् । क्षीराज्यमधुना मिश्रं मासैकं कान्तपात्रके ॥ लेहयेन्मासषट्कं तु जरामृत्युविनाशनम् । बाकुचीचूर्णकर्षैकं धात्रीफलरसप्लुतम् ॥ अनुपानं लिहेन्नित्यं स्याद्रसो हेमसुन्दरः ॥ १४ ॥

भाषा-अब हेमसुन्दररस कहा जाता है ।एक भाग पारेकी भस्म, इससें चौथाई सुवर्णकी भस्म लेकर तिसके साथ घी दूध और मधु मिलाय एक मासतक कान्तलोहके पात्रमें रक्खे फिर इसको सेवन करे । ६ मासतक इसके चाटनेसे जरामृत्युका नाश हो जाता है । दो तोला बावची बीजका चूर्ण और कुछेक आमलेका रस इसका अनुपान है । इस औषधीको हेमसुन्दररस कहते हैं ॥ १४ ॥

चन्द्रोदयः ।

पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रं पलाष्टकं षोडशगन्धकस्य । शोणैः सुकार्पासभवप्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाभिः ॥ तत् काचकुंभे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च । पचेत् क्रमाग्नौ सितकाख्ययंत्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥ निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव । जातीफलं शोषणमिंद्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण एकः ॥ चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो भुक्ते हि वल्लीदलमध्यवर्त्ती । महोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥ घृतं घनीभूतम-

तीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समंडकानि । माषान्नपिष्टानि भवन्त्यपथ्यमानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥ वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयः स्तम्भनः समस्तगदखंडनः प्रचुरयोगपंचाननः । गृहेषु रसराडयं भवति यस्य चंद्रोदयः स पंचशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्वल्लभः ॥ १५ ॥

भाषा–एक पल शुद्ध नम्र सुवर्णके पत्र, आठ पल शुद्ध पारा और १६ पल शुद्ध गन्धक इन सबको इकट्ठा करके कज्जली बनावे । फिर लाल कपासके फूल और घीकारके रसमें भावना दे, सूख जानेपर मोटी काचकी शीशीमें धरे फिर खडियासे कुप्पी (शीशी) का मुँह बन्द करके एक हंडियामें उसे रक्खे । रेतेसे इस प्रकार हंडियाको भर दे कि शीशीके गलेतक रेता आ जाय । फिर ३ दिनतक आंच दे । जब शीशीके गलेपर लाल २ औषधि लग जाय तभी उसको बाहर निकाले। फिर एक पल यह औषधी, ४ पल कपूरका चूर्ण, ४ मासे जायफल, त्रिकटु, लौंग, कस्तूरी इन सबको मिलानेसे औषधी बन जाती है । इसका नाम चन्द्रोदय है । पानके साथ एक मासा यह औषधि खाई जाती है । इस औषधिके प्रसादसे कामसे अन्धी हुई सैकडों स्त्रियोंका गर्व तोड दिया जाता है । इस औषधीको सेवन करनेके पीछे घी, अत्यन्त गाढा दूध, नम्रमांस मण्डसहित उर्द, अन्न, पिष्टक और दूसरे उत्तम भोजन पथ्य हैं । यह औषधि वलीपलितका नाश करती है, इससे आयुका स्तम्भन होता है, समस्त रोग दूर होते हैं । यह चन्द्रोदयनामक रसराज जिसके घरमें रहता है, वह मदनसे गर्वित होकर स्त्रियोंका परम प्यारा होता है ॥ १५ ॥

दाक्षिणात्याः शोणकार्पासपुष्पद्रवमेव गृह्णन्ति पाश्चात्याः निर्वृन्ततत्पुष्पैरेव यावदार्द्रत्वं मर्दयन्ति । उभयथैव निष्पत्तेरदोषः उभयथैवेति सर्वत्रान्वयः ॥ १६ ॥

भाषा–दक्षिणके रहनेवाले लाल कपासके फूलोंका रस ग्रहण करते हैं, परन्तु पश्चिमके रहँवासी वृन्तहीन पुष्पको पीसते हैं । परन्तु इन दोनोमें कोई रीति दोषकी नहीं है ॥ १६ ॥

रतिकाले रतान्ते च पुनः सेव्यो रसोत्तमः । कृत्रिमं स्थावरविषं जंगमं विषवारि च ॥ न विकाराय भवति साधकेन्द्रस्य वत्सरता । मृत्युंजयो यथाभ्यासात् मृत्युं जयति देहिनः ॥ तथायं

साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः । शास्त्रान्तरेऽस्य मकरध्वजो नाम ॥ १७ ॥

भाषा-रतिके समय और रति करनेके पीछे फिर इस रसश्रेष्ठको सेवन करना चाहिये । साधक पुरुषके लिये स्थावर या जंगम कोई विषभी नुकसान नहीं कर सकता । जिस प्रकार मृत्युञ्जयका अभ्यास करनेके हेतु मृत्युको जीत लिया जाता है, वैसेही यह चन्द्रोदय रस साधकश्रेष्ठके लिये जरा और मरणको दूर करता है । दूसरे मतसे इस चन्द्रोदयकोही मकरध्वज कहते हैं ॥ १७ ॥

मृत्युंजयो रसः ।

बलिः सूतभस्मनिम्बरससमभागौ भस्म सिकताह्वये यंत्रे कृत्वा समरविकणाटंकणरजः । त्रिघस्रं मातुलुंगाम्भो लवकदलितक्षौद्रहविषा विलीढो माषैकं दरयति समस्तं गदगणम् ॥ जरां वर्षैकेन क्षपयति च पुष्टिं वितनुते तनोस्तेजस्कारं रमयति वधूनामपि शतम् । रसः श्रीमान् मृत्युंजय इति गिरीशेन गदितः प्रभावं को वान्यः कथयितुमपारं प्रभवति ॥ १८ ॥

भाषा-गन्धक, पाराभस्म, नीमके पत्तोका रस इन सबको बराबर लेकर वालुकायंत्रमें घरमें तिसमें बराबर ताम्रचूर्ण, पीपलका चूर्ण और सुहागेका चूर्ण डाले, फिर थोडा थोडा बिजौरा नींबूका रस, सहद व घी डालकर तीन दिनतक बराबर घोटे, एक मासा इस दवाईके चाटनेसे समस्त रोग दूर होते हैं । इस औषधिका नाम मृत्युञ्जयरस है । एक वर्षतक इसका सेवन करनेसे जरा दूर होती है, पुष्टि होती है, देह तेजस्वी होता है और वह पुरुष सौ स्त्रियोंको रमण कर सकता है । महादेवजीने स्वयं कहा है कि यह औषधि श्रीमान् महादेवजीकी समान है । कौन पुरुष इसके माहात्म्यको वर्णन कर सकता है ॥ १८ ॥

रसशार्दूलः ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं शुद्धं संमर्दयेद्दिनम् । प्रतिलोहं सूततुल्यं नष्टलोहं मृतं क्षिपेत् ॥ ब्राह्मी जयन्ती निर्गुण्डी विषमुष्टिः पुनर्नवा । गालका गिरिकर्णी चार्ककृष्णधत्तूरकं यवाः ॥ अटरूषकाकमाचीद्रवैरासां विमर्दयेत् । गुंजात्रयं चतुष्कं वा सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ रोगोक्तमनुपानं वा कवोष्णं वा जलं पिबेत् ॥ १९ ॥

भाषा–एक भाग शुद्ध पारा और दूने गन्धकको इकट्ठा करके एक दिन पीसके तिसके साथ एक भाग प्रतिलोह और आठ भाग मृतलोह मिलावे । ब्राह्मी, जयंती, संभालू, कुचला, सांठ, गालका, कोयल, आक, काला धतूरा, जौ, अडूसा और मकोय इन सबके रसके साथ घोट ले । सब रोगोंमें इस औषधिका प्रयोग किया जा सकता है । मात्रा तीन वा चार रत्ती है । कुछेक गरम जलका अनुपान है । इसका नाम रसशार्दूल है ॥ १९ ॥

त्रिनेत्रो रसः ।

रसगन्धकताम्राणि सिन्धुवाररसैर्दिनम् । मर्दयेदातपे पश्चात् वालुकायंत्रमध्यगम् ॥ अन्धमूषागतं यामत्रयं तीव्राग्निना पचेत् । तद्गुञ्जा सर्वरोगेषु पर्णखंडिकया सह ॥ दातव्यं देहसिद्ध्यर्थं पुष्टिवीर्यबलाय च ॥ २० ॥

भाषा–पारा, गन्धक और तांबा बराबर लेकर सिन्धुवारके रसमें एक दिन धूपमें घोटे । फिर घडियाके भीतर रखके मुँह बन्द कर तीन प्रहरतक तेज आंचसे वालुकायंत्रमें पाक करे । पानके साथ एक रत्ती इस औषधिको सेवन किया जाता है । सब रोगोंमें यह औषधि दी जाती है । शरीर सिद्धिके लिये और पुष्टि, वीर्य और बलवृद्धिके लिये इस औषधिको देना चाहिये ॥ २० ॥

अमृतार्णवः ।

सूतभस्म चतुर्भागं लोहभस्म तथाष्टकम् । मेघभस्म च षड्भागं शुद्धगंधस्य पंचकम् ॥ भावयेत्त्रिफलाक्वाथे तत्सर्वं भृङ्गजद्रवैः । शिग्रुवह्निकटुक्याथ सप्तधा भावयेत्पृथक् ॥ सर्वतुल्या कणा योज्या गुडैर्मिश्रं पुरातनैः । निष्कमात्रं सदा खादेत् जरां मृत्युं निहन्त्ययम् ॥ ब्रह्मायुः स्याच्चतुर्मासैरसोऽयममृतार्णवः । तिलकौरुण्टपत्राणि गुडेन भक्षयेदनु ॥ २१ ॥

भाषा–चार भाग पारेकी भस्म, आठ भाग लोहभस्म, छः भाग जारित अभ्रक और पाच भाग शुद्ध गन्धक इन सबको सात बार त्रिफलाके क्वाथसे भावना देकर भांगरा, सहजना, चीता और कुटकी इन सबके रसमे अलग २ सात बार भावना दे । फिर सब वस्तुओंके बराबर पिप्पलीचूर्ण मिलावे। यह औषधि एक निष्क लेकर पुराने गुडके साथ सेवन करे इससे जरा और मृत्यु हार जाती है। चार मासतक इस अमृतार्णवके सेवन करनेसे ब्रह्माकी समान परमायु होती है। इस औषधिको सेवन करके तिल गुड और पीली कटेरीके पत्तोका रस एकत्र करके पिये ॥२१॥

शङ्करमतलोहः ।

प्रणम्य शंकरं रुद्रं दण्डपाणिं महेश्वरम् । जीवितारोग्यमन्विच्छन्नानन्दः पृच्छते गुरुम् ॥ सुखोपायेन हे नाथ शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना । दुर्बलानां च भीरूणां चिकित्सां वक्तुमर्हसि ॥ २२ ॥

भाषा-एक समय आनन्दनामक शिवका शिष्य जीवोंकी आरोग्यवासनासे दण्डधारी शुभकारी महादेवजीको प्रणाम करके पूछता भया कि हे नाथ ! शस्त्र, क्षार और वह्निकर्मके विना ऐसा कौनसा सुखकारी उपाय है जिस करके दुर्बल और भीत चित्तवाले मनुष्योंकी चिकित्सा हो सके सो मुझसे वर्णन कीजिये ॥२२॥

तच्छिष्यवचनं श्रुत्वा लोकानां हितकाम्यया । अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं भैषज्यमिदमीरितम् ॥ पाण्डिवज्रादिलोहानामादायान्यतमं शुभम् । पत्तूरमूलकल्केन स्वरसेन दहेत्ततः ॥ वह्नौ निःक्षिप्य विधिवत् शालांगारेण निर्धमेत् । ज्वाला च तस्य योक्तव्या त्रिफलाया रसेन च ॥ ततो विज्ञाय गलितं शंकुनोर्द्ध्वं समुत्क्षिपेत् । त्रिफलाया रसे पूते तदाकृष्य तु निर्वपेत् ॥ न सम्यग्गलितं यत्तु तेनैव विधिना पुनः । ध्मातं निर्वापयेत्तस्मिन् लोहं तत्त्रिफलारसे ॥ ततः संशोध्य विधिवत् चूर्णयेल्लोहभाजने । लोहेन च तथा पिंष्यात् दृषदि श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ कृत्वा लोहमये पात्रे मार्द्दे वा लिप्तरन्ध्रके । रसैः पंकसमं कृत्वा पचेत्तद्गोमयाग्निना ॥ पुटानि क्रमशो दद्यात् पृथगेषां विधानतः । त्रिफलार्द्रकभृङ्गानां केशराजस्य बुद्धिमान् ॥ कन्दमाणकभल्लातवह्नीनां शूरणस्य च । हस्तिकर्णपलाशस्य कुलिशस्य तथैव च ॥ पुटे पुटे चूर्णयित्वा लोहात् षोडशिकं पलम् । तन्मानं त्रिफलायाश्च पलेनाधिकमाहरेत् ॥ अष्टभागावशिष्टे तु रसे तस्याः पचेद्बुधः । अष्टौ पलानि दत्त्वा तु सर्पिषो लोहभाजने ॥ तावेव लोहदर्व्यां तु चालयेत् विधिपूर्वकम् । ततः पाकविधानज्ञः स्वच्छे चोर्द्धे च सर्पिषि ॥ मृदुमध्यादिभेदेन

गृह्णीयात् पाकमाज्यतः। आरभेत विधानेन कृतकौतुकमंगलः॥ घृताभ्रमधुहीसंयुक्तं लिहेदारक्तिकक्रमात् । वर्द्धमानानुपानं च गव्यं क्षीरोत्तमं मतम् ॥ गव्याभावेप्यजायाश्च स्निग्धवृष्यादिभोजनम् । सद्यो वह्निकरं चैव भस्मकं च नियच्छति ॥ हन्ति वातं तथा पित्तं कुष्ठानि विषमज्वरम् । गुल्माक्षिपाण्डुरोगांश्च निद्रालस्यमरोचकम् ॥ शूलं सपरिणामं च प्रमेहं चापबाहुकम् । श्वयथुं रक्तस्रावं च दुर्णाम च विशेषतः ॥ बलदं बृंहणं चैव कान्तिदं स्वरवर्द्धनम् । लाघवं च मनोज्ञं च आरोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ आयुष्यं श्रीकरं चैव वयस्तेजस्करं तथा । सस्त्रीकं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ॥ दुर्णामारिरियं चाशु दृष्टो वारसहस्रशः । निर्मूलं दह्यते शीघ्रं यथा तूलमिवाग्निना ॥ २३ ॥

भाषा—महादेवजीने शिष्यका यह वचन सुनकर लोकका हित करनेके लिये अर्श (ववासीर) का नाश करनेवाली औषधि कही कि पहले पाण्डि और वज्रादि लोहमेंसे किसी एक प्रकारका लोहा ले चतुर्थांश मैनाशिल या चतुर्थांश सोनामक्खीसे साफ करे । फिर शालिच शाकके मूलके कल्कसे और तिसके रससे उस लोहेपर लेप करे। फिर शालके कोयलेंमें जलावे जव वह भली भांतिसे गल जाय तो त्रिफलाके रसमे बुझावे । यदि भली भांतिसे न गले तो ऊपर लिखे नियमके अनुसार फिर अग्निमे जलाय पहलेकी नांई त्रिफलाके रसमे बुझावे। जव इस प्रकारसे लोहा शुद्ध हो जाय तो उसको लोहेके वर्त्तनमे रखकर चूर्ण करे फिर पत्थरके पात्रमें रखकर लोहेकी मूसलीसे महीन २ चूर्ण कर ले । तदुपरान्त लोहेके कढाईमे या चपटे छिद्रवाले मिट्टीके पात्रमे रखकर त्रिफला, अदरक, भांगरा, केशराज, कन्द, मानकन्द, भिलावा, चीता, जिमीकन्द, हस्तिकर्णपलाश और हड़जोडा इन सवके रसके साथ गाढा २ घोटकर गोवरके उपलोंकी आगमे, त्रिफलादि द्रव्यसे अलग २ पुट दे । इस लोहेको १६ पल ग्रहण करे फिर ६४ पल जलमे १७ पल त्रिफला डालकर जव आठ भाग वाकी रह जाय तो उतारकर उस जलमे ऊपर कहा हुआ १६ पल लोहा डालकर लोहेकी कढाईमें पाक करे । पाकके समय उसमे ८ पल घी डालकर लोहेकी कर्छलीसे विधिपूर्वक उसको चलावे । पाकके विधानका जाननेवाला वैद्य जव देखे कि घी स्वच्छ होकर ऊपर आ गया है, तिस कालमे मृदु, मध्यादि भेदसे पाक शेष करके औषधि ग्रहण करे फिर मंगलकर्मका अनु-

स्नान करके विधिविधानसे औषधि सेवन करावे। घी, अभ्रक और थूहरके दूधको मिलाकर इस औषधिको सेवन करना चाहिये। इसकी मात्रा एक रत्तीसे आरम्भ करके क्रमानुसार बढावे। इसका अनुपान गायका दूध है, गायका दूध न मिले तो बकरीका दूध ले। इस औषधिका सेवन करके चिकना और बलकारी द्रव्य भोजन करे। इस औषधिसे अग्नि बढती है और भस्मकरोगका नाश होता है। यह वात, पित्त, कुष्ठ, विषमज्वर, गोला, नेत्ररोग, पाण्डु, निद्रा, आलस्य, अरुची, परिणामादिशूल, प्रमेह, अपबाहुक, श्वयथु, रक्तका निकलना और दुर्णाम रोगका नाश होता है। यह बलदाई, बृंहण, कांतिकारी, स्वरवर्द्धन, हलका, मनोज्ञ आरोग्यकारी, पुष्टिजनक, आयुष्य, श्रीकर, उमरका बढानेवाला, तेजकारी, पुत्रोत्पादक और बलीपलितादिका नाश करनेवाला है। इस दुर्णामाकी नाश करनेवाली औषधिका गुण सहस्रवार परीक्षित हुआ है। अग्नि जिस प्रकार रुईके ढेरका नाश करती है, वैसेही यह औषधि रोगोंके समूहको जडसहित नाश करती है ॥ २३ ॥

पथ्यम्।

सौकुमार्याल्पकायत्वान्मद्यसेवी यदा नरः। जीर्णमद्यानि युक्तानि भोजनैः सह पाययेत् ॥ लावकस्तित्तिरिर्गोधामयूरशशकादयः। वटकः कलविंकश्च वर्तिश्च हरितालकः ॥ श्येनकश्च बृहल्लावो वनविष्किरकादयः। पारावतमृगादीनां मांसं जांगलकं शुभम् ॥ मद्गुरो रोहितः श्रेष्ठः शकुलश्च विशेषतः। मत्स्यराज इमे प्रोक्ता हितमत्स्याश्च ये नराः ॥ प्रशस्तं वार्ताकुफलं पटोलं बृहतीफलम्। प्रलम्बाभीरुवेत्राग्रं ताडकं तण्डुलीयकम् ॥ वास्तूकं धान्यशाकं च कर्णालूकपुनर्नवम्। नारिकेलं च खर्जूरं दाडिमं लवलीफलम् ॥ शृंगाटकं च पक्वाम्रं द्राक्षालताफलानि च। जातीकोषं लवङ्गं च पूगं तालफलं तथा ॥ २४ ॥

भाषा– जो लोग सुकुमार और अल्पकाय हैं वे मदका सेवन करनेवाले हो तो उनको यह औषधि सेवन करनेके पीछे पुराना मद्य देना चाहिये। इस औषधिका सेवन करके बटेरका मांस, तीतरका मांस, गोहका मांस, मोरका मांस, खरहेका मांस, वटकका मांस, कलविङ्कका मांस, वत्तकका मांस, हरितालमांस, बाजमांस,

बृहल्लावमांस, वनविष्किरादिका मांस, जंगली कबूतर और मृगादिका मांस, मद्गु-मत्स्य, रोहमत्स्य, शकुलमत्स्य, सजीवमत्स्य पथ्य करे । इसके सिवाय बैंगन, परवल, कटेरी, तालाङ्कुर, शतावरी, वेचाम्र, ताड़क, चौलाई, वथुआ, धनियां, कर्णालू, सांठ, नारियल, खजूर, दाडिम, हरफारेवड़ी, सिंगाड़ा, पका आम, दाख, तालफल, जायफल, लौंग, सुपारी और पान पथ्य करा जा सक्ता है ॥ २४ ॥

अपथ्यम् ।

नाश्नीयाल्लकुचं कोलं कर्कन्धुं बदराणि च । जम्बीरं बीजपूरं च करमर्द्दकतिन्तिडी ॥ आनूपानि च मांसानि क्रकरं पुण्ड्रकादिकम् । हंससारसदात्यूहमद्गुकाकबलाहकान् ॥ माषकन्दकरीराणि चणकं च कलम्बकम् । कूष्माण्डकं च कर्कोटिं केबुकं च विशेषतः ॥ कन्दुकं कालशाकं च कशेरुं कर्कटीं तथा । विदलानि च सर्वाणि ककारादींश्च वर्जयेत् ॥ २५॥

भाषा–इस औषधिका सेवन करके जिस २ को वर्जन करे इस समय वह अपथ्य कहे जाते हैं। बड़हल, वेर, छोटा वेर, पेमदी वेर, जम्बीरी, विजौरा, ककरांदा, इमली इन सबको छोड़े । इसके सिवाय आनूपमांस, क्रकरमांस, पुण्ड्रकादिमांस, हंसमांस, सारसमांस, दात्यूहमांस, मद्गु, काकमांस, बकमांस और उर्द, कन्द, अंकुर, चना, पेठा, ककड़ी, कलम्बीशाक, केउया कन्दूरी, कालशाक, कशेरू, ककड़ी, समस्त विदल और ककारादि द्रव्य अपथ्य हैं ॥ २५ ॥

रुद्रकल्पितदुर्नामारिचूर्णराजः ।

चूर्णराजस्तथा चायं स्वयं रुद्रेण भावितः । जगतामुपकाराय दूर्नामारिरयं ध्रुवम् ॥ स्थानादपैति मेरुश्च पृथ्वी पर्यैति वा पुनः । पतन्ति चन्द्रताराश्च मिथ्या चेदं न हि ध्रुवम् ॥ ब्रह्महन्तृकृतघ्नाश्च क्रूराश्चासत्यवादिनः । वर्जनीया विदग्धेन भिषजा गुरुनिन्दकाः ॥ २६ ॥

भाषा–महादेवजीने स्वयं संसारके मंगलार्थ यह दुर्नामारिचूर्णराज कहा है । यदि सुमेरुपर्वत अपने स्थानसे चलायमान हो जाय, यदि पृथ्वी पर्यस्त हो जाय, यदि तारे पृथ्वीपर गिरें तथापि यह औषधि विफल नहीं हो सकती । विदग्धवैद्यकभी ब्रह्मघाती, कृतघ्न, क्रूर, मिथ्यवादी और गुरुनिन्दकको यह औषधि न दे ॥ २६ ॥

मुनिरसपिष्टविडङ्गं मुनिरसलीढं चिरस्थितं घर्मे ।
द्रावयति लोहकिट्टं वह्निर्नवनीतपिण्डमिव ॥
जीर्णे लोहे तु पतति चूर्णं भुंजीत सिद्धिसाराख्यम् ।
रक्तदोषं नश्यति निवर्द्धते जाठरो वह्निः ॥ २७ ॥

भाषा-वायविडङ्गको अगस्तियाके पत्तोंके रसमे मर्दन करके बहुत देरतक सूर्यकी किरणोमें रखनेसे अग्नि जिस प्रकार मक्खनके गोलेको पिघलाती है, वैसेही मण्डूरको पिघलाती है । इस भांति लोहजीर्ण होनेपर तिसके साथ सिद्धिसाराख्य चूर्णका सेवन करनेसे रक्तका दोप नष्ट होता है और जठरानल बढती है ॥ २७॥

सिद्धिसाराख्यचूर्णम् ।

पथ्यासैन्धवशुण्ठीमागधिकानां पृथक् समं भागम् । त्रिवृता-भागो निम्बभाव्यं स्यात् सिद्धिसाराख्यम् ॥ काले मलप्रवृत्तिर्लाघवमुदरे विशुद्धिरुद्गारे । अंगेषु नावसादो मनःप्रसादोऽस्य परिपाके ॥ रक्तिर्द्वादशकादूर्ध्वं वृद्धिरस्य भयप्रदा ॥२८॥

भाषा-हर्र, सेंधा, सोंठ और सफेद जीरा बराबर लेकर दो भाग नींबूके रसके साथ भावना दे फिर शुष्क होनेपर जो चूर्ण होता है तिसकाही नाम सिद्धिसार है। इस चूर्णका सेवन करनेसे यथा समयमे कोठा साफ हो जाता है, पेट हलका होता है, उद्गारशुद्धि होती है, अंगमें अवसाद नहीं पैदा होता । मन प्रफुल्ल रहता है यह औषधि १२ रत्तीसे अधिक सेवन करे तो भयदायी होती है ॥ २८ ॥

कुनट्या वा माक्षिकस्य वा लोहापेक्षया चतुर्थांशः। माक्षिकस्य षोडशांश इत्येके। पत्तूरः शालिश्चा। अत्र च वधानन्तरं सुमर्दितं कृत्वा त्रिफलाक्काथेन बहुधा भानुपाकः। तदनु स्थालीपाकः। कुलिशः खंडकर्णः पुटस्तु लौहसमक्काथादिना। किञ्च यथोक्तपुटानन्तरं यथाव्याधिप्रत्यनीकौषधैरेव पुटो देय इति व्यवहारः। भस्मबाहुल्यहानये पुटार्थं द्रवदानमात्रा पंकोपमत्वकारिणी इति केचित् । पलेनाधिकमिति त्रिफलायाः सप्तदशपलान् । प्रलंबस्तालांकुरः । अभीरुः शतावरी । व्यक्तमन्यत् ॥ २९ ॥

भाषा—इस औषधिमें मेनशिल या सोनामक्खी लोहेसे चौथाई लेनी चाहिये। कोई २ षोडशांश सोनामक्खी ग्रहण करते हैं। पत्तूरका अर्थ शालिंच शाक है। इस औषधिको बांधकर त्रिफलाके क्वाथमे पीसकर बहुधा भानुपाक करे। तदुपरान्त स्थालीपाक करे। कुलिशका अर्थ खण्डकर्ण (एक प्रकारका आलू) है। लोहेकी बराबर क्वाथादिसे पुट दे। कहे हुए पुट देनेके पीछे व्याधिविपरीत औषधिसे पुट दे। इस प्रकार व्यवहार देखा जाता है। कोई २ वैद्य कहते हैं कि भस्मकी बहुतायत घटानेके लिये पुटार्थ तरल द्रव्य दे। ऐसा करनेसे पंककी समान होता है। मूलमें पलेनाधिकं शब्दसे त्रिफलाके सत्रह पल समझे। प्रलम्बशब्दसे तालांकुर और अभीरु शब्दसे शतावरी समझना चाहिये ॥ २९ ॥

अथ नागार्जुनमतलोहजारणम् ।

नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोहशास्त्रमतिगहनम्। तस्यानुस्मृतये वयमेतद्विशदाक्षरैर्ब्रूमः॥ मेने मुनिः स्वतंत्रोऽयःपाकं न पलपंचकादर्वाक्। सुबहुप्रयासदोषादूर्ध्वं च पलत्रयोदशकात्॥ तत्रायसि पचनीये पंचपलादौ त्रयोदशपलान्ते। लोहात् त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या षड्भिः पलैरधिका ॥ मारणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलैकभागसंपाद्याः । त्रिफलाभागद्वितयं गृहणीयं लौहपातार्थम् ॥ सर्वत्रायःपुटनात् यथैकांशे शरावसंख्यातम् । प्रतिपलमेतद्द्विगुणं पाथः क्वाथार्थमादेयम् ॥ सप्तपलादौ भागे पंचदशान्तेऽम्भसां शरावैः । त्रयोदशान्तैरधिकं तद्वारि कर्त्तव्यम् ॥ तत्राष्टमो विभागः शेषः क्वाथस्य यत्नतः स्थाप्यः । तेन हि मारणपुटनस्थालीपाका भविष्यन्ति ॥ ३० ॥

भाषा—अब नागार्ज्जुनके मतसे लोहजारण कहा जाता है। मुनिश्रेष्ठ नागार्ज्जुनने जो लोहशास्त्र कहा है वह अति कठिन है, इस कारण हम उसका स्पष्ट अर्थ करते है। बहुत प्रयासके दोषसे नागार्ज्जुनके मतसे पांच पलसे ऊपर संख्या १३ पलतक लोहेके जारण करनेकी व्यवस्था है। वह कहते हैं कि जितना लोहा हो त्रिफला उससे तिगुना और ६ पल हो। मारण, पुटन और स्थालीपाकमें लोहेका सोलहवां भाग त्रिफला ग्रहण करे। लोहपाकके लिये दो भाग त्रिफला ग्रहण करे। सब जगह लोहपुटनमे त्रिफला एक भाग और क्वाथके लिये जल ३ सरैया दे। ७ पलसे १५ पलतक लोहेमे प्रत्येक पल पीछे ३ सरैयासे ११ सरैयातक

अधिक पानी मिलाकर बचा हुआ अष्टमांश यत्नसहित ले । इस प्रकार करनेसे मारण, पुटन और स्थालीपाक हो जाता है ॥ ३० ॥

पाकार्थं तु त्रिफलाभागद्वितीयशरावसंख्यातम् । प्रतिपलमम्बुसमं स्यादधिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥ तत्र चतुर्थो भागः शेषो निपुणैः प्रयत्नतो ग्राह्यः । अयसः पाकार्थत्वात् स हि सर्वस्मात् प्रधानतमः ॥ पाकार्थमश्मसारे पंचपलादौ त्रयोदशपलान्ते । दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकाधिकैरधिकम् ॥ पंचपलादिर्मात्रा तदभावे तदनुसारतो ग्राह्यम् । चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात् ॥ त्रिफलात्रिकटुचित्रककान्तक्रामकविडंगानाम् । जातीफलजातीकोषैलाकक्कोललवंगानाम् ॥ सितकृष्णजीरयोरपि चूर्णान्ययसा समानानि स्युः । त्रिफला त्रिकटुविडंगा नियता अन्ये यथाप्रकृतिः ॥ कालायसदोषकृते जातीफलादेर्लवङ्गकान्तस्य । क्षेपः प्राप्त्यनुरूपः सर्वस्योनस्य चैकाद्यैः॥ कान्तक्रामकमेकं निःशेषं दोषमपहरत्ययसः । द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाज्यं ग्राह्यं यथाप्रकृति ॥ यदि भेषजभूयस्त्वं स्तोकत्वं वा तथापि चूर्णानाम् । अयसा साम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पे ॥ एवं धात्वनुसारात् तत्तत्कथितौषधस्य बाधेन। सर्वत्रैव विधेयस्तदकथितस्यौषधस्योहः॥ ३१ ॥

भाषा-लोहपाकार्थ पाककालमें लोहेसे दूना त्रिफला और प्रतिपल लोहेके ऊपर आध सेर जल ग्रहण करे। इसके साथ एक सेर जल अधिक डालकर चौथाई शेष रक्खे । पाकार्थ लोहेकी मात्रा ५ पलसे लेकर १३ पलतक जाने । अर्थात् जो ५ पल लोहा हो तो दूना अर्थात् १० पल त्रिफला ले और जल प्रतिपलमें आध सेरके हिसाबसे ५ सेर और अधिक एक सेर यह ६ सेर डाले। बाकी डेढ सेर रक्खे । दूध सवादो सैरेया अधिक ले, बस ६॥ सेर ले । फिर त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक, नागरमोथा, वायविडङ्ग, जायफल, जावित्री, इलायची, कंकोल, लौंग, सफेद जीरा, काला जीरा इन सबका चूर्ण मिलाकर लोहेकी बराबर दे । परन्तु यह सब उतने ले जितने मिलें। घी स्वभावानुसार दूना, तिगुना और चौगुना

देना चाहिये । त्रिकटु, त्रिफला और विडङ्ग अवश्य देना परन्तु इनके अतिरिक्त और द्रव्य प्रकृतिके अनुसार देवे ॥ ३१ ॥

कान्तादिलोहमारणविधानसर्वस्य उच्यते तावत् । यस्य कृते तल्लोहं पक्तव्यं तस्य शुभदिवसे ॥ समृदङ्गारकरालितनतभूभागे शिवं समभ्यर्च्य । वैदिकविधिना वह्निं निधाय दत्त्वाहुतीस्तत्र ॥ धर्मात् सिद्ध्यति सर्वं श्रेयोऽतो धर्मसिद्धये किमपि । शक्त्यनुरूपं दद्यात् द्विजाय संतोषिणे गुणिने ॥ संतोष्य कर्मकारं प्रसादपूगादिदानसम्मानैः । आदौ तदश्मसारं निर्मलमेकान्ततः कुर्यात् ॥ तदनु कुठारच्छिन्नत्रिफलागिरिकर्णिकास्थिसंहारैः । करिकर्णच्छदमूलशतावरीकेशराजरसैः ॥ शालिचमूलकाशीमूलप्रावृज्जभृङ्गराजैः । लित्वा दग्धव्यं तद्दष्टित्रिफलोहकारेण ॥ चिरजलभावितनिर्म्मलशालाङ्गारेण परित आच्छाद्य । कुशलाध्मापितभस्त्रानवरतमुक्तेन पवनेन ॥ वह्नेर्बहिर्ज्वाला बोद्धव्या जातु नैव कुञ्चिकया । मृच्छवलसलिलभाजा किञ्च स्वच्छाम्बुसंप्लुतया ॥ द्रव्यान्तरसंयोगात् स्वां शक्तिं भेषजानि मुंचंति । मलधूलीमत्सर्वं सर्वत्र विवर्जयेत्तस्मात् ॥ संदंशेन गृहीत्वान्तःप्रज्वलिताग्निमध्यमुपनीय । गलति यथायथमग्रे तथैवमूर्द्ध्वं वर्द्धयेन्निपुणः ॥ तलनिहतोऽर्द्धमुखांकुशलग्नं त्रिफलाजले विनिःक्षिप्य । निर्वापयेदशेषं शेषं त्रिफलाम्बु रक्षेच्च ॥ यल्लोहं नत्रतं तत् पुनरपि पक्तव्यमुक्तमार्गेण । नत्रतं तथापि यत्तत् पक्तव्यमलोहमेव हि तत् ॥ तदनु घनलोहपात्रे कालायसमुद्गरेण संचूर्ण्य । दत्त्वा बहुशः सलिलं प्रक्षाल्याङ्गारमुद्धृत्य ॥ तदयः केवलमग्नौ शुष्कीकृत्यातपेऽथवा पश्चात् । लोहशिलायां पिंष्यादसितेऽश्मनि वा तदप्राप्तौ ॥ ३२ ॥

भाषा—कान्तादि लोहमारणविधि स्पष्टतासे कही जाती है । जिसके लिये कांतलोहपाक करे तिसके अनुकूल तिथियुक्त, अनुकूल नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें पहले

मृत्तिकादिसे लीपी नीची भूमिमें महादेवजीकी पूजा करके वैदिक विधिके अनुसार अग्निमें होम करे। क्योंकि धर्मसे सब कार्य सिद्ध होते हैं और धर्मसेही भलाई होती है। फिर शक्तिके अनुसार विद्वान् ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके कर्मकारको पूगादि (सुपारी) आदि दान देनेसे और भली भांति सन्मान करके सन्तुष्ट करे। तदुपरान्त कान्तलोहको विधिपूर्वक निर्मल करे। गिलोय, त्रिफला, कोयल, हडसंहारी, हस्तिकर्णपलाश, शतमूली, शतावरी, कुकरभांगरा, शालिंच, मूली, शैमल, छत्री, भांगरा इन सबके कल्कसे लोहेपर लेप कर अग्निपर दग्ध करे। जबतक लोहा मर न जाय तबतक वारंवार इस प्रकारसे दग्ध करके त्रिफलाके क्वाथमें डाले। भली भांतिसे मारित होनेपर कढाईमें रखके चूर्ण कर ले ॥ ३२ ॥

अथ स्थालीपाकविधिः।

अथ कृत्वायोभाण्डे दत्त्वा त्रिफलाद्यशेषमन्यद्वा। प्रथमं स्थालीपाकं कुर्यादेतत् क्षयात्तदनु ॥ गजकर्णपत्रमूलशतावरीभृङ्गकेशराजरसैः। प्राग्वत् स्थालीपाकं कुर्यात् प्रत्येकमेकं वा ३३

भाषा–पहले कढाईमें लोहा रखके त्रिफलाके क्वाथके साथ स्थालीपाक करे। जब रसक्षय हो जाय, तब हस्तिकर्णपलाशके पत्ते और जडशतमूली, भांगरा और बावची इनके रसमें अलग २ एक २ बार पहलेकी समान स्थालीपाक करे ॥३३॥

अथ पुटनविधिः।

हस्तप्रमाणवदनं श्वभ्रं हस्तैकखातसममध्यम्। कृत्वा कटाहसदृशं तत्र करीषं तुषं च काष्ठं च ॥ अन्तर्घनतरमर्द्धं शुषिरं परिपूर्य दहनमायोज्यम्। पश्चादयसश्चूर्णं श्लक्ष्णं पंकोपमं कुर्यात् ॥ त्रिफलाम्बुभृङ्गकेशरशतावरीकंदमानसहजरसैः। भल्लातककरिकर्णच्छदमूलपुनर्णवास्वरसैः ॥ क्षिप्त्वाऽथ लोहपात्रे मार्दे वा लोहमार्दपात्राभ्याम्। तुल्याभ्यां पृष्ठेनाच्छाद्यान्ते रन्ध्रमालिप्य ॥ तत्पुटपात्रं तत्र श्वभ्रज्वलने निधाय भूयोऽपि। काष्ठकरीषतुषैस्तत् संच्छाद्याहर्निशं दहेत् प्राज्ञः ॥ एवं नवभिरमीभिर्भेषजराजैः पचेत्तु पुटपाकम्। प्रत्येकमेवमेभिर्मिलितैर्वा त्रिचतुरान् वारान् ॥ प्रतिपुटमेतत् पिंष्यात् स्थालीपाकं विधाय विधिनैव। तादृशि दृषदि न पिंष्याद्विगल-

द्रजसा तु युज्यते पात्रे ॥ तदयश्चूर्णं पिष्टं घृष्टं घनसूक्ष्मवाससि श्लक्ष्णम् । यदि रजसा सदृशं स्यात् केतक्यास्तर्हि तद्भद्रम् ॥ पुटनस्थालीपाकेष्वधिकृतपुरुषैः स्वभावव्याधिगमात् । कथितमपि हेममौषधमुचितमुपादेयमन्यदपि ॥ ३४ ॥

भाषा–पहले एक ऐसा गढा करे कि उसका मुह एक हाथका चौडा लम्बा हो और गहराईभी एक हाथ हो अर्थात् गढा ठीक कढाईकी समान हो । फिर वेलगिरी, तुष और काठसे उस गढेके आधे भागको भरे । फिर लोहचूर्णको त्रिफलाके रससे पीसकर उस पीसे हुए द्रव्यसे स्थालीको भरके स्थालीपर भली भांतिसे लेप करे । फिर उसको गढेके भीतर रखके फिर उसके ऊपर वेलगिरी, तुष और काठसे दिनरात आग जलावे । फिर भांगरा, बावची, शतमूली, जिमीकन्द, मानकन्द, भिलावा, हस्तिकर्णपलाशके पत्ते और जड, सोंठ इन सबके रसमें अलग २ अथवा एक साथ चूर्णको घोटकर पहलेकी समान गढेमें पुट दे । तदुपरान्त कपडेसे छानकर देखे कि वह चूर्ण केतकीके चूर्णकी समान हो गया है । इस प्रकार होनेसे पुटनाक्रिया हो जाती है ॥ ३४ ॥

सूक्ष्मकर्म यत्र यस्यैकदिवसासाध्यत्वे क्वाथस्य किंचिदुष्णीकरणान्न पर्युषितशुष्काशेषशंका च किं च पुटबाहुल्यं गुणाधिक्याय । यथा–शतादिस्तु सहस्रान्तः पुटो देयो रसायने । दशादिस्तु शतान्तः स्याद्व्याधिवारणकर्मणि ॥ शतादिपुटपक्षे मुद्गनिभान् कृत्वा पुटयेत् । वस्त्रपूतं च न कुर्यात् ॥ ३५ ॥

भाषा–जो कर्म एक दिनमे न हो, उसकी भावनाके लिये जो क्वाथ किया जाय उसको कुछेक गरम कर ले । तिसको वासी न समझे । क्योंकि वहुत वार पुट देनेसे गुण वढताही है । अनिष्टकी शंका नहीं है । इसमे प्रमाण यथा, रसायनकर्ममें एक सौ वारसे हजार वारतक लोहेको पुट दे । रोगशान्तिकर्ममे दश वारसे लेकर एक शत वारतक पुट दे । शतादि पक्षमें मूंगकी समान करके पुट दे, तिस कालमें कपडेसे न छाने ॥ ३५ ॥

अथ पाकविधिः ।

अभ्यस्तकर्मविधिभिर्बालकुशाग्रीयबुद्धिभिर्लक्ष्यम् । लौहस्य पाकमधुना नागार्जुनशिष्टमभिदध्मः ॥ लोहारकूटताम्रकटाहे दृढमृण्मये प्रणम्य शिवम् । तदयः पचेदचपलः काष्ठेन्धनव-

ह्निना मृदुना ॥ निःक्षिप्य त्रिफलाजलमृदितं यत्तद् घृतं च दुग्धं च। संचाल्य लोहमय्या दर्व्या लग्नं समुत्पाद्य॥ मृदुमध्यमखरभावैः पाकस्त्रिविधोऽत्र वक्ष्यते पुंसाम्। पित्तसमीरणश्लेष्मप्रकृतीनां मध्यमस्य समः॥ अभ्यक्तदर्विलोहं सुखदुःखस्खलनयोगि मृदुमध्यम्। उज्झितदर्विखरं परिभाषन्ते केचिदाचार्याः॥ अन्ये विहीनदर्व्वीप्रलेपमीषत् खराकृति ब्रुवते॥ ३६॥

भाषा-अब नागार्ज्जुन ऋषिके मतसे लोहपाककी विधि कही जाती है। सूक्ष्म बुद्धिवाले चतुर लोगोंने जिस प्रकार नागार्ज्जुनकृत लोहपाकविधि कही है सोई मैं अब कहता हूं। पहले महादेवजीको प्रणाम करके लोहे, पीतल अथवा तांबेके बने कढाईमें लोहेके चूर्णको डालकर काठकी आगसे नम्रभावसे स्थिरतापूर्वक पाक करे। पाकके समय त्रिफलाक्काथ, घी और दूध डाले। जबतक पाक हो तबतक लोहेकी कर्च्छलीसे क्रमानुसार चलाता रहे। प्रकृतिके अनुसार लोहेका पाक करना चाहिये अर्थात् प्रकृतिका विचार करके मृदु, मध्य वा तीव्र पाक करे पित्तप्रकृतिवालेके लिये मृदु पाक करे। वातप्रकृतिवालेके लिये मध्य पाक करे। कफप्रकृतिवालेके लिये तीव्रपाक करना चाहिये। समप्रकृतिवालेके लिये समान पाक करना ठीक है। जब देखे कि लोहेकी कर्च्छलीमे औषधि चिपटकर सरलतासे गिर जाती है तब जाने कि मृदुपाक हो गया। जब देखे कि कर्च्छलीसे औषधि अति कठिनाईसे गिरती है तब समझे कि मध्यपाक हो गया। जब देखे कि कर्च्छलीसे एक साथ छूट जाती है तब समझे कि तीव्रपाक हो गया॥ ३६॥

मृदुमध्यमर्द्धचूर्णं सिकतापुंजोपमं तु खरम्। त्रिविधोऽपि पाक ईदृक् सर्वेषां गुणकृदेव नतु विफलः॥ प्रकृतिविशेषे सूक्ष्मौ गुणदोषौ जनयतीत्यलपम्। विज्ञाय पाकमेकं द्रागवतार्य क्षितौ क्षणान् कियतः॥ विश्राम्य तत्र लोहे त्रिफलादेः प्रक्षिपेच्चूर्णम्। यदि कर्पूरप्राप्तिर्भवति ततो विगलिते तदुष्णत्वे॥ चूर्णीकृतमनुरूपं क्षिपेन्नरा यदि न भल्लातः। पक्वं तदश्मसारं सुचिरं घृतस्थितं भाविरूक्षये॥ गोदोहनादिभाण्डे लोहाभावे सति स्थाप्यम्। यदि तु परिप्लुतिहेतौ घृतमीक्षेताधिकं ततोऽन्यस्मिन्॥ भाण्डे निधाय रक्षेद्राव्युपयोगो ह्यनेन महान्।

अयसि विरूक्षीभूते स्नेहस्त्रिफलाघृतेन संपाद्यः ॥ एकोत्तरो गुणोत्तरमित्यमुनैव स्नेहनीयं तत् । अत्यन्नकफप्रकृतेर्भक्षण-मयसोऽमुनैव शंसन्ति ॥ केवलमपीदमश्रितं जनयत्ययसो गुणान् कियतः ॥ ३७ ॥

भाषा-मृदु और मध्य पाकमें लोहा अर्द्धचूर्णावस्थ और खरपाकमें रेतेके कणोंकी समान रहता है। यह तीनों प्रकारके पाक गुणकारी हैं, कोई विफल नहीं है। यह लोहे प्रकृतिके भेदसे कुछ २ सूक्ष्म गुण दोष उत्पन्न करते हैं यह विचार कर कि पाक समाप्त हुआ है या नहीं अग्निसे उतारकर कुछ देरतक विश्राम करे। फिर उसमें त्रिफला आदिका चूर्ण डाले। यदि कपूर डालनेकी इच्छा हो तो ठंडा हो जानेपर उचित मात्रासे कपूरचूर्ण डाले। फिर जिस पात्रमें दूध दुहा जाता है उसमें उसको रक्खे। गोदोहनपात्रमें रखनेसे औषधिका रूखापन जाता रह जाता है, चिकनापन उत्पन्न होता है। फिर यदि ऐसा दिखाई दे औषधि बहुतायतसे घृतमें तैर रही है तो उस घृतको और पात्रमें स्थापन करे क्योंकि उस घृतसे महाफल मिलता है। यदि कान्तलोहसे रूखापन उत्पन्न हो तो त्रिफलाके घीसे उसके रूखेपनका नाश करे। इस प्रकार कान्तलोहके सिद्ध करनेसेभी तिसमें गुणकी अधिकाई होती है। अत्यन्त कफकी प्रकृति-वालेको यह लोहा गरम घृतके साथ सेवन करानेसे महा उपकार होता है। घृतके विना केवल लोहहीका सेवन करानेसे लोहेका गुण कुछेक फलता है ॥ ३७ ॥

अथवा वक्तव्यविधिसंस्कृतं कृष्णाभ्रचूर्णमादाय। लोहचूर्णचतु-र्थार्द्धसमद्वित्रिचतुःपंचगुणभागम् ॥ प्रक्षिप्यायः प्राग्वत् पचे-दुभाभ्यां भवेद्रजो यावत् । तन्मानानुकृतेः स्मृतितः स्यात्त्रि-फलादिद्रव्यपरिमाणम् ॥ इदमाप्यायकमिदमतिपित्तनुदिदमेव कांतिबलजननम्। स्तब्धाति तृट्क्षुधौ परमधिकाधिकमात्रया युक्तम् ॥ ३८ ॥

भाषा-या लोहचूर्णके चतुर्थभागके आधे अंशकी बराबर दुगुना, तिगुना, चौगुना वा पंचगुना विधिसे संस्कारित काले अभ्रकका चूर्ण मिलायकर तितनेही त्रिफला क्वाथके साथ दोनोंको पहलेकी समान तबतक पाक करे कि जबतक वह चूर्णित न हो जाय। इस लोहके सेवन करनेसे पित्तध्वंस होता है, कान्ति वढती है, देहमे बल होता है। क्रमानुसार अधिक मात्रा सेवन करनेपर भूख और प्यास स्तम्भित हो जाती है ॥ ३८ ॥

अथ अभ्रकविधिः ।

कृष्णाभ्रमभेकवपुर्वज्राख्यं चैकपत्रकं कृत्वा। काष्ठमयोलूखलके
चूर्णं मुसलेन कुर्वीत॥भूयोऽपि दृषदि पिष्टं वासः सूक्ष्मावका-
शतलगलितम् । मण्डूकपर्णिकाया दूर्वं स्वरसे स्थापयेत्त्रि-
दिनम्॥उद्धृत्य तद्रसादथ पिंष्याद्धैमन्तधान्यभक्तस्य। आक्षो-
दादृत्यम्लस्वच्छजले प्रयत्नेन॥मण्डूकपर्णिकायाः पूर्वं स्वरसेन
मर्द्दनं कुर्यात् । स्थालीपाके पुटनं चान्यैरपि भृंगराजाद्यैः ॥
अर्कादिपत्रमध्ये कृत्वा पिंडं निधाय भस्त्राग्नौ। तावद्दहेद्याव-
न्नीलोऽग्निर्द्दश्यते सुचिरम् ॥ निर्व्वापयेच्च दुग्धे दुग्धं प्रक्षाल्य
वारिणा तदनु । पिष्ट्वा पिष्ट्वा वस्त्रे चूर्णं निश्चन्द्रिकं कुर्यात् ॥ ३९ ॥

भाषा-अब अभ्रकविधि कही जाती है । काले अभ्रकको अथवा वज्राख्य
अभ्रकको एकपत्र अर्थात् पत्तेहीन करके काठकी बनी ओखलीमें मूसलसे चूर्ण
करे । फिर शिलापर पीसकर कपडेमें छान ले । फिर ३ दिनतक ब्रह्ममण्डूकीके
रसमें डुबा रक्खे । फिर निकालकर हैमन्तिक धान्यके अन्नसे उत्पन्न हुई कांजीके
साथ घोटकर फिर ब्रह्ममण्डूकीके रसमें पीसे । तदुपरान्त भांगरे आदिके क्काथमें
पीसकर पिण्डाकार बनाय उस पिण्डको आकके पत्तोंके भीतर रखकर धोंकनीकी
आगसे जलावे, जबतक नीले रंगकी अग्नि न निकले तबतक जलाये जाय । फिर
जलसे दूधको क्षालनपूर्वक घोटकर निश्चन्द्रिक करे ॥ ३९ ॥

अथ भक्षणविधिः ।

नानाविधरुक्शान्त्यै कान्त्यै पुष्ट्यै शिवं समभ्यर्च्य। सुविशु-
द्धेऽहनि पुण्ये तदमृतमादाय लोहाख्यम्॥दशकृष्णलपरिमाणं
शक्तिवयोभेदमाकलय्य पुनः । इदमधिकं मदधिकतरमिदमेव
मातृमोदकवत्॥सममसृणामलपात्रे लौहे लौहेन मर्दयेच्च पुनः ।
दत्त्वा मध्वनुरूपं तदनु घृतं योजयन्नधिकम् ॥ बद्धं गृह्णाति
यथा मध्वपृथक्त्वेन पंचमविषं हि तत् । इदमिह दृष्टोपक-
रणमेतददृष्टं तु मंत्रेण ॥ स्वाहान्तेन विमर्दो भवति फलं तेन
लोहवररक्षा । स नमस्कारेण बलिर्भक्षणमयसो हूमन्तमंत्रेण ॥

ॐ अमृतोद्भवोद्भवाय स्वाहा, ॐ अमृते हूँ फट् । ॐ नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षसेनापतये हूँ । सुरासुरविद्यामहाबलाय स्वाहा । ॐ अमृते हूँ ॥ जग्ध्वा तदमृतसारं नीरं वा क्षीरमेवानु पिबेत् । कान्तकामकममलं सर्ज्जरसं पिबेत्तदनु ॥ आचम्य च ताम्बूलं लाघे घनसारसहितमुपयोज्यम् । नात्युपविष्टो नाप्यतिभाषी नातिस्थितस्तिष्ठेत् ॥ अत्यन्तवातशीतातपपानस्नानवेगरोधांश्च । जह्यादिवा च निद्रामहितं चाकालभुक्तिं च॥ वातकृतः पित्तकृतः सर्वान् कट्वम्लतिक्तकषायान् । तत्क्षणविनाशहेतून् मैथुनकोपसमान् दूरे ॥ अशितं तदयः पश्चात् पचतु न पाटवं तूरुप्रथताम् । अर्तिर्भवतु नवान्त्रे कूजति भोक्तव्यमव्याजम् ॥ ४० ॥

भाषा–अब पूर्वोक्त लोहभक्षणविधि कही जाती है । अनेक रोगोंकी शान्तिके लिये, कान्ति व पुष्टि प्राप्तिके लिये महादेवजीको नमस्कार करके शुभ दिनमें यह अमृतसार लोह सेवन करनेको दे। रोगीकी आयु और बलका विचार करके औषधि दे । दश रत्तीतक इसकी मात्रा कही है । परन्तु मातृकामोदककी समान जिस रोगीके लिये जिस प्रकारकी मात्रा दी जाय, वैद्य तिसका विचार करके उतनीही सेवन करनेको दे । मधु व घृतके साथ सेवन कराना चाहिये । जो औषधि मर्दन करनेसे सहदके साथ भली भान्ति मिल जाती है, वही श्रेष्ठ और विषशून्य औषधि है । औषधि मर्दन करनेके समय " ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा " इस मंत्रको पढकर मिलावे । तदुपरान्त " ॐ अमृते हूं फट् " यह मंत्र पढ प्रणाम करके बलिदान करनेके अन्तमें " ॐ नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षसेनापतये सुरासुरविद्यामहाबलाय ॐ अमृते ॐ " इस मंत्रको पढकर सेवन करे । लोह सेवन करनेके पीछे जल या दूधका अनुपान करके तदुपरान्त सर्जरसका सेवन करे । फिर पान देकर चन्दन लगावे । इस लोहका सेवन करके बहुत देरतक एक स्थानमें न बैठा रहे, बहुत बातें न करे, अधिक शीत वायु अथवा शीत शरीरको न लगावे, अधिक पान न करे, स्नान और वेगधारण न करे । इस लोहको सेवन करनेके पीछे दिनमे न सोवे, असमयमें आहार न करे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे वायुपित्तजनक द्रव्य, कटुद्रव्य, अम्लद्रव्य, तिक्तद्रव्य, नारीसंग, क्रोधप्रकाश, परिश्रम इन सबको छोड देना

ाहिये । औषधि सेवन करनेके कुछ देर पीछेही जो आहारादि किया जाय तोभी
ोई कष्ट नहीं होगा, और आंतोंके गुडगुडानेकीभी कोई शंका नहीं रहती है॥४०॥

प्रथमं पीत्वा दुग्धं शाल्यन्नं विशदमक्लिन्नम् । घृतसंयुक्तमश्नीयान्मांसैर्वैहंगमैः प्रायः ॥ उत्तमभूधरभूचरविष्किरमांसं तथाजमेषादि । अन्यदपि जलचराणां पृथुरोमापेक्षया ज्यायः॥ मांसालाभे मत्स्या अदोषलाः स्थूलसद्गुणा ग्राह्याः । मद्गुररोहितशकुला दग्धाः पललान्मनागूनाः ॥ शृंगाटककशेरुकदलीफलतालनारिकेलादि । अन्यदपि यच्च वृष्यं मधुरं पनसादिकं ज्यायः॥ केवुकतालकरीरान् वार्ताकुपटोलफलदलसमेतान् । मुद्गमसूरेक्षुरसान् शंसन्ति निरामिषेष्वेतान् ॥ शाकं प्रहेयमखिलं स्तोकं रुचये तु वास्तूकमादद्यात् । विहितनिषिद्धादन्यन्मध्यमकोटिस्थितं विद्यात् ॥ अनुपानमुष्णपयसः सारयति बद्धकोष्ठस्य । अनुपीतमम्बु यद्वा कोमलशस्यस्य नारिकेलस्य ॥ यस्य न तथापि सरति सवयक्षारं जलं पिबेत् कोष्णम् । त्रिफलाक्काथसनाथं सयवक्षारं ततोऽप्यधिकम् ॥ कोष्णत्रिफलाक्काथं क्षीरसनाथं ततोऽप्यधिकम् । त्रीणि दिनानि समं स्यादह्नि चतुर्थे तु वर्द्धयेत् क्रमशः ॥ यावत्तदष्टमाषं न वर्द्धयेत् पुनरितोऽप्यधिकम् ॥ ४१ ॥

भाषा–ऊपर कही हुई औषधिका सेवन करके जैसा पथ्य करे सो कहते हैं । सबसे पहले दूध सेवन करके फिर भली भांतिसे पके हुए शट्टीके चावल अन्न, घृत और पक्षिमांसके साथ मिलाकर आहार करे। गिरिचारी और भूचारी विष्किरपक्षीका मांस, छागमांस, मृगमांस और जलचरपक्षियोंका मांस हितकारी है । यदि मांस न मिले तो मद्गुरमत्स्य, रोहितमत्स्य, शकुलमत्स्य औरभी दोषहीन स्थूल व श्रेष्ठगुणवाले दग्धमत्स्य सेवन करे । इसके सिवाय सिंगाडा, कशेरू, केला, ताल, नारियल, वृष्य और मधुरद्रव्य, केउयाकंद, तालाङ्कुर, बैंगन, परवल, मूंग, मसूर, गन्नेका रस ये सब पथ्य हैं । वथुएका शाक थोडासा खाया जा सकता है परन्तु और सब शाक त्याज्य हैं । जो कोठा साफ न हो तो गरम जल पिये अथवा

मृदुशस्ययुक्त नारियल खाय । जो इससेभी कोठा साफ न हो तो जवाखारके पानीको कुछेक गरम करके पिये, या त्रिफलाकाथके साथ जवाखार सेवन करनेसे अत्यन्त उपकार होता है । पहले तीन दिनतक बराबर औषधि सेवन करके बादको कुछ२ बढाकर आठ मासेतक बढावे । इसकी बनिस्बत और अधिक न बढावे ॥ ४१ ॥

आदौ रक्तिद्वितयं द्वितीयवृद्धौ तु रक्तिकात्रितयम् । रक्तिपंचकपंचकमतोर्ध्वं वर्द्धयेन्नियतम् ॥ वातशरीरकल्पपक्षे दिनानि यावन्ति वर्द्धितं प्रथमम् । तावन्ति वर्षशेषे प्रतिलोमं ह्रासयेत्तद्यः ॥ तेष्वष्टमाषकेषु प्रातर्मासत्रयं समश्नीयात् । सायं च तावदह्नो मध्ये मासद्वयं शेषम् ॥ एवं तदमृतमश्नन् कान्तिं लभते चिरस्थितं देहम् । सप्ताहत्रयमात्रात् सर्वरुजो हन्ति किं बहुना ॥ ४२ ॥

भाषा–जिस प्रकारसे इस औषधिकी मात्रा बढाई जाती है सो कहते हैं । सबसे पहले २ रत्ती, तदुपरान्त ३ रत्ती, पीछे ५ रत्ती करके बढाई जा सकती है । जिनकी देह वायुप्रकृति है, वह औषधिके सेवनमें जितने दिन चाहे बढा सकता है, वर्ष दिन पूरा होनेपर प्रतिलोमसे उतने दिन पीछे उसही मात्रासे लोहको घटावे । इस नियमसे अमृतलोह सेवन करनेपर कांति बढती है, पुष्टि साधन होती है, शरीर स्थित रहता है, केवल ३ सप्ताहही इसका सेवन करनेसे सब रोग दूर होते हैं ॥ ४२ ॥

अथ ताम्रप्रयोगः ।

कन्यातोये ताम्रपत्रं सुतप्तं कृत्वा वारान् विंशतिं प्रक्षिपेत्तत् । रसतस्ताम्रं द्विगुणं ताम्रात् कृष्णाभ्रकं द्विगुणम् ॥ एतत् सिद्धं त्रितयं चूर्णितताम्रार्द्धिकैः पृथग् युक्तम् । पिप्पलिविडङ्गमरिचैः श्लक्ष्णं द्वैमाषिकं योज्यम् ॥ शूलाम्लपित्तशोथग्रहणीयक्ष्मादिकुक्षिरोगेषु । रसायनं महदेतत् परिहारो नियमितो नात्र ॥ ४३ ॥

भाषा–अब ताम्रप्रयोग कहा जाता है । घीकारके रसके साथ ताम्रपत्रको २० बार तपाकर वह तांबा २ भाग, पारा एक भाग, चार भाग अभ्रक, एक २ भाग पिप्पलीचूर्ण, विडंगचूर्ण और मरिचचूर्ण ग्रहण करके मिलावे । २ मासे प्रयोग करे । शूल, अम्लपित्त, शोथ, ग्रहणी, यक्ष्मा, कुक्षिरोग इन सबमें इसका प्रयोग करना चाहिये यह महान् रसायनरूप है ॥ ४३ ॥

अथ लक्ष्मीविलासरसः ।

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं रसगन्धके । कर्पूरस्य तदर्द्धं तु जातीकोशफले तथा ॥ वृद्धदारुकबीजं तु बीजमुन्मत्तकस्य च । त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीकन्दमेव च ॥ नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा । बीजं गोक्षुरकस्यापि हैज्जलं बीजमेव च ॥ एतेषां कार्षिकं चूर्णं गृहीत्वा वारिणा ततः। निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुंजाफलमानतः ॥ ४४ ॥

भाषा-अब लक्ष्मीविलासरस कहा जाता है । १ पल अभ्रक, आधा पल (४ तोले) गन्धक, आधा पल पारा, तिससे आधा अर्थात् २ तोले कपूर, २ तोले जावित्री, दो तोले विधायरेके बीजोका चूर्ण, धतूरेका चूर्ण, भांगके बीजका चूर्ण, भूमिकुष्माण्ड-चूर्ण, शतमूलीचूर्ण, गोखरूके बीजोका चूर्ण, समुद्रफलका चूर्ण इन सबको मिलाकर जलमें पीसे । तीन चोटलीभरकी गोलियां बनावे इसका नाम लक्ष्मीविलासरस है ४४

निहन्ति सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् । वातोत्थान् पैत्तिकांश्चापि नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा । नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयभगन्दरम् ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलसम्भवम् । गलशोथमंत्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम् ॥ कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यं दौर्बल्यमेव च । आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजात्यमेव च । सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीणां गदनिषूदनम् ॥ वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् । अनुपानमिह प्रोक्तं माषं पिष्टं पयो दधि ॥ वारितक्रसुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक् । वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी नच शुक्रस्य संक्षयः ॥ नच लिंगस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्कताम् । नित्यं शतस्त्रियो गच्छन्मत्तवारणविक्रमः ॥ द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः । प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ रसो लक्ष्मीविलासस्तु वासुदेवजगत्पतिः । अभ्यासाद्यस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥ ४५ ॥

भाषा–इस औषधिसे सन्निपात करके घोर रोगसमूह जो उठते हैं और वात पित्तके रोग इन सबका नाश होता है । इससे १८ प्रकारके कोढ, २० प्रकारके प्रमेह, नाड़ीव्रण, कठिनव्रणरोग, गुह्यरोग, भगन्दर, श्लीपद, बहुत दिनका कफ, वातसे उठा हुआ रोग, गलशोथ, आंतका बढना, दारुण अतिसार, खांसी, पीनस, यक्ष्मा, बवासीर, वादीसे फूलना, दुबलापन, सर्व प्रकारकी आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कान नाक नेत्र तथा जीभके रोग, सर्व प्रकारका शूल, शिरदर्द व नारीरोगादिका नाश हो जाता है। प्रतिदिन प्रभातको इसकी एक गोलीका सेवन करे । इसका सेवन करके उरद, पिट्ठी, दूध, दही, मट्ठा और सुराका अनुपान करे तो कामदेवकी समान रूपवान् हो सकता है । इसका सेवन करनेसे बूढ़ाभी जवानकी समान होता है और शुक्रका क्षय नहीं होता। इसके प्रभावसे शिश्नकी शिथिलताका नाश होता है, अकालमें केश नहीं पकते । इस औषधिका सेवन करनेवाला मत्तहाथीकी समान विक्रमवान् होकर प्रतिदिन १०० स्त्रियोंसे रमण कर सकता है । यह परम पुष्टिकर है । इसका सेवन करनेसे दृष्टि दो लक्ष योजनतक पहुँच सकती है। महात्मा नारदजी ऋषिने इस प्रयोगको कहा है । भगवान् जगन्नाथ वासुदेव इस लक्ष्मीविलासरसका सेवन करनेसे इसके प्रसादकरकेही लक्ष नारियोंके प्यारे हुए हैं ॥ ४५ ॥

अथ शिलाजतुप्रयोगः ।

हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः । जत्वाभं मृदु मृत्स्नाभं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥ अनम्लमकषायं च कटुपाके शिलाजतु । नात्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥ हेम्नोऽथ रजतात्ताम्रात् चिरं कृष्णायसादपि। मधुरं च सतिक्तं च जपापुष्पनिभं च यत् ॥ विपाके कटु शीतं च तत् सुवर्णस्य निःस्रुतम् । रजतं कटुकं श्वेतं शीतं स्वादु विपच्यते ॥ ताम्राद्बर्हिणकण्ठाभं तीक्ष्णोष्णं पच्यते कटु । यत्तु गुग्गुलुसंकाशं तिक्तकं लवणान्वितम् ॥ विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् । गोमूत्रगन्धि सर्वेषां सर्वकर्मसु यौगिकम् ॥ रसायनप्रयोगेषु पश्चिमं तु प्रशस्यते । यथाक्रमं वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफे त्रिषु ॥ विशेषेण प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः । लोहकिट्टायते वह्नौ विधूमं दह्यतेऽम्भसि ॥ तृणाद्यग्रे कृतं

श्रेष्ठमधो गलति तन्तुवत्। मलिनं यद्भवेत्तच्च क्षालयेत् केव-
लाम्भसा॥ लोहपात्रे च विधिना ऊर्ध्वभूतं तदाहरेत्। वात-
पित्तकफघ्नैश्च निर्यूहैस्तत् सुभावितम्॥ वीर्योत्कर्षं परं याति
सर्वैरेकैकशोऽपि वा। प्रक्षिप्योद्धृतमाध्मानं पुनस्तत् प्रक्षिपे-
द्रसे॥ कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना॥ तुल्यं
गिरिजेन जले चतुर्गुणे भावनौषधं क्वाथ्यम्। तत्क्वाथे पादांशे
चोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम्॥ तत्समरसतां जातं संशुष्कं प्रक्षिपे-
द्रसे भूयः॥ पूर्वोक्तेन विधानेन लोहैश्चूर्णीकृतैः सह। तत्पीतं
पयसा दद्याद्दीर्घमायुः सुखावहम्॥ जराव्याधिप्रशमनं देहदा-
र्ढ्यकरं परम्। मेधास्मृतिकरं बल्यं क्षीराशी तत् प्रयोजयेत्॥
प्रयोगः सप्तसप्ताहस्त्रयश्चैकश्च सप्तकः। निर्दिष्टस्त्रिविधस्तस्य
परो मध्येऽवरस्तथा॥ मात्रा पलं त्वर्द्धपलं स्यात् कर्षस्तु
कनीयसी। शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुरूणि च॥ वर्ज-
येत् सर्वकालं तु कुलत्थान् परिवर्जयेत्॥ पयांसि युक्तानि
रसाः सयूषास्तोयं समुद्रं विविधाः कषायाः। आलोडनार्थं
गिरिजस्य शस्तास्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य सर्वान्॥ ४६॥

भाषा—अब शिलाजीतका प्रयोग कहा जाता है। शिलाजीतकी शुद्धता और श्रेष्ठताकी परीक्षा करनी हो तो पहले उसको अग्निमें डाले। जो इसमें धूंआं न उठे और जलकर कीट (मंडूर) की समान हो जाय और जिस शिलाजीतको तिनकेकी नोकसे पानीमें डाल देनेपर वह तारकी समान होकर गल जाती है, उसकोही सर्वश्रेष्ठ और शुद्ध जानना। कैसीही लोहेकी कढाईमे मैलयुक्त शिला-जीत रखके पानीसे धोवे, तब उसका सारा अंश उस पानीपर उतर आवेगा, वह अंशही लेना चाहिये। फिर जिन वस्तुओंसे वायु, पित्त और कफका नाश होता है, उन सबके क्वाथमे इस सारभागको भावना दे। परन्तु प्रत्येक द्रव्यसे अलग २ अथवा सब वस्तुओंसे एकसाथ भली भांति भावना दे। ऐसा करनेसे उस शिलाजी-तमें वीर्य बढता है। शिलाजीत सेवन करनेके लिये प्रयोग करनी हो तो पहले उसको गरम रसमें डाल दे, तब उसका सारभाग ऊपर आ जायगा। उस सार-भागको लेकर दूसरे पात्रमें रक्खे हुए गरम क्वाथमे उसकोफिर डाल दे। सात दिन

इस प्रकार भावना देनेपर उसका स्वाद काथकी समान हो जायगा । तब उसको धूपमें सुखा ले इस प्रकार शिलाजीत शुद्ध होती है । यदि लोहचूर्ण और दूधके साथ इस प्रकारकी शिलाजीतका सेवन किया जाय तो उसका सेवन करनेवाला दीर्घायु प्राप्त करेगा । इसके प्रभावसे जरा दूर होती है, देहमें दृढता होती है, मेधाशक्ति, स्मृतिशक्ति और बल बढता है । सात दिन, इक्कीस दिन अथवा उनचास दिनतक इसका सेवन करना चाहिये । इसकी मात्रा तीन प्रकारकी है, एक पल, आधा पल और छोटी मात्रा एक कर्ष अर्थात् २ तोले है । शिलाजीतका सेवन करे तो जलन करनेवाले द्रव्य, गुरुपाकवस्तु और मटरका सर्व प्रकारसे त्याग करे । दूध, सयूषरस, विविध प्रकारके कषैले द्रव्य, घोलादि और जो द्रव्य उचित हैं उनको विचार करके पथ्य देना चाहिये ॥ ४६ ॥

श्रीकामेश्वरमोदकः ।

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धामृता मेथीमोचरसौ विदारिमुशली गोक्षूरकं चेरकम् । रम्भाकन्दशतावरी त्वजमोदा माषास्तिला धान्यकं यष्ठी नागबला बला मधुरिका जातीफलं सैंधवम् ॥ भार्ङ्गी कर्कटशृङ्गकं त्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं चातुर्जातपुनर्नवा गजकणा द्राक्षा शठी वासकम् । बीजं मर्कटिशाल्मलीभवमिदं चूर्णं समं कल्पयेच्चूर्णार्द्धा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्ययोः पिंडितम् ॥ कर्षार्द्धं गुडिकाथ कर्षमथवा सेव्या सता सर्वदा पेयं क्षीरयुतं सुवीर्यकरणे स्तम्भेऽप्ययं कामिनाम् । वामावश्यकरः सुखातिसुखदः प्रौढाङ्गनाद्रावकः क्षीणे पुष्टिकरः क्षयक्षयकरो हन्त्याशु सर्वामयम् ॥ कासश्वासमहातिसारशमनो मन्दाग्निसंदीपनः दुर्नामग्रहणीप्रमेहनिवहश्लेष्मास्रपित्तप्रणुत् । नित्यानन्दकरो विशेषकविताचां विलासोद्भवं धत्ते सर्वगुणं महास्थिरमतिर्बालो नितान्तोत्सवः ॥ अभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात् सर्वेषां हितकारिणा निगदितः श्रीवैद्यनाथेन सः । वृद्धानां मदनोदयोदयकरः

प्रौढाङ्गनासेवने सिद्धोऽयं मम दृष्टिप्रतापकरो भूपैः सदा सेव्यताम्॥ अत्र अभ्रककलाभागः। सर्वौषधिसमा विजया विजयासहितचूर्णानां द्विगुणा सिता। एकं तु चूर्णस्वरसादुपदेशाच्च। वस्तुतस्तु पुरुषस्योचितायां विजयामात्रायामुचिताभ्रमात्राप्रवेश इति रसं अन्यथात्र गुणहानिः। एवं मूलिकायोगान्तरेऽपि रसाभ्रकविधिः। चूर्णौषधानि यथालाभं दधात्। अत्राभ्रार्द्धं मूर्च्छितरसं ददति दाक्षिणात्याः। सर्वचूर्णपादांशं घृतं घृतपादांशं मधु इति त्रिविक्रमः। सर्वचूर्णत्रिगुणा सितेति भट्टः॥४७

भाषा—इस समय कामेश्वरमोदक कहा जाता है। भली भांतिसे मारित अभ्रक, कट्फल, कूडा, असगन्ध, गिलोय, मेथी, मोचरस, विदारी (पेठा), तालमूली, गोखरू, तालमखानेके बीज, केलेकी जड, शतावरी, अजवायन, उदर, तिल, धनिया, बिसोंटा, गंगेरन, सुगन्धवाला, सौंफ, जायफल, सेंधा, भारंगी (जड), कांकडाशींगी, त्रिकटु, दोनों जीरे, चीता, चतुर्जात (तेजपात, नागकेशर, इलायची, गुडत्वक्), सोंठ, गजपीपल, कचूर, बिसोंटेकी छाल, कौंचके बीज इन सब द्रव्योंका चूर्ण बराबर २ लेकर और आधा भांगके बीजोंका चूर्ण, सब चूर्णसे दूनी बूरा इन सबको मिलाकर सहद और घीसे घोटकर पिण्डाकार करे। तदुपरान्त एक कर्ष वा आधे कर्षके मोदक बनाय सेवन करने चाहिये। अनुपानमें दुग्ध ग्रहण करना चाहिये। इसके सेवन करनेसे कामीमें वीर्य बढता है, वीर्यस्तम्भन होता है। यह स्त्रियोंका वशीकरण, अत्यन्त सुखदाई और प्रौढास्त्रियोंका द्रावक है। इस मोदकसे पुष्टि बढती है और इससे शीघ्र क्षयरोग, खांसी, दमा, महाअतिसारादि रोग दूर होते हैं। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है। दुर्णामारोग, ग्रहणी, सर्व प्रकारके प्रमेह, कफ व रक्तपित्तका इससे नाश होता है। इस मोदकके प्रसादसे नित्यानन्द उत्पन्न होता है, कवित्वशक्ति उत्पन्न होती है और यह विलासजनित सर्वगुणोंका आधार है। महास्थिरबुद्धि बालकभी इसका सेवन करके आनन्दसे उन्मत्त हो जाता है। इस कामेश्वरमोदकका सेवन करनेसे एक वर्षमें मृत्यु और पलितका नाश हो जाता है। श्रीवैद्यनाथ महादेवजीने सर्व प्राणियोंके हितकारी होकर यह औषधि कही है। इस मोदकका सेवन करनेसे वृद्ध पुरुषभी प्रौढा स्त्रीका सहवास कर सकता है। इस सिद्ध मोदकके गुणको मैंनेभी परीक्षा किया है। यह राजालोगोंके सेवन करने योग्य है। इस मोदकको बनानेके समय २ वैद्य लोग कोई २ सब औषधियोंकी समान भंग और भंगके साथ सर्व चूर्णसे दूनी बूरा लेते हैं। वास्तवमें उचित मा-

त्रासे भंग और अभ्रकके न ग्रहण करनेमें गुणहानि होती है । कोई चूर्णौषधि जितनी प्राप्त होती है उतनी डालते हैं । दक्षिणके रहनेवाले अभ्रकसे आधा मूर्च्छित रस डालते हैं । त्रिविक्रमके मतसे सब चूर्णका पादांश (चौथाई) घृत और घृतका पादांश मधु ग्रहण करना चाहिये । भट्टका मत यह है कि सब चूर्णसे तिगुनी बूरा ग्रहण करना चाहिये ॥ ४७ ॥

चूर्णरत्नम् ।

वृष्यगणचूर्णतुल्यं पुटपक्वं घनं सिता द्विगुणा । वृष्यात्परमतिवृष्यं रसायनं चूर्णरत्नमिदम् ॥ शतावरीविदारीगोक्षुरक्षुरकबलातिबलाः ॥ इति वृष्यगणः । अत्र गंधमूर्च्छितरसमभ्रात् पादिकं ददति दाक्षिणात्याः । अनुपेयं दुग्धादि ॥ ४८ ॥

भाषा—कही हुई वृष्य औषधियोंके चूर्णकी बराबर पुटमें पका अभ्रक और सबसे दूनी बूरा मिला लेनेपर चूर्णरत्न बनता है । यह परम वृष्य और रसायन है । शतावरी, पेठा, गोखरू, तालमखाना, खरेटी और गंगेरन इनका नाम वृष्य औषधि है । दाक्षिणके वैद्यलोग अभ्रकसे चौथाई गन्धक मूर्च्छित रस डालते हैं । इसका अनुपान दुग्धादि है ॥ ४८ ॥

शृङ्गाराभ्रम् ।

शुद्धं कृष्णाभ्रचूर्णं द्विपलपरिमितं शाणमानं यदन्यत् कर्पूरं जातिकोशं सजलसितकणा तेजपत्रं लवङ्गम् । मांसी तालीशमोचं गदकुसुमगदं धातकी चेति तुल्यं पथ्या धात्री बिभीतं त्रिकटुरथ पृथक् त्वर्द्धमानं द्विशाणम् ॥ एला जातीफलाख्यं क्षितितलविधिना शुद्धगंधस्य कोलं कोलार्द्धं पारदस्य प्रतिपदविहितं पृष्टमेकत्र मिश्रम् । पानीयेनैव कार्य्याः परिणतचणकस्विन्नतुल्याश्च वट्यः प्रातः खाद्याश्चतस्रस्तदनु च कियच्छृङ्गवेरं सपर्णम् ॥ पानीयं पीतमन्ते ध्रुवमपहरति क्षिप्रमादौ विकारान् कोष्ठे दुष्टाग्निजातान् ज्वरमुदररुजौ राजयक्ष्मक्षयं च । कासं श्वासं सशोथं नयनपरिभवं मेहमेदोविकारान् छर्दिं शूलाम्लपित्तं गरगरलगदान् पीनसं प्लीहरोगान् ॥ हन्यादामाशयोत्थान् कफपवनकृतान् पित्तरोगानशेषान्

बल्यो वृष्यश्च भोज्यस्तरुणतरकरः सर्वरोगेषु शस्तः । पथ्यं मांसैश्च यूषैर्घृतपरिलुलितैर्गव्यदुग्धैश्च भूयो भोज्यं मिष्टं यथेष्टं ललितललनया दीयमानं मुदा यत् ॥ शृङ्गाराभ्रेण कामी युवतिजनशताभोगयोगादतुष्टो वर्ज्यं शाकाम्लमादौ दिनकतिचिदथ स्वेच्छया भोजमन्यत् । क्रीडामोदप्रमुग्धः सपदि शुभवया योगराजं निषेव्य गच्छेद्भूयोऽथ भूयः किमपरमधिकं भेषजं नास्त्यतोऽन्यत् ॥ रोगानीकगजेन्द्रसिंहहरणे सिंहव्रजानां समम् ॥ ४९ ॥

भाषा-दो पल शुद्ध कृष्णाभ्रकचूर्ण, आधा तोला कपूर, जायफल, सुगन्धवाला, गजपीपल, तेजपात, लौंग, वालछड, तालीसपत्र, दालचीनी, नागकेशर, कूडा, धायफल, हरीतकी, आमला, बहेडा और त्रिकटु इन सबको चार २ आनाभर ले इलायची और जायफल एक २ तोला ले। शुद्ध गन्धक एक तोला और आधा तोला पारा इन सबको एक करके जलके साथ पीसकर गीले चनेकी समान गोली बनावे। इसको शृङ्गाराभ्र कहते हैं । इसकी ४ गोलियां सवेरेको खाई जाती हैं। आर्द्रक और पानके साथ सेवन करनेकी विधि है। इसको सेवन करके थोडासा जल पिये। इसके सेवन करनेसे शीघ्र दुष्टकोष्ठाग्निसे उत्पन्न हुआ विकार, ज्वर, उदररोग, राजयक्ष्मा, क्षय, खांसी, दमा, शोथ, नेत्ररोग, मेह, मेदका विकार, वमन, अम्लपित्त, विषमगरलरोग, पीनस, प्लीहा और आमाशयसे उठे कफ, वायु पित्तादिकृत अनंत रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं। यह महौषधि बलकारी, वृष्य, तरुणाई देनेवाली और सब रोगोमें श्रेष्ठ है । इसको सेवन करके घीमे पके हुए मांसका यूष, गायका दूध और युवती ललनाका दिया हुआ मीठा द्रव्य इच्छानुसार पथ्य करे। इस शृङ्गाराभ्रको सेवन करके कामी पुरुष शतनारीभोग करकेभी तृप्ति प्राप्त नहीं करता। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे कई दिनतक शाक और अम्लका व्यवहार न करे। तदुपरान्त इच्छानुसार भोजन किया जा सकता है। जवान मनुष्य इस औषधिका सेवन करनेपर शीघ्र क्रीडामोदमें मोहित हो जाते हैं। इसकी समान दूसरी कोई महौषधि नहीं है। यह महौषध रोगरूप गजेन्द्रका नाश करनेके लिये सिंहस्वरूप है ॥ ४९ ॥

जयावटी।

विषं त्रिकटुकं मुस्ता हरिद्रा निम्बपल्लवम् ।

विडङ्गमष्टकं चूर्णं छागमूत्रैः समं समम् ॥
चणकाभा वटी कार्या योगवाही जयाभिधा ॥ ९० ॥

भाषा-विष, त्रिकटु, मोथा, हलदी, नीमके पत्ते और वायविडङ्ग इन आठ चीजोंको बराबर ले चूर्ण करके बकरीके मूत्रकेसाथ घोटकर चनेकी समान गोलियां बनावे । इसका नाम जयावटी है ॥ ९० ॥

सिद्धयोगेश्वरः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्वे घृष्ट्वा तु कज्जलीम् । तयो रसं कान्तलौहमभावे तस्य तीक्ष्णकम् ॥ वेडितं देवदेवेशि मर्दितं कन्यकाद्रवैः । यामद्वयं ततः पश्चात् तद्गोलं ताम्रसम्पुटे ॥ आच्छाद्यैरण्डपत्रैस्तु धान्यराशौ निधापयेत् । त्रिदिनान्ते समुद्धृत्य पिष्टं वारितरं भवेत् ॥ कुमारी भृङ्गकोरण्टौ काकमाची पुनर्नवा। नीली मुण्डी च निर्गुण्डी सहदेवी शतावरी ॥ अम्लपर्णी गोक्षुरकं कच्छुमूलं वटांकुरम् । एतेषां भावयेद्द्रावैः सप्तवारान् पृथक् पृथक् ॥ त्र्यूपणत्रिफलासोमराजीनां च कषायकैः । शुद्धेऽस्मिन् तोलितं चूर्णं सममेकादशाभिधम् ॥ वराव्योषाग्निविश्वैलाजातीफललवंगकम् । संयोज्य मधुनालोड्य विमर्द्यैदं भजेत्सदा ॥ रात्रौ पिवेद्गवां क्षीरं कृष्णानां च विशेषतः । संवत्सराज्जरामृत्युरोगजालं निवारयेत् ॥ वीर्यवृद्धिकरं श्रेष्ठं रामाशतसुखप्रदम् । तावन्न च्यवते वीर्यं यावदम्लं न सेवते ॥ दीपनं कान्तिदं पुष्टितुष्टिकृत्सेविनां सदा । सुगुप्तः कथितः सूतः सिद्धयोगेश्वराभिधः ॥ ९१ ॥

भाषा-महादेवजीने पार्वतीजीसे कहा था कि हे देवदेवेशि ! थोडासा शुद्ध पारा और दूना गन्धक एक साथ खरलमें घोटकर कज्जली बनावे । फिर इन दोनोंकी बराबर कान्तलोह या कान्तलोह न हो तो तीक्ष्णलोह मिलाकर घृतकुमारीके रसमे २ प्रहरतक घोटकर गोला बनावे । फिर उस गोलेको ताम्रके पात्रमें स्थापन करके अण्डके पत्तोंमे लपेट धान्यराशिमें रख दे । इस प्रकार तीन दिन बीत जानेपर उसे निकालकर घीक्वार, भांगरा, कटसरैया, मकोय, सांठ, नीलपत्र, गोरखमुण्डी,

संभालू, सहदेयी, शतावरी, अम्लपर्णी, गोखरू, गेंठी, वटाङ्कुर, त्रिकटु, त्रिफला और सोमराजी (बावची) इन सबके रसमें अलग २ सातवार भावना दे। सूख जानेपर इसके साथ बराबर त्रिफला, त्रिकटु, चीता, बेल, सोंठ, इलायची, जायफल और लौंग इन ग्यारह वस्तुओंका चूर्ण मिलाकर सहतके साथ चलाय रात्रिकालमें सेवन करे। इसको सेवन करके काली गायका दूध पिये, यह न हो तो साधारण गायके दूधका अनुपान करे। इसके सेवन करनेसे वर्षभरमें जरा, मृत्यु और सब रोगोंका नाश हो जाता है। इसके सेवन करनेमे वीर्य वढता है और शत रमणियोंको रमणद्वारा आनन्द दिया जा सकता है। इस औषधिको सेवन करके जबतक खट्टी चीज न खाई जाय तबतक रेत (वीर्य) नहीं स्खलित होता। यह दीपन, कांतिदाई, पुष्टिकारी और तुष्टिजनक है। इसका नाम सिद्धयोगेश्वर है, इसको परमगोपनीय कहा है ॥ ५१ ॥

चतुर्म्मुखः।

रसगन्धकलौहाभ्रं समं सूतांघ्रि हेम च। सर्वं खल्वतले क्षिप्त्वा कन्यारसविमर्दितम् ॥ एरण्डपत्रैरावेष्ट्य धान्यराशौ दिनत्रयम्। संस्थाप्य च तदोद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ एतद्रसायनवरं त्रिफलामधुसंयुतम्। क्षयमेकादशविधं कासं पंचविधं तथा ॥ कुष्ठमष्टादशविधं पाण्डुरोगान् प्रमेहकान्। शूलं श्वासं च हिक्कां च मंदाग्निं चाम्लपित्तकम् ॥ व्रणान् सर्वानामवातं विसर्पं विद्रधिं तथा। अपस्मारं महोन्मादं सर्वार्शांसि त्वगामयान् ॥ क्रमेण शीलितं हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। पौष्टिकं बल्यमायुष्यं पुत्रप्रसवकारणम् ॥ चतुर्म्मुखेन देवेन कृष्णात्रेयस्य सूचितम् ॥ ५२ ॥

भाषा-बराबर पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक और पारेसे चौथाई स्वर्ण इन सबको एकत्र करके घीकारके रससे तप्त खरलमे घोटकर अंडके पत्तोंमें लपेटकर तीन दिनतक धान्यराशिमें रक्खे। तदुपरान्त निकालकर सर्व रोगोंमे प्रयोग करे। त्रिफला और सहतके साथ इस रसायनश्रेष्ठ औषधिका सेवन करे। वज्र जिस प्रकार वृक्षको गिरा देता है, वैसेही यह औषधि ग्यारह प्रकारके क्षयरोग, पांच प्रकारकी खांसी, अठारह प्रकारके कोढ, पाण्डु, प्रमेह, शूल, दमा, हिचकी, मन्दाग्नि, अम्लपित्त, सब प्रकारके व्रणरोग, आमवात, विसर्प, विद्रधि, अपस्मार, महोन्माद,

ववासीर और चर्मके रोगोंका नाश करती है । यह महौषधि पुष्टिकारी, बलदाई, आयुष्य और पुत्रजनक है । चतुर्म्मुख देवताने कृष्णात्रेयसे इसको कहा है ॥५२॥

गन्धलोहः ।

गन्धं लौहं भस्म मध्वाज्ययुक्तं सेव्यं वर्षं वारिणा त्रैफलेन ।
शुक्ले केशे कालिमा दिव्यदृष्टिः पुष्टिर्वीर्यं जायते दीर्घमायुः॥५३॥

इति रसेन्द्रचिंतामणौ रसायनाधिकारो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

भाषा–बराबर गन्धक और लोहेकी भस्म लेकर सहद, घी और त्रिफलाके पानीके साथ मिलाय एक वर्षतक सेवन करनेसे श्वेत केश नीले होते हैं, दिव्य दृष्टिशक्ति उत्पन्न होती है, पुष्टि और वीर्य बढता है, दीर्घायु प्राप्त होती है, इसका नाम गन्धलोह है ॥ ५३ ॥

इति श्रीरसेन्द्रचिंतामणौ पंडितबलदेवप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादसहित रसायनाधिकार नाम अष्टम अध्याय ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथ सर्वज्वरेषु रसविधिः ।

त्रिपुरभैरवरसः ।

विषटङ्कबलिम्लेच्छदन्तिबीजं क्रमाद्बहु । दन्त्यम्बुमर्दितं यामं रसस्त्रिपुरभैरवः॥ बल्यो व्योषेण चार्द्रस्य रसेन सितयाऽथवा । दत्तो नवज्वरं हन्ति मान्द्यामानिलशोथहा ॥हन्ति शूलं सविष्टम्भमर्शांसि कृमिजान् गदान् । पथ्यं तक्रेण भुञ्जीत रसेऽस्मिन् रोगहारिणि ॥ १ ॥

भाषा–विष, सुहागा, गन्धक, तांबा और जमालगोटा इन सब चीजोंको क्रमानुसार एक २ भाग अधिक परिमाणसे ग्रहण करके अर्थात् एक भाग विष, दो भाग सुहागा, तीन भाग गन्धक, चार भाग तांबा और पांच भाग जमालगोटा ग्रहण करके एक साथ एक प्रहरतक दन्तीके क्वाथमें घोटना चाहिये । भली भांतिसे घुट जानेपर गोलियां बना ले । इसका नाम त्रिपुरभैरवरस है । यह बलदाई है । त्रिकटु, अद्रकका रस अथवा चीनीके साथ इस औषधिका सेवन करना चाहिये । इससे नया ज्वर, मन्दाग्नि, आमवात, शोथ, शूल, विष्टम्भ, बवासीर, कृमिरोग इन

सबका नाश हो जाता है। इस रोगनाशक औषधिको सेवन करनेके पीछे मट्ठेक पथ्य करे॥ १॥

स्वच्छन्दभैरवः।

ताम्रभस्म विषं हेम्नः शतधा भावितं रसैः। गुंजार्द्धांशं जयेत्सन्निपातं वाभिनवं ज्वरम्॥ आर्द्राम्बुशर्करासिन्धुयुतः स्वच्छन्दभैरवः। इक्षुद्राक्षासितैर्वारुदधि पथ्यं रुचौ ददेत्॥ २॥

भाषा-बराबर ताम्रभस्म और विष मिलाकर धतूरेके रसमें १०० वार भावना दे। इसको स्वच्छन्दभैरव कहते हैं। आधी चोटलीके बराबर इस औषधिका सेवन करनेसे सन्निपात और नया ज्वर दूर होता है। अद्रकका रस, चीनी और सेंधे नोनके साथ इसका सेवन करे। रुचि हो तो गन्ना, दाख, चीनी, ककडी और दहीका पथ्य किया जा सकता है॥ २॥

नवज्वरारिपुः।

ताम्रं पत्रचयं प्रताप्य बहुशो निर्वाप्य पंचामृते गोमूत्रेऽग्निजले वलिद्विगुणितं म्लेच्छेन पिष्टेन च। लिप्त्वा सप्तमृदं शुकैरथ पुनः सामुद्रयामं पचेद्यन्त्रे लावणके नवज्वरारिपुः स्याद्गुंजया सम्मितः॥ ३॥

भाषा-ताम्रपत्रको जलाकर पंचामृत, गोमूत्र और चीताके रसमें बहुधा बुझावे। तदुपरान्त उस ताम्रचूर्णको दूने गन्धकके साथ इकट्ठाकर एक डिब्बेके भीतर रखके कपरौटी करके एक प्रहरतक लवणयन्त्रमें पाक करे। एक रत्ती इस औषधिका सेवन करना चाहिये। इसका नाम नवज्वरारिपु है॥ ३॥

ज्वरधूमकेतुः।

भवेत्समं सूतसमुद्रफेनहिंगूलगंधं परिमर्द्य यामम्। नवज्वरे वल्लमितस्त्रिघस्रमार्द्राम्भसायं ज्वरधूमकेतुः॥ ४॥

भाषा-पारा, समुद्रफेन, सिंगरफ और गन्धक इनको बराबर लेकर अदरखके रसमें प्रतिदिन एक प्रहरतक घोटे। तीन दिन इस प्रकार घोटकर वल्लकी समान एक २ गोली बनावे। इसका नाम ज्वरधूमकेतु है। अदरखके रसके साथ इसकी एक एक गोली सेवन करे॥ ४॥

रत्नगिरिरसः।

सूताभ्रस्वर्णताम्राणि गंधं चार्द्धांशलौहकम्। लौहार्द्धं मृतवै-

क्रान्तं मर्दयेद्भृङ्गजद्रवैः ॥ पर्पटीरसवत्पाच्यं चूर्णितं भावयेत्पृथक् । शिग्रुवासकनिर्गुण्डीगुडूच्युग्राग्निभृङ्गजैः ॥ क्षुद्रामुण्डीजयन्त्याथ मुनिब्रह्माथ तिक्तकैः । कन्यायाश्च द्रवैर्भाव्यं त्रिभिर्वारं पृथक् पृथक् ॥ ततो लघुपुटे पाच्यं स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् । माषो दत्तः कणाधान्ययुक्तश्चाभिनवज्वरे ॥ मुद्गान्नं मुद्गयूषं वा सनीरं तक्रभक्तकम् । रसे चोक्तं पथ्यमस्मिन् शाकं सर्वज्वरोदितम् ॥ मूर्च्छितरसाभावे शुद्धसूत एव ग्राह्यः ॥ ५ ॥

भाषा—पारा, अभ्रक, सुवर्ण, ताम्र और गन्धक इन सबको बराबर अर्थात् प्रत्येक एक २ भाग, अर्द्ध भाग लोह और लोहेसे आधा मृतवैक्रांत इन सबको एक करके भांगरेके रसमें घोटकर पर्पटीकी समान पाक करके चूर्ण करे । फिर सहजना, विसौंटा, संभालू, गिलोय, वच, चीता, भांगरा, कटेरी, मुण्डी, जयंती, अगास्तियाके फूल, ब्रह्मी, चिरायता और घीकारके रसमें अलग २ प्रत्येक द्रव्यसे तीन २ वार भावना देकर लघुपुटमें पाक करे । शीतल होनेपर निकाल ले । इसका नाम ज्वरधूमकेतु है । नवज्वरमें इस औषधिका एक मासा दे । पीपल और धानियेके क्वाथके साथ इसका सेवन करे । मूंग, मूंगका जूस, पानी मिले मट्ठेके साथ भात और ज्वरोदित शाक पथ्य करे । इस औषधिको बनानेके समय मूर्च्छित पारा न मिले तो शुद्ध पारा ले । जिस प्रकार शुद्ध पारा लेना चाहिये सो नीचे कहा जाता है ॥ ५ ॥

तत्प्रकारः ।

सूतः क्षाराम्लमूत्रैर्वसनपरिवृतः स्वेदितोऽत्र त्रियामं कन्यावह्न्यर्कदुग्धैस्त्रिफलजलयुतैर्मर्दितः सप्तवारान् । पादांशार्केण युक्तः समगगनयुतस्तुत्थताप्येन युक्त ऊर्द्ध्वं पात्यस्त्रिवारं भवति किल ततः सर्वदोषैर्विमुक्तः ॥ ६ ॥

भाषा—वस्त्रके भीतर पारा रखकर तीन प्रहरतक क्षार, अम्ल और मूत्रमें स्वेद दे । फिर घीकार, चीता, आकका दूध, त्रिफलाका जल इनमेंसे एक २ के साथ सात वार पीसे फिर ४ भाग वह पारा और एक २ भाग तांवा, अभ्रक, तूतिया और सोनामक्खी मिलाकर तीन वार ऊर्ध्वपातन करे । इस प्रकार करनेसे वह पारा सब दोषोंसे रहित हो जाता है ॥ ६ ॥

शीतारिरसः ।

सूतकं टङ्कणं शुल्बं गंधं चूर्णं समं समम् । सूताद्विगुणितं देयं जैपालं तुषवर्जितम् ॥ सैन्धवं मरिचं चिञ्चात्वग्भस्म शर्करापि च । प्रत्येकं सूततुल्यं स्याज्जम्बीरैर्मर्दयेद्दिनम् ॥ द्विगुंजं तप्ततोयेन वातश्लेष्मज्वरापहम् । रसः शीतारिनामायं शीतज्वरहरः परः ॥ ७ ॥

भाषा-बराबर पारा, सुहागा, तांबा और गन्धक और सबका चूर्ण एकत्र करके पारेसे दूने तुषरहित जमालगोटे ले । फिर सेंधा, गोल मिरच, इमली छालकी भस्म और बूरा यह द्रव्य अलग २ पारेकी बराबर लेकर मिलाय जंबीरीके रसमें एक दिन घोटे । भली भांतिसे घुट जानेपर औषधि तैयार हो जायगी । इसका नाम शीतारिरस है । गरम जलके साथ २ रत्ती इस औषधिको सेवन करनेसे वातश्लेष्मज्वरका नाश होता है और इससे शीतज्वरकाभी ध्वंस होता है ॥ ७ ॥

हिंगुलेश्वरः ।

तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे पिप्पलीं हिंगुलं विषम् ।
द्विगुंजं मधुना देयं वातज्वरनिवृत्तये ॥ ८ ॥

भाषा-पीपल, सिंगरफ और विष इन तीनोंको बराबर लेकर खरलमें घोटे भली भांतिसे घोटकर ग्रहण करे । इनका नाम हिंगुलेश्वर है । दो रत्ती मधुके साथ इसका सेवन करनेसे वातज्वरका नाश होता है ॥ ८ ॥

शीतभंजी रसः ।

रसहिंगुलगंधं च जैपालं च समं समम् । दन्तिक्वाथेन संमर्द्य रसो ज्वरहरः परः ॥ नवज्वरं महाघोरं नाशयेद्यामभात्रतः । आर्द्रकस्वरसेनाथ दापयेद्रत्तिकाद्वयम् ॥ शर्करादधिभक्तं च पथ्यं देयं प्रयत्नतः । शीततोयं पिबेच्चानु इक्षुमुद्गरसौ हितौ ॥ शीतभंजी रसो नाम सर्वज्वरकुलान्तकृत् ॥ ९ ॥

भाषा-पारा, सिंगरफ, गन्धक और जमालगोटा इन सबको बराबर लेकर दन्तीके क्वाथमें घोटे, भली भांतिसे घुट जानेपर शीतभंजी रस नामक औषधि तैयार होगी । इस औषधिसे एकप्रहरमें महाघोर नवज्वरका नाश हो जाता है । अदरखके रसके साथ इसकी २ रत्तीमात्रा सेवन करे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे

शर्करा, दही और अन्नका पथ्य करे । इस औषधिका सेवन करके शीतल जल, गन्ना और मूंगका जूस पिये । इससे सब भांतिके ज्वरका नाश हो जाता है ॥ ९॥

नवज्वरेभसिंहः ।

शुद्धसूतं तथा गंधं लौहं ताम्रं च सीसकम् । मरिचं पिप्पली बिल्वं समभागानि चूर्णयेत् ॥ अर्द्धभागं विषं दत्त्वा मर्दयेद्वासरद्वयम् । शृंगवेराम्बुपानेन दद्याद्गुंजाद्वयं भिषक् ॥ नवज्वरे महाघोरे वातसंग्रहणीगदे । नवज्वरेभसिंहोऽयं सर्वरोगे प्रयुज्यते १०

भाषा–बराबर शुद्ध पारा, गन्धक, लोहा, ताम्र, सीसा, मिरच, पीपल और सांठ लेकर चूर्ण करे । फिर अर्द्ध भाग विष मिलाय दो दिन बराबर घोटे । इस औषधिको दो रत्ती ले अदरखके रसके साथ सेवन करे । यह नवज्वरेभसिंह महाघोर नवज्वरमें, वातरोगमें, ग्रहणीरोगमे और सब रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १० ॥

चन्द्रशेखररसः ।

शुद्धसूतं समं गंधं मरिचं टङ्कणं तथा । चतुस्तुल्या सिता योज्या मत्स्यपित्तेन भावयेत् ॥ त्रिदिनं मर्दयेत्तेन रसोऽयं चंद्रशेखरः । द्विगुंजमार्द्रकद्रावैर्देयं शीतोदकं पुनः ॥ तक्रभक्तं च वृंताकं पथ्यं तत्र निधापयेत् । त्रिदिनात् श्लेष्मपित्तोत्थमत्युग्रं नाशयेज्ज्वरम् ॥ ११ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, गन्धक, मिरच और सुहागा यह सब बराबर, इन चारोंकी बराबर शर्करा इन सबको इकट्ठा करके मत्स्यके पित्तमें भावना दे । भली भांतिसे घुट जानेपर चन्द्रशेखररस नामक महौषधि होती है । दो रत्तीकी गोलियां बनाय अदरखके रसके साथ सेवन करे, सेवन करके शीतल जल पिये, मट्ठा, अन्न और बैंगन पथ्य करे । इस औषधिका सेवन करनेसे तीन दिनमें अति उग्र श्लेष्मा और पित्तसे उठा हुआ ज्वर नाशको प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

महाज्वरांकुशः ।

सूतं गन्धं विषं तुल्यं धूर्त्तबीजं त्रिभिः समम् । तच्चूर्णद्विगुणं व्योषचूर्णं गुंजाद्वये स्थितम् ॥ जम्बीरकस्य मज्जाभिरार्द्रकस्य रसैर्युतम् । महाज्वरांकुशो नाम ज्वराणां मूलकृन्तनः ॥ ऐका-

हिकं द्व्याहिकं च तृतीयकचतुर्थकौ । रसो दत्तोऽनुपानेन ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ॥ १२ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, विष ये तीनो बराबर, इन तीनोंकी बराबर धतूरेके बीज और सब द्रव्योंकी बराबर त्रिकटुचूर्ण, इन सबको एकसाथ मिला लेनेसे महाज्वरांकुश बनता है । इसको दो रत्ती देनेसेही फायदा होता है । जम्बीरीकी मज्जा और अदरखके रसके साथ सेवन करना चाहिये । ज्वरका मूलसे नाश हो जाता है । यह औषधि अनुपानविशेषके साथ दी जानेपर इकतरा, दूतरा, तिजारी और चौथइया आदि सब प्रकारके ज्वरोंका नाश करती है ॥ १२ ॥

मेघनादरसः ।

आरं कांस्यं मृतं ताम्रं त्रिभिस्तुल्यं तु गंधकम् । रसेन मेघनादस्य पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ संचूर्ण्य पर्णखंडेन दातव्यो विषमापहा । अत्र मात्रा द्विगुंजा स्यात् पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ॥ पंचामृतपलं चैकमनुपानं प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

भाषा-पीतल, कांसी और तांवा बरावर ले, इन तीनोंकी बराबर गन्धक, सबको एकत्र कर मेघनादरस (तितराजरस) में घोटके शुद्ध करके गजपुटमें पाक करे । फिर उसको चूर्ण करके पर्णखण्डके साथ प्रयोग करे । इससे विषमज्वरका नाश हो जाता है । इसकी मात्रा २ रत्ती है, पथ्य दूध मिला हुआ अन्न और एक पल पंचामृत क्वाथ अनुपान दे । इसका नाम मेघनादरस है ॥ १३ ॥

विद्यावल्लभरसः ।

रसो म्लेच्छशिलातालाश्चन्द्रद्व्यग्न्यर्कभागिकाः । पिष्ट्वा तान् सुषवीतोयैस्ताम्रपात्रोदरे क्षिपेत् ॥ न्यस्तं शरावे संरुध्य वालुकामध्यगं पचेत् । स्फुटन्त्यो व्रीहयो यावत्तत्च्छिरस्थाः शनैः शनैः ॥ संचूर्ण्य शर्करायुक्तं द्विवल्लं संप्रयोजयेत् । नाशयेद्विषमाख्यं च तैलाम्लादि विवर्जयेत् ॥ १४ ॥

भाषा-एक भाग पारा, २ भाग तांबा, तीन भाग मैनशिल, बारह भाग हरिताल इन सबको एकत्र करके करेलेके पत्तोमें पीसकर ताम्रपात्रमे रक्खे । फिर सैरेयासे मुख बन्द करके वालुकायन्त्रमें पाक करे । जबतक यंत्रके ऊपर रक्खे हुए धान्य धीरे २ खिलते रहें, तब उतारकर शीतल होनेपर चूर्ण करे । इसको दो

वल्ल शर्कराके साथ सेवन करे। इससे विषमज्वरका नाश हो जाता है । इसको सेवन करनेके पीछे तेल और अम्लादिको छोड दे । इसका नाम विद्यावल्लभ रस है॥१४॥

विषमज्वरांकुशलोहः ।

रसे युक्तं दुग्धभक्तं सनीरं तक्रभक्तकम् । अजादुग्धं केवलं वा घृतं वा साधितं हितम् ॥ रक्तचंदनह्रीबेरपाठोशीरकणा शिवा । नागरोत्पलधात्रीभिस्त्रिमदेन समन्वितम् ॥ लोहं निहन्ति विविधान् समस्तान् विषमज्वरान्॥त्रिमदं मुस्तकचित्रकविडंगानि। मिलितसमस्तचूर्णसमं लोहम् । विधिरस्यामृतसारलोहवत्॥१५॥

भाषा–लाल चन्दन, सुगन्धवाला, पाड, खस, पीपल, हरीतकी, नागर(सोंठ), कमल, आमला, त्रिमद (मोथा, चीता, विडङ्ग) इन सबको बराबर लेकर साथ सब चीजोके बराबर लोहा मिलाय अमृतसार लोहकी क्रियाके अनुसार एकत्र करे । इसका नाम विषमज्वरांकुश लोह है । इससे समस्त विषमज्वर नाशको प्राप्त होते हैं । इसको सेवन करनेके पीछे दूध मिला हुआ अन्न, सनीर तक्रभक्त, वकरीका दूध अथवा साधित घृत पथ्य करे ॥ १५ ॥

शीतभंजी रसः ।

रसकं तालकं तुत्थं पारदं टङ्कगंधकम् । सर्वमेतत् समं शुद्धं कारवेल्लरसैर्दिनम् ॥ मर्दयेत्तेन कल्केन ताम्रपात्रोदरं लिपेत् । अंगुल्यर्द्धप्रमाणेन तत् पचेत् सिकताह्वये ॥ यंत्रे यावत् स्फुटन्त्येव व्रीहयस्तस्य पृष्ठतः । ततस्तु शीतलं ग्राह्यं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् ॥ शीतभंजी रसो नाम चूर्णयेन्मरिचैः समम् । माषैकं पर्णखंडेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् ॥ त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम्॥ १६ ॥

भाषा–खपरिया, हरिताल, तूतिया, पारा, सुहागा, गन्धक इन सबको शुद्ध और बराबर लेकर करेलेके रसमें एक दिन घोटके तिसके कल्कसे एक ताम्रपात्रका मध्यभाग आधा अंगुल लेपन करे । फिर उसको वालुकायंत्रमे पाक करे । जब धान्य खिलते रहें, तब उतारकर शीतल होनेपर उस पात्रमेंसे औषधि ग्रहण करके मरिचके साथ चूर्ण कर ले । इसका नाम शीतभंजी रस है । यह औषधि एक मासा पर्णखण्डके साथ सेवन करनेसे तीन दिनमें विषमज्वर, तीव्र इकतरा, दूतरा, तिजारी और चौथइया ज्वरका नाश होता है ॥ १६ ॥

सिद्धप्राणेश्वरो रसः ।

गन्धेशाभ्रं पृथग्वेदभागमन्यच्च भागिकम् । सर्ज्जिटङ्कयवक्षारं पंचैव लवणानि च॥ वराव्योषेन्द्रबीजानि द्विजीराग्नियवानिका। सहिङ्गुबीजसारं च शतपुष्पा सुचूर्णिता॥ सिद्धप्राणेश्वरः सूतः प्राणिनां प्राणदायकः । माषैकं भक्षयेदच्छनागवल्लीद्रवैर्युतम्॥ उष्णोदकानुपानं च दद्यात्तत्र पलद्वयम्। ज्वरातिसारेऽतीसारे केवले वा ज्वरेऽपि च॥ घोरत्रिदोषजे रोगे ग्रहण्यामसृगामये। वातरोगे च शूले च शूले च परिणामजे ॥ १७ ॥

भाषा–चार २ भाग करके गन्धक, पारा, अभ्रक और एक २ भाग करके सज्जीका क्षार, सुहागा, जवाखार, पांचों नमक, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रजौ, काला जीरा और सफेद जीरा, चीताकी जड, अजवायन, सिंगरफ, वायविडङ्ग, सोया इन सबका चूर्ण एक करके भलीभांतिसे घोटकर गोलियां बनावे। इसका नाम सिद्धप्राणेश्वररस है। यह प्राणियोंको प्राणदाता है। पानके रसके साथ इस औषधिकी मासाभरकी गोली सेवन करे। औषधि सेवन करनेके पीछे दो पल गरम पानी पिये। ज्वरातिसारमें, केवल अतिसारमें, ज्वरमें, घोरसन्निपातिक रोगमें रक्तामय, वातरोग, शूल और परिणामशूलमें यह औषधि देनी चाहिये ॥ १७ ॥

लोकनाथरसः ।

पंचभिर्लवणैः सूतं त्रिभिः क्षारैस्तथैव च। मर्द्दयेद्दोषनाशाय गुणाधिक्यविधीच्छया॥ एवं संशोध्य सूतेन्द्रं राजिकाहिङ्गुशुण्ठिभिः। चूर्णितैः पिण्डिकां कृत्वा तन्मध्ये सूतकं क्षिपेत्॥ ततस्तां स्वेदयेत्पिण्डीं वस्त्रे बद्धा तु कांजिके। दोलयंत्रगतां यत्नाद्वैद्यो यामचतुष्टयम्॥ एवं शुद्धं रसं कृत्वा क्रमेणानेन मर्द्दयेत्। गिरिकर्णी तथा भृंगराजनिर्गुण्डिका तथा॥ जयन्ती शृङ्गवेरं च मण्डूकी च बिल्वच्छदा। काकमाची तथोन्मत्तो रुबूकश्च ततः परम्॥ एतासामौषधीनां च रसतुल्यै रसक्रमात्। ततस्ततः सूतराजस्य कार्या मरिचमात्रिका॥ वटिका सन्निपातस्य निवृत्त्यर्थं भिषग्वरैः। इयं श्रीलोकनाथेन सन्निपात-

निवृत्तये ॥ कीर्त्तिता गुटिका पुण्या दृष्टिप्रत्ययकारिणी । इमां प्राप्य वटीं यस्मात् सन्निपाताद्विमुच्यते ॥ मयूरमीनवाराह-छागमाहिषसम्भवैः । प्रत्येकेनाथ सर्वैर्वा भाविता चेदियं भवेत् ॥ ढालयेत्तत्र तोयानि सुशीतानि बहूनि च । शर्करादधि-संयुक्तं भक्तमस्मिन् प्रदापयेत् ॥ शीतद्रव्ये भवेद्वीर्यं पित्तबद्धे महारसे ॥ १८ ॥

भाषा–पंच नमकसे और त्रिविध क्षारसे पारेको घोटनेपर उसके दोषोंका नाश हो जाता है, गुण अधिक हो जाते हैं । ऐसे शुद्ध पारेको ग्रहण करे । फिर राई, हींग और सोंठ इन तीन चीजोंको एक साथ घोट पिण्डाकार करके उस पिण्डमें शुद्ध पारेको भरे । फिर वस्त्रके टुकडेसे बांधकर उस पिण्डको कांजीसे दोलायंत्रसे ४ प्रहरतक यत्नके साथ पाक करे । इस प्रकार पारा शुद्ध होनेपर क्रमानुसार कोयल, भांगरा, संभालू, जयंती, अदरख, मण्डूकी, लाल चन्दन, मकोय, धतूरा, अरण्ड इन सबमें प्रत्येकके बराबर रससे अलग २ पीसकर गोल मिरचके समान गोलियां बनावे । इससे सन्निपात शान्त होता है । श्रीमान् लोकनाथने सन्निपातके नाश करनेको प्रत्यक्ष फल देनेवाली पुण्यवटिका कही है । इसको सेवन करनेपर सन्निपातसे छुटकारा हो जाता है । अनेक वैद्य पहली कही हुई रीतिसे अपराजिता आदिके रसमे घोटकर तदुपरान्त मसूर, मत्स्य, वराह, छाग और महिप इन पंच जीवोंके पंचपित्तसे भावना देकर फिर गोलियां बनावे हैं । वास्तवमें यह उक्ति ठीक है । इस औषधिका सेवन करनेके पीछे रोगीके शरीरपर शीतल जल डाले । इसको सेवन करके शर्करा और दधियुक्त अन्न पथ्य करे । इस महौषधको सेवन करनेके अंतमें शीतल क्रिया करनेसे औषधि वीर्यवान् होती है ॥ १८ ॥

त्रिदोषहारी रसः ।

रसबलिशिलातालताप्यतुत्थोमधिमलटङ्कनिकुम्भजामृता-ख्यम् । विलुलितमिह पित्ततस्त्रिधा स्यात् रुधिरगतः शिरसि त्रिदोपहारी ॥ १९ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, मैनसिल, हरिताल, सोनामक्खी, तूतिया, समुद्रफेन, सुहागा, अतीस, गिलोय इन सबको पंचपित्तमे तीन बार भावना देनेसे त्रिदोष-हारी रस बनता है । इससे शिरमे स्थित हुए रुधिरमें पहुँचे त्रिदोषका नाश हो जाता है । पारदादि द्रव्योंको बराबर ग्रहण करना चाहिये ॥ १९ ॥

अग्निकुमाररसः।

द्वौ कर्षौ गन्धकाद्ग्राह्यौ सूतकाद्द्वौ तथैव च। यत्नतस्तूभयं मर्द्यं हंसपादीरसैर्दिनम्॥ कल्कस्य घटिकां कृत्वा निक्षिपेत् काच-भाजने। कर्षैकममृतं तत्र क्षिप्त्वा वक्रं निरोधयेत्॥ कूपि-कायाः परो भागो वालुकाभिः प्रपूरयेत्। अहोरात्रं भवेत्स्वांगं यावत्तत्र पचेद्रसम्॥ दीपमात्रं समारभ्य पावकं वर्द्धयेच्छनैः। स्वाङ्गशीतलतां ज्ञात्वा समाकृष्य रसं ततः॥ तालार्द्धं मरिचं दत्त्वा तोलार्द्धममृतां तथा। भक्षयेद्रक्तिकामेकां सर्वरोगविना-शिनीम्॥ सन्निपातं तथा वातं शूलं मन्दाग्नितामपि। नाशये-द्ग्रहणीगुल्मक्षयपांडुगदानपि॥ २०॥

भाषा-चार तोला गन्धक, इससे बराबरही शुद्ध पारा लेकर दोनोंको एक साथ हंसपदीके रसमें एक दिन घोटकर उस कल्ककी गोलियां बनावे। फिर उन गोलियोंको एक आतशी शीशीमें भरकर तिसमें २ तोले विष डालकर शीशीके मुँहको बंद करे। फिर शीशीके ऊपर रेता डालकर दिनरात पाक करे। जितना एक दीपकका ताप होता है, उतनेसे आरम्भ करके क्रमसे तापको बढावे। पाक समाप्त होनेपर उसको उतारकर शीतल करे। फिर शीशीसे औष-धि निकालकर तिसके साथ आधा तोला मिरचचूर्ण और आधा तोला गिलोयका चूर्ण मिलावे। इसका नाम अग्निकुमाररस है। इसकी मात्रा एक रत्ती है। इससे सब रोग नष्ट होते हैं। इसके प्रसादसे सन्निपात, वातरोग, शूल, मन्दाग्नि, ग्रहणी, गुल्म, क्षयरोग और पाण्डुका नाश होता है॥ २०॥

चिन्तामणिरसः।

सूतं गन्धकमभ्रकं सुविमलं सूतार्द्धभागं विषं तत्रांशं जयपालमम्लमृदितं तद्गोलकं वेष्टितम्। पत्रैर्मञ्जुभुजङ्गवल्लि-जनितैर्निक्षिप्य खाते पुटं दत्त्वा कुक्कुटसंगकं सहदलैः संचू-र्ण्य तत्र क्षिपेत्॥ भागार्द्धं जयपालबीजममृतं तत्तुल्यमेकीकृ-तं गुंजानागरसिन्धुचित्रकयुता सर्वज्वरान्नाशयेत्। शूलं सं-ग्रहणीगदं सजठरं दध्यन्नसंसेविनां तापे सेचनकारिणां गद-वतां सूतस्य चिंतामणेः॥ स्वयमेव रसो देयो मृतकल्पे

गदातुरे । सन्निपाते तथा वाते त्रिदोषे विषमज्वरे ॥ अग्नि-मान्द्ये ग्रहण्यां च शूले चातिसृतौ पुनः । शोथे दुर्णाम्निचाध्माने वाते सामे नवज्वरे ॥ २१ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, अभ्रकभस्म, सबको बराबर ले पारेसे आधा विष और एक चतुर्थांश जमालगोटा इन सबको एक करके खटाईमें घोट गोला बनाय पानोमें लपेटे । फिर गढेमें गलकर गजपुट देनेके पीछे शीतल होनेपर पानोके साथ चूर्ण कर ले । फिर इस चूर्णके साथ आधा भाग जमालगोटा, इतनाही विषचूर्ण मिला ले । इसका नाम चिन्तामणिरस है । आर्द्रकका रस, सेंधा और चीतेके क्वाथके साथ इस औषधिकी एक रत्ती मात्रा सेवन करे, सर्व प्रकारके ज्वर नाशको प्राप्त हो जाते हैं। इससे शूल, ग्रहणी, उदररोगादि नष्ट होते हैं। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे दही मिला हुआ अन्न खाय । मृतककी समान रोगीभी इस औषधिके प्रसादसे रोगरहित हो जाता है । सन्निपात, वात, त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ विषमज्वर, मन्दाग्नि, संग्रहणी, सूजन, ववासीर, अफरा, नवज्वरादि रोगमें यह औषधि देनी चाहिये ॥ २१ ॥

सान्निपातसूर्य्यो रसः ।

रसेन गन्धं द्विगुणं प्रगृह्य तत्पादभागं रवितारहेम । भस्मीकृतं योजय मर्दयाथ दिनत्रयं वह्निरसेन घर्म्मे ॥ विषं च दत्त्वात्र कलाप्रमाणमजादिपित्तैः परिभावयेच्च । वल्लद्वयं चास्य ददीत वह्निकटुत्रयाद्यम्बुरसप्रयुक्तम् ॥ तैलेन चाभ्यङ्गवपुश्च कुर्यात् स्नानं जलेनापि च शीतलेन । यावद्भवेद्दुःसहशीतमस्य मूत्रं पुरीषं च शरीरकम्पः ॥ पथ्ये यदीच्छा परिजायतेऽस्य मरीचचूर्णं दधिभक्तकं च । स्वल्पं ददीतार्द्रकमल्पशाकं दिनाष्टकं स्नानविधिं च कुर्यात् ॥ ये रसाः पित्तसंयुक्ताः प्रोक्ताः सर्वत्र शम्भुना । जलसेकावगाहाद्यैर्बलिनस्ते तु नान्यथा ॥२२॥

भाषा—पारा १ भाग, गन्धक दो भाग, तांबेकी भस्म, चांदीकी भस्म इनमेंसे प्रत्येकको पारेसे चौथाई ले । सबको खरलमे डाल धूपके समय चीतेके रसमें ३ दिन मर्दन करे, फिर एक कला अर्थात् पारेका सोलहवां भाग विष डालकर बकरी, मोर, भैंसा आदिके पित्तसे घोटे । इसकी मात्रा ६ रत्तीकी है । चीता, त्रिकटु, अदरख इनके क्वाथके साथ दे । जबतक दारुण शीत न जान पडे, मल-

मूत्र न उतरे, शरीर न कांपने लगे, तबतक तेलका मालिस करके शीतल जलसे स्नान करे । जो रोगीकी इच्छा पथ्यकी हो तो मरिचचूर्ण, दही मिला हुआ अन्न (भात) थोडासा आर्द्रक और शाक दे । ८ दिनतक इस नियमसे स्नान करावे । पित्तयुक्त पारा जलढालने और अवगाहन स्नान करके निःसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् होता है । स्वयं महादेवजी यह कह गये हैं ॥ २२ ॥

त्रिदोषनीहारसूर्यरसः ।

रसेन गन्धं द्विगुणं कृशानुरसैर्विमर्द्याथ दिनानि घर्म्मे । रसाष्टभागं त्वमृतं च दत्त्वा विमर्दयेद्वह्निजलेन किंचित्॥ पित्तैस्तु सद्भावित एष देयस्त्रिदोषनीहारविनाशसूर्य्यः ॥ २३ ॥

भाषा-जितना पारा हो उससे तिगुना गन्धक लेकर कुछ दिनतक धूपके समय चीतेके क्राथमें मर्दन करके तिसके साथ पारेका आठवां भाग विष मिलावे । फिर चीताके क्राथमें कुछेक पीसकर अजादिपित्तमें भावना देवे । इसका नाम त्रिदोषनीहारसूर्यरस है ॥ २३ ॥

सन्निपाततुलानलरसः ।

त्र्यूषणं पंचलवणं त्रिक्षारं जीरकद्वयम् । शताह्वागन्धसूताभ्रं यामं सर्वं विमर्दयेत् ॥ चित्रकार्द्रकतोयेन पंचगुञ्जं प्रयोजयेत् । सन्निपाते ज्वरादौ तु सामेऽजीर्णेऽपि वैद्यराट् ॥ पानीयं पाययित्वा तु निर्वाते स्थापयेत्ततः । दधिभक्तं प्रदातव्यं क्षुधालीने पुनर्ददेत् ॥ अमुं वातेन मन्दाग्नौ प्रयुंजीत यथाविधि ॥ २४ ॥

भाषा-त्रिकुटा, पंचलवण, तीनो क्षार, दोनो जीरे, शतमूली, गन्धक, पारा और अभ्रक इन सबको बराबर लेकर एक साथ एक प्रहरतक मर्दन करके पांच रत्तीकी एक २ गोली बनावे । चीतेके क्राथ और आर्द्रकके रसके साथ इसका सेवन करना चाहिये । वैद्यराजको चाहिये कि सन्निपातज्वर और आमाजीर्णमें इसका प्रयोग करे । इस औषधिको सेवन कराय रोगीको जल पिलाय वायुरहित स्थानमे रक्खे । इस औषधिको सेवन करके भूंख लगे तो दही मिला भात खाय । वातरोग और मन्दाग्निमे इस औषधिको यथाविधिसे प्रयोग करे । इसका नाम सन्निपाततुलानलरस है ॥ २४ ॥

भैरवरसः ।

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं समं टङ्कणगंधकम् । जम्बीरफलमध्यस्थं

दोलायंत्रे पचेद्दिनम् ॥ मर्द्दयेद्द्रावयेद्द्रावैः शिग्रुवासार्द्रनिम्बुजैः। सर्पाक्षी विजया ब्राह्मी मीनाक्षी हंसपादिका ॥ हस्तिशुण्डी रुद्रजटा धूर्त्तवातारिशिंशपाः । दिनैकं मर्द्दयेदासां लोहसंपुटगं पचेत् ॥ दिनैकं वालुकायन्त्रे समुद्धृत्य विचूर्णयेत्। तालकं दीप्यकं व्योषं विषं जीरकचित्रकौ ॥ एषां चूर्णसमैर्मिश्रं द्विगुंजं भक्षयेत्सदा । सन्निपातज्वरं हन्ति मुद्गयूषाशिनः सुखम् ॥ २५ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, तांबेकी भस्म, इनकी बराबर सुहागा और गन्धक ले । सबको जंबीरी नींबूके रसमें दोलायंत्रकी विधिसे पचावे । फिर सहजना, विसोंटा, आर्द्रक, नींबू, सरफोका, भांग, ब्रह्मी, मछेदी, हंसराज, हथशुंडी, रुद्रजटा, धतूरा, अरण्ड और अगरके रसमें एक दिन मर्दन करे । फिर लोहेके सम्पुटमें रखके वालुकायंत्रमें एक दिन पचावे । फिर उसको निकालकर चूर्ण करके हरिताल, अजमोद, त्रिकुटा, विष, जीरा और चित्रक इनके चूर्णके साथ दो रत्ती इस रसको खाय तो सन्निपातज्वरका नाश हो। इस औषधिको सेवन करके मूंगका जूस पिये । इसका नाम भैरवरस है ॥ २५ ॥

जलयौगिकरसः ।

सूतभस्मसमं गन्धं गन्धपादा मनःशिला । माक्षिकं पिप्पली व्योषं प्रत्येकं च शिलासमम्॥चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायुरकैः क्रमात् । सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुंजाद्वयं द्वयम् ॥ तालपर्णीरसं चानुपंचकोलमथापि वा । निहन्ति सन्निपातादीन् रसोऽयं जलयौगिकः॥ जलयोगं विनाप्यत्र रसवीर्यं न वर्द्धते ॥२६॥

भाषा–पाराभस्म और गन्धक बराबर, गन्धकसे चौथाई मैनशिल, मैनशिलकी बराबर सोनामक्खी, पीपल, त्रिकटु इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण करके मछलीके पित्तमें सात वार, मोरके पित्तमें सात वार भावना देकर दो रत्तीकी बराबर एक २ गोली बनावे । सोफके रस अथवा पंचकोलके अनुपानके साथ इसको सेवन करना चाहिये । यह जलयोगरस सन्निपातादि रोगका नाश करता है । जलयोगके विना रसवीर्य कभीभी नहीं बढता ॥ २६ ॥

बिश्वमूर्तिरसः ।

स्वर्णनागार्कपत्राणां गुंजाः पंच पृथक् पृथक् । त्रयाणां द्विगुणः

सूतो जम्बीराम्लेन मर्द्दयेत् ॥ पिष्टितां निम्बके क्षिप्त्वा दोलायंत्रे दिनद्वयम् । पाचयेदारनालान्तस्तस्मादुद्धृत्य चूर्णयेत् ॥ ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा तालकं च रसोन्मितम् । लोहसंपुटकं कृत्वा क्षिप्त्वा चैव प्रपूरयेत् ॥ लवणस्य च चूर्णेन त्र्यहं मन्दाग्निना पचेत् । आदाय चूर्णयेत् श्लक्ष्णं दद्यात् गुंजाचतुष्टयम् ॥आर्द्रकस्य रसोपेतं शीघ्रं पथ्यं न दापयेत् । विश्वमूर्त्तिरसो नाम्ना सन्निपातादिरोगजित् ॥ २७ ॥

भाषा-पांच रत्ती सुवर्ण, पांच रत्ती सीसा, पांच रत्ती ताम्र इन सब द्रव्योंसे तिगुना अर्थात् ४५ रत्ती पारा इन सबको इकट्ठा करके जम्बीरीके रसमें मर्द्दन करे। फिर उस मर्दित द्रव्यको नींबूके भीतर रखके दो दिनतक कांजीके साथ दोलायंत्रमें पाक करे। फिर उसको निकालकर चूर्ण करे। फिर एक लोहेके संपुटको लेकर तिसके ऊपर व नीचे पारेकी समान गन्धक और हरिताल भर पात्रमें उपरोक्त चूर्ण करे द्रव्यको भरे। फिर मन्दी आंचसे लवणयंत्रमें तीन दिनतक उक्त पात्रको पाक करे। पाक समाप्त हो जानेपर औषधि ग्रहण करके चूर्ण करना। इसका नाम विश्वमूर्तिरस है। अदरखके रसके अनुपानके साथ चार रत्ती इस औषधिका प्रयोग करे। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे पथ्य शीघ्र न दे। इससे सन्निपातादि रोग पराजित होते हैं ॥ २७ ॥

वारिसागररसः।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं सूततुल्यं मृताभ्रकम् । निर्गुण्डी काकमाची च धत्तूरार्द्रकचित्रकम् ॥ गिरिकर्णी जयन्ती च तिलपर्णी च भृङ्गराट् । दन्ती शिग्रु कदम्बस्य कुसुमं नागकेशरम् ॥ जया कृष्णा महाराष्ट्री द्रवैरासां यथाक्रमात् । यामं पृथक् विशोष्याथ कटुतैलेन भावयेत् ॥ शरावसंपुटे रुद्ध्वा वालुकायंत्रगं पचेत् । यामैकं तत्समुद्धृत्य चूर्णितं कृष्णलात्रयम् ॥ त्र्यूषणं पंचलवणं द्विक्षारं जीरकद्वयम् । वचाद्रोग्नियमान्यश्च समभागानि कारयेत् ॥ अनुपाने चतुर्माषं सन्निपातहरं परम् । माहिषं दधि पथ्यं स्याद्रसवीर्यविवर्द्धनम् ॥ साध्यासाध्ये प्रयोक्तव्यो रसोऽयं वारिसागरः ॥ २८ ॥

भाषा-शुद्ध पारा एक भाग, गन्धक इससे दूना, पारेकी बराबर अभ्रक भस्म इन सबको इकट्ठा करके क्रमानुसार संभालू, मकोय, धतूरा, आर्द्रक, चीता, कोयल, जयंती, लाल चन्दन, भांगरा, दन्ती, सहजना, कदम्बफूल, नागकेशर, भंग, पीपल, गजपीपल इन सबके रसमें पीसकर शुष्क होनेपर कडवे तेलमें घोटे । फिर शराव-पुटमें वन्द करके एक प्रहरतक वालुकायंत्रमें पाक करे । पाक समाप्त हो जानेपर उसको निकालकर चूर्ण करके ग्रहण करे । त्रिकुटा, पंचलवण, सज्जीखार और जवाखार, सफेद जीरा और काला जीरा, वच, आर्द्रक, चीता, अजवायन इन सब द्रव्योंको बराबर ग्रहण करके इनके ४ मासे अनुपानके साथ इस औषधिका प्रयोग करे । इससे सन्निपातका नाश होता है । इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमें भैंसका दही पथ्य करे । तिससे पारदादि औषधिका वीर्य बढता है । यह वारिसा-गररस साध्यासाध्य सब रोगोंमे दिया जाता है ॥ २८ ॥

वीरभद्ररसः ।

त्र्यूषणं पंचलवणं शतपुष्पा द्विजीरकम् । क्षारत्रयं समांशेन चूर्णमेषां पलत्रयम् ॥ शुद्धसूतं मृताभ्रं च गन्धकं च पलं पलम् । आर्द्रकस्य द्रवैः खल्वे दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ वीरभद्ररसः ख्यातो माषैकं सन्निपातजित् । चित्रकार्द्रकसिन्धूत्थमनुपानं जलेन च ॥ पथ्यं क्षीरोदनं देयं द्विवारं च रसो हितः ॥ २९ ॥

भाषा-त्रिकुटा, पांचो नोन, सोफ, दोनो जीरे, तीनो खार सब बराबर लेकर कुल तीन पल चूर्ण ग्रहण करे । फिर इसके साथ एक २ पल शुद्ध पारा, अभ्रक-भस्म और गन्धक मिलाय खरलमें आर्द्रकके रसके साथ एक दिन खरल करे । भली भांतिसे खरल हो जानेपर एक मासेकी गोलियां बनावे । इसका नाम वीरभद्र-रस है । चित्रक, अदरख, सेंधा और जल इसका अनुपान है । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे दो वार दूधभातका पथ्य दे ॥ २९ ॥

त्रिनेत्ररसः ।

गन्धेशार्कं गवां क्षीरैस्त्रिभिस्तुल्यैः खरातपे । संमर्द्य शिग्रुक-द्रावैर्दिनं गोलं विधाय तम् ॥ त्रियामं वालुकायंत्रे चान्ध्रमूषागतं पचेत् । संचूर्ण्य सर्वादष्टांशं विषं तत्र विमिश्रयेत् ॥ द्वित्रि-गुञ्जस्त्रिनेत्रोऽयं प्रदेयः सन्निपातजित् । पंचकोलं पिबेच्चानु पथ्यं छागीपयः समम् ॥ ३० ॥

भाषा-गन्धक, पारा, ताम्र ये तीनो बराबर और इन सबकी बराबर गायका दूध एकत्र करके तेज धूपमें सहजनेके रसके साथ घोटकर गोला बनावे। फिर उसको अन्धमूषामें डालकर वालुकायंत्रमें ३ प्रहरतक पाक करके चूर्ण करे। अष्टमांश विष डाले इसका नाम त्रिनेत्ररस है। २ या ३ रत्तीकी मात्रा है। इससे सन्निपातका नाश होता है। इससे पंचकोलके काढेका अनुपान दे। बकरीके दूधका पथ्य है॥३०॥

पंचवक्ररसः ।

गन्धेशटङ्कमरिचं विषं धत्तूरजैर्द्रवैः । दिनं संमर्दितः शुद्धः पंचवक्ररसो भवेत् ॥ द्विगुंजमार्द्रनीरेण त्रिदोषज्वरनुत्परः ॥३१॥

भाषा-गन्धक, पारा, सुहागा, मिरच और विष इनको बराबर लेकर धतूरेके रसमें एक दिन पीसे। इसका नाम पंचवक्र रस है। अदरखके रसके साथ दो रत्ती इस औषधिको सेवन करनेसे त्रिदोषजज्वर दूर होता है॥ ३१॥

स्वच्छन्दनायकरसः ।

सूतगन्धकलोहानि रौप्यं संमर्दयेत्र्यहम् । सूर्यावर्त्तश्च निर्गुण्डी तुलसी गिरिकर्णिका ॥ अग्निमन्थार्द्रकं वह्निर्विजया च जया सहा । काकमाची रसैरासां पंचपित्तैश्च भावयेत् ॥ अन्धमूषागतं पश्चात् वालुकायंत्रगं दिनम् । आदाय चूर्णितं खादेन्माषैकं चार्द्रकद्रवैः ॥ निर्गुण्डीदशमूलानां कषायं शोषणं पिबेत् । अभिन्यासं निहन्त्याशु रसः स्वच्छन्दनायकः ॥ छागीदुग्धेन दुग्धैर्वा पथ्यमत्र प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोहा और चांदी बराबर लेकर हुलहुल, संभालू, तुलसी, कोयल, अरणी, अद्रक, चित्रक, विजया (हरीतकीका नाम है), भंग और मकोय इन सबके रसमें तीन दिन पीसकर मछली, सूअर, भैंसा, बकरी, मोर इस पंचपित्तमें भावना दे अन्धमूषामें रखके वालुकायंत्रमे एक दिन पाक करे, फिर चूर्ण करना चाहिये। अद्रकके रसके साथ इस औषधिका एक मासा सेवन करे। ऊपरसे निर्गुण्डी, दशमूलका काढा पिये। इसका नाम स्वच्छन्दनायक रस है। इससे शीघ्र अभिन्यासज्वरका नाश होता है। इस औषधिको सेवन करनेके अंतमें बकरीका दूध पथ्य करे॥ ३२॥

जयमङ्गलरसः ।

सूतभस्माभ्रकं तारं मुण्डतीक्ष्णालमाक्षिकम् । वह्निटङ्कणक-

व्योषं समं संमर्दयेद्दिनम् ॥ पाठनिर्गुण्डिकापष्ठीविल्वमूलक-षायकैः । ततो मूषागतं रुद्ध्वा विपचेद्भूधरे पुटे ॥ माषैकं दश-मूलस्य कषायेण प्रयोजयेत् । अंजनेनाथवा नस्यात् सन्निपातं जयेत् ज्वरम् ॥ ३३ ॥

भाषा—पारदभस्म, अभ्रक, चांदीकी भस्म, मुण्डलोहकी भस्म, तीक्ष्ण लोहकी भस्म, हरिताल, सोनामक्खी, चित्रक, सुहागा, त्रिकटु इन सबको बराबर लेकर पाढ, संभालू, सठी धान्य और वेलकी जड़के काढेसे एक दिन पीस करके अंधमूषामे रखके भूधरयंत्रमें पाक करे । दशमूलके काढेके साथ इस औषधिकी एक मासा मात्रा ले । अथवा इस औषधिसे अंजन देने या नस्य ग्रहण करनेसे सन्निपातज्वरका नाश होता है । इसका नाम जयमंगल रस है ॥ ३३ ॥

नस्यभैरवः ।

मृतसूतोऽर्कतीक्ष्णानि टङ्कणं खर्परं समम् । सव्योपमर्कदुग्धेन दिनं संमर्दयेद्दृढम् ॥ अर्कक्षीरयुतं नस्यं सन्निपातहरं परम् ॥३४॥

भाषा—चंद्रोदय, ताम्रभस्म, लोहभस्म, सुहागा, खपरिया, सोंठ, मिरच, पीपल ये सब बराबर ले आकके दूधके साथ एक दिन भली भांति खरल करे । इसका नाम नस्यभैरव है । आकके दूधमें मिलाकर इसका नस्य ग्रहण करनेसे सन्निपातज्वरका नाश हो जाता है ॥ ३४ ॥

अंजनभैरवः ।

सूततीक्ष्णकणागन्धमेकांशं जयपालकम् ।
सर्वैस्त्रिगुणितं जम्भवारिपिष्टं दिनाष्टकम् ॥
नेत्राञ्जनेन हन्त्याशु सर्वोपद्रवमुल्बणम् ॥ ३५ ॥

भाषा—तीन २ भाग पारा, लोह, गन्धक, पीपल और एक भाग जमालगोटा इन सबको इकट्ठा करके जंवीरीके रसमें आठ दिन खरल करे । प्रत्येक दिन ३ वार खरल करे । इसका नाम अंजनभैरव है । इससे दोनो नेत्रोंमें अंजन देनेसे समस्त उपद्रवोंके साथ प्रवल सन्निपात शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

मोहान्धसूर्य्यरसः ।

गन्धेशौ लशुनाम्भोभिर्मर्दयेत् यामयात्रकम् । तस्योदकेन संयुक्तं नस्यं तत्प्रतिबोधकृत् ॥ मरिचेन समायुक्तं हन्ति तन्द्रां प्रलापकम् ॥ ३६ ॥

भाषा-गन्धक, पारेको एक प्रहरतक लहसनके रसमें खरल करे। पीछे लहसनके जलसे नास ले तो रोगी सचेतन होता है। मिरच चूर्णके साथ मिलाकर नस्य ग्रहण करनेसे तन्द्रा और प्रलापका नाश होता है॥ ३६॥

रसचूडामणिः।

सूतभस्म विषं ताम्रं जयपालं सगन्धकम्। हेम तैलेन संमर्द्य ततो लघुपुटं ददेत्॥ भावयेत्कालकद्रावैरजामाहिषमीनजैः। पित्तैः पृथक् सप्तधातिविषधूमेन शोधयेत्॥ सप्तवारं त्रिवारं वा पश्चादार्द्रेण भावयेत्। रसचूडामणिः सिद्धः साक्षात् श्रीभैरवो महान्॥ ततोऽस्य रक्तिकां युंज्याद्गुञ्जार्द्धं वार्द्रनिम्बयुक्। महाघोरे सन्निपाते नवे वाप्यनवे ज्वरे॥ जलावगाहनं कुर्यात्सेचनं व्यजनानिलैः। तत्क्षणान्मज्जनस्नानं कुंकुमं चंद्रचंदनम्॥ पथ्यं यथेप्सितं खाद्यं खादेद्द्राक्षेक्षुदाडिमम्। सितां हितप्रदं चैव कांजिकस्नानमेव च॥ शूले गुल्माग्निमान्द्यादौ ग्रहण्युदरपाप्मसु। वाते सर्वाङ्गकैकांगगते वाप्यनिले तथा॥ प्रसूतिवाते सामे वा सानुपानैः प्रयोजयेत्। रक्तदोषं विना चैनं योजयेद्वर्जयेदिह॥ तैलाम्लराजिकामीनक्रोधशोकाध्वगं क्रमम्। विल्वारनालमुशलीफलवृन्ताकमैथुनम्॥ ३७॥

भाषा-पारदभस्म, विष, तांबेकी भस्म, जमालगोटा और गन्धक बराबर लेकर धतूरेके तेलमे घोटकर लघुपुटमें फूंक दे। फिर कसोदीके रसमे सात वार, बकरीके पित्तमे सात वार, भैंसके पित्तमें सात वार, मछलीके पित्तमे सात वार भावना देकर अतीसके धूममें शोधन करे। फिर सात वार अथवा तीन वार आर्द्रकके रसमें भावना देवे। यह रसचूडामणि है। यह औषधि साक्षात् भैरवकी समान है। अदरखके रसके साथ यह औषधि एक रत्ती वा आधी रत्ती प्रयोग करे। महाघोर सन्निपात, नवज्वर और पुराने ज्वरमें इसका सेवन करना चाहिये इसको सेवन कराकर रोगीको जलावगाहन करावे, पंखेसे हवा करे, मज्जन, स्नान करके कुंकुम चन्दनादि लेपन करे। औषधिका सेवन करके अभिलाषाके अनुसार पथ्य करे, विशेष करके दाख, गन्ना, दाड़िम, शर्करा और कांजिकस्नान अत्यन्त उपकारी है। यह औषधि शूल, गुल्म, मन्दाग्नि, संग्रहणी, उदररोग, सर्वांगगत वा एकाङ्गगत वात, प्रसूतिवातादि रोगमे यथाविधिसे अनुपानके साथ प्रयोग करे।

रक्तदोषके सिवाय और रोगोंमें इसको दे । इस औषधिका सेवन करके तेल, खटाई, सरसों, मत्स्य, क्रोध, शोक, घूमना, बेल, कांजी, मूशली, बैंगन और मैथुन त्याग करे ॥ ३७ ॥

वाडवरसः ।

पटुना पूरयेत्स्थालीं तन्मध्ये पटुमूषिकाम् । तन्मध्ये रामठीमूषां तन्मध्ये सूतकं क्षिपेत् ॥ विषं निघृष्य सूतांशं वारिणालोड्य सप्तभिः । कृते त्रिभिः संगुणिते तेन चैवं दद्देच्छनैः ॥ वह्निं प्रज्वालयेच्चोग्रं हठं यामचतुष्टयम् । तद्भस्म तिलमात्रं तु दद्यात्सर्वेषु पाप्मसु ॥ ग्रहण्यां जठरे शूले मन्दाग्नौ पवनामये । युक्तमेतद्धिहन्त्येव कुर्याद्बहुतरां क्षुधाम् ॥ तापे शीतक्रियां कुर्यात् वाडवाख्यो रसोत्तमः ॥ ३८ ॥

भाषा-एक हांडीमें नमक भरे । उसके भीतर नमककी घडिया रक्खे, नमककी घड़ियामें हींगकी मजबूत घाड़िया रखकर तिसमें पारा रक्खे । फिर पारेसे चौथाई विष घिसकर इक्कीस गुण पानीमें सान पारेके साथ मिलाय ४ प्रहरतक हठाग्नि दे । इस प्रकार करनेसे औषधि भस्म होती है । इसका नाम वाडवरस है । सर्व प्रकारके रोगोंमे विशेष करके संग्रहणी, उदररोग, शूल, मन्दाग्नि और अनिलामय रोगमें तिलकी बराबर इसका प्रयोग करना ठीक है । इसके सेवन करनेसे क्षुधा बढती है । रोगीको अधिक दाह हो तो शीतक्रिया करे ॥ ३८ ॥

रसकर्पूरः ।

विषं विनायं रसकर्पूरो नाम सर्वरोगोपकारकः ॥ ३९ ॥

भाषा-ऊपर कही औषधिमें विष न मिलाया जाय तो इसे रसकर्पूर कहते हैं। यह सब रोगोंमें हितकारी है ॥ ३९ ॥

सूचिकाभरणरसः ।

विषं पलमितं सूतं शाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम् । तच्चूर्णं संपुटे कृत्वा काचलिप्तशरावयोः॥मुद्रां कृत्वा च संशोष्य ततश्चुल्ह्यां निवेशयेत् । वह्निं शनैः शनैः कुर्यात् प्रहरद्वयसंख्यया ॥ तत उद्घाट्य तन्मुद्रामुपरिस्थशरावकात् । संलग्नो यो भवेद्धूमस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः ॥ वायुस्पर्शो यथा न स्यात् ततः कुप्प्यां निवेश-

येत् । यावत्सूच्या मुखे लग्नं कूप्या निर्याति भेषजम् ॥ ताव-
न्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि । क्षुरेण प्रहृते मूर्ध्नि
तत्राङ्गुल्या च घर्षयेत् ॥ रक्तभेषजसम्पर्कान्मूर्च्छितोऽपि
हि जीवति । तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोऽपि जीवति ॥ यथा
तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते ॥ ४० ॥

भाषा-एक पल सिंगिया विष, शाणभर पारदचूर्ण, एकत्र करके काचालिप्त शरावमें भरे । फिर दूसरे काचशरावसे उसको ढककर जोडका स्थान बंद करे, फिर सूख जानेपर चूल्हेके ऊपर चढाय दो प्रहरतक मन्दी आंच दे । फिर उतारकर उघाड ऊपरकी शरावमें जो औषधि लगी हो उसको इस प्रकारसे लेकर शीशीमें भरे कि जिससे उसको हवा न लगे। जो सन्निपातरोगमें रोगी मूर्च्छित हो जाय तो सुईकी नोकसे इस औषधिको ले, रोगीके हजामत बने मस्तकपर उंगलीसे घिस दे । इस प्रकार करनेसे मूर्च्छित पुरुष चैतन्य हो जाता है। सांपका काटा मृतक अवस्थाको प्राप्त हुआभी इस औषधिके बलसे फिर जीवित हो जाता है । जो रोगीको अत्यन्त गरमी मालूम हो तो सहद दे । इस औषधिका नाम सूचिकाभरण रस है ॥ ४० ॥

भस्मेश्वररसः ।

भस्म षोडशनिष्कं स्यादारण्योत्पलकोद्भवम् । निष्कत्रयं च
मरिचं विषं निष्कं च चूर्णयेत् ॥ अयं भस्मेश्वरो नाम सन्नि-
पातनिकृन्तनः । पंचगुंजामितं भक्षेदार्द्रकस्य रसेन च ॥ ४१ ॥

भाषा-अरने उपलोकी राख १६ तोले, तीन तोले मिरच और एक तोला विष इन सबको एक साथ चूर्ण करे । इसका नाम भस्मेश्वररस है । इससे सन्निपातका नाश होता है। अद्रकके रसके साथ इस औषधिको ५ रत्ती प्रयोग करे ॥ ४१ ॥

उन्मत्तरसः ।

रसगन्धकतुल्यांशं धत्तूरफलजैर्द्रवैः ।
मर्दयेद्दिनमेकं तु तुल्यांशं त्रिकटुं क्षिपेत् ॥
उन्मत्ताख्यो रसो नाम्ना नस्ये स्यात् सन्निपातजित् ॥ ४२ ॥

भाषा-पारा और गन्धक बराबर लेकर धत्तूरफलके रसमें एक दिन खरल करके तिसमें बराबर त्रिकुटा मिलावे । इसका नाम उन्मत्तरस है । इसका नस्य लेनेसे सन्निपातका नाश हो जाता है ॥ ४२ ॥

आनन्दभैरवरसः ।

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणाम् । चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः ॥ गुञ्जैकं वा द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत्। मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलत्वचम् ॥ चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारजित् । दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं गव्यजं तक्रमेव च ॥ पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि ॥ ४३ ॥

भाषा-सिंगरफ, वत्सनाभ (विष), मिरच, सुहागा, पीपल इन सबको बराबर ग्रहण करके चूर्ण करे। इसका नाम आनन्दभैरव रस है। रोगीका बलाबल विचारकर इसको १ रत्ती या दो रत्ती दे। इन्द्रजौका चूर्ण एक कर्ष और सहद इसका अनुपान है। इससे त्रिदोषजात अतिसार ध्वंस होता है । इसको सेवन करनेके अंतमें दही-भात अथवा गायके दूधका मठा या बकरीके दूधका मठा पथ्य दे। रोगीको प्यास हो तो ठंडा पानी और रात्रिके समय हरीतकीका सेवन हितकारी है ॥ ४३ ॥

चिकित्सिते ग्रहण्यां ये रसा योगाश्च कीर्त्तिताः ।
अतीसारं च ये हन्युर्दीपयन्त्यनलं नृणाम् ॥ ४४ ॥

भाषा-जिन रस और योगोंका वर्णन ग्रहणीरोगाधिकारमें लिखा है और जो रस अतिसारके रोकनेवाले हैं, उन सबसे अग्नि प्रदीप्त होती है ॥ ४४ ॥

मृतसंजीवनरसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं सूतपादं विषं क्षिपेत् । सर्वतुल्यं मृतं चाभ्रं मर्द्यं धत्तूरजैर्द्रवैः ॥ सर्पाक्ष्यश्च द्रवैर्यामं कषायेणाथ भावयेत् । धात्री चातिविषा मुस्ता शुंठी वालकजीरकम् ॥ यवानी धातकी बिल्वं पाठा पथ्या कणान्विता । कुटजस्य त्वक् च बीजं कपित्थं दाडिमं तिलाः ॥ प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्कल्कितं क्वथितं जलैः । कल्कात् चतुर्गुणं तोयं क्वाथ्यं पादावशेषितम् ॥ अनेन त्रिदिनं भाव्यं पूर्वोक्तं मर्दितं रसम् । रुद्ध्वा तद्वालुकायंत्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ मृतसंजीवनो नाम्ना रसो गुंजाचतुष्टयम् । दातव्यमनुपानेन चासाध्यमपि साधयेत् ॥ नागरातिविषा

मुस्ता देवदारु वचारुणा । यवानीवालकौ चान्यं कुटजस्य त्वचाभया ॥ धातकीन्द्रयवाबिल्वपाठामोचरसं समम् । चूर्णितं मधुना लेह्यमनुपानं सुखावहम् ॥ ४५ ॥

भाषा-शुद्ध पारा और गन्धक बराबर, पारेसे चौथाई विष, सब द्रव्योंके बराबर अभ्रकभस्म इन सबको इकट्ठा करके धतूरेके रसमें मर्दन करके नकुलकन्दके रसमें एक प्रहरतक भावना दे । फिर आमला, अतीस, मोथा, सोंठ, सुगन्धवाला, जीरा, अजवायन, धायफूल, बेलसोंठ, पाढ, हरीतकी, पिप्पली, कूडेकी छाल, कैथ, दाडिम और तिल इन सबको कर्षभर लेकर चूर्ण करके उससे चौगुने जलमें सिद्ध करे । एक चतुर्थांश जल रह जाय तब उतारकर उस क्वाथसे ऊपर कहे मर्दित पारेको तीन दिन भावना दे । फिर शुष्क होनेपर वालुकायंत्रमें बन्द करके मन्दी आगसे कुछ देरतक पाक करे । इसका नाम मृतसञ्जीवन रस है। विधिपूर्वक अनुपानके साथ इसको ४ रत्ती देना चाहिये । इससे असाध्यरोगभी दूर होते हैं । इसको सेवन करनेके पीछे सोंठ, अतीस, मोथा, देवदारु, वच, पीपल, अजवायन, सुगन्धवाला, धनिया, कूडेकी छाल, अभया (हरीतकी) और मोचरस इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करके सहद मिलाय चाटे । निःसन्देह यह अनुपान सुखका करनेवाला है ॥ ४५ ॥

कनकसुन्दररसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मरिचं टङ्कणं तथा । स्वर्णबीजं समं मर्द्यं भृङ्गद्रावैर्दिनार्द्धकम् ॥ सूततुल्यं विषं योज्यं रसः कनकसुन्दरः । युक्तो गुंजाद्वयं हन्ति वातातीसारमद्भुतम् ॥ दध्यन्नं दापयेत् पथ्यमाजं वाथ गवां दधि ॥ ४६ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, गन्धक, मिरच, सुहागा, धतूरेके बीज इन सबको बराबर लेकर एक साथ आधे दिन भांगरेके रसमे घोटे । फिर पारेकी बराबर शुद्ध सिंगिया विष मिलावे । इसका नाम कनकसुन्दररस है । इसको २ रत्ती सेवन करनेसे वातातिसारका नाश होता है । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे दहीमिला भात और बकरी या गायका दही पथ्य करना चाहिये ॥ ४६ ॥

कारुण्यसागररसः ।

रसभस्म द्विधा गन्धं तस्य तुल्यं मृताभ्रकम् । दिनं सर्षपतैलेन पिष्ट्वा यामं विपाचयेत् ॥ रसमार्कवमूलोत्थैर्निर्यासैः संवि-

मर्द्यं च । त्रिक्षारपंचलवणविषव्योपाग्निजीरकैः ॥ सचित्रकैः समानांशैर्युक्तः कारुण्यसागरः । मापद्वयं प्रयुञ्जीत रसस्यास्यातिसारके ॥ सज्वरे विज्वरे वाथ शूले च शोणितोद्भवे । निरामे शोथयुक्ते वा ग्रहण्यां सानुपानकः ॥ अनुपानं विनाप्येषः कार्यसिद्धिं करिष्यति ॥ ४७ ॥

भाषा—चन्द्रोदय एक भाग, दूना गन्धक, गन्धककी बराबर अभ्रक भस्म लेकर एक साथ एक दिन सरसोंके तेलमें घोटकर एक प्रहरतक पाक करे । स्वांगशीतल हो जानेपर निकालकर भांगरेकी जडके रसकी भावना दे । फिर दाखके गोंद् और मोचरसके साथ भांगरेके रसमें घोटे । फिर सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पांचों नमक, विष, सोंठ, मिरच पीपल, चीता, जीरा और वायविडङ्ग इन सबको बराबर लेकर खरल करे । इसका नाम कारुण्यसागर रस है । इसको दो मासे लेकर अतिसार सज्वर या विज्वरमे, शूल, रक्तातिसार, सूजन, संग्रहणी आदि रोगमे यथाविधिसे अनुपानके साथ प्रयोग करे । अनुपानके विनाभी यह औषधि कार्यसिद्धि करती है ॥ ४७ ॥

बृहन्नायिकाचूर्णम् ।

चित्रकं त्रिफला व्योषं विडंगं जीरकद्वयम् । भल्लातकं यवानी च हिंगुं लवणपंचकम् ॥ गृहधूमं वचा कुष्ठं घनमभ्रकगंधकौ । क्षारत्रयं चाजमोदा पारदं गजपिप्पली ॥ एतेषां चूर्णितं यावत् तावच्छक्राशनस्य च । अभ्यर्च्य नायिकां प्रातर्योगिनीं कामरूपिणीम् ॥ बिडालपदमात्रं तु भक्षयेदस्य गुंजकम् । मन्दाग्निकासदुर्णामप्लीहपाण्डुचिरज्वरान् ॥ प्रमेहशोथविष्टम्भसंग्रहग्रहणीहरः । सर्वातीसारशमनः सर्वशूलविनाशनः॥ आमवातगदोच्छेदी सूतिकातङ्कनाशनः । नैतस्मिन् व्याधयः सन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ काष्ठमप्युदरे तस्य भक्षणाद्याति जीर्णताम् । वार्यन्नं च कषायं च स्नानं पिशितभोजनम् ॥ कांजिकाम्लं सदा पथ्यं दुग्धमीनं तथा दधि । तस्मादसौ सदा सेव्यो गुंजको नायिकाकृतः ॥ ४८ ॥

भाषा-चित्रक, त्रिफला, त्रिकुटा, विडङ्ग, जीरा, काला जीरा,भिलावा, अजवायन, सिंगरफ, पंचलवण, गृहधूम (जाले), वच, कूडा, मोथा, अभ्रक, गन्धक, सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, वनअजवायन, पारा और गजपीपल इन सबका चूर्ण बराबर और इन सबकी बराबर भांगका चूर्ण ले। इसका नाम बृहन्नायिका चूर्ण है। प्रभातको कामरूपिणी योगिनी नायिकाकी पूजा करके यह औषधि सेवन करे। इसकी मात्रा २ तोलेकी है। इससे मन्दाग्नि, खांसी, दुर्णाम, तिल्ली, पाण्डु, पुराना ज्वर, प्रमेह, सूजन, विष्टम्भ, संग्रहणी, सर्व प्रकारका अतिसार,समस्त शूल, आमवात, सूतिकारोग व आतङ्कादि रोगोंका नाश हो जाता है । इस औषधिका सेवन करनेसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुए किसी रोगकी शंका नहीं रहती। अधिक क्या कहे इसके सेवन करनेपर काठ खा लिया जाय तो वहभी उदरमें पच जाय । इस औषधिका सेवन करके पतला भात, कषायस्नान, मांसभक्षण, कांजी, खटाई, दग्धमत्स्य और दही पथ्य करे। यह नायिकाकृत औषधि सदा सेवन करनेके योग्य है ॥४८॥

पंचामृतपर्प्पटी ।

अष्टौ गन्धकतोलका रसदलं लोहं तदर्द्धं शुभं लोहार्द्धं च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तथाभ्रार्द्धकम् । पात्रे लोहमये च मर्द्दनविधौ चूर्णीकृतं चैकदा दर्व्यां वा दरवह्निनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥ रम्भाया लघु चालयेत् पट्टुरियं पंचामृता पर्पटी ख्याता क्षौद्रघृतान्विता प्रतिदिनं गुंजाद्वयं वृद्धितः। लोहे मर्द्दनयोगतः सुविपुलं भक्ष्यक्रिया लौहवत् गुंजाष्टावथवा त्रिकं त्रिगुणितं सप्ताहमेवं विधिः ॥ नानावर्णग्रहण्यामरुचिसमुदये दुष्टदुर्णामकेऽपि छर्द्यां दीर्घातिसारे जरभवकलिते रक्तपित्ते क्षयेऽपि । वृष्याणां वृष्यराज्ञी वलिपलितहरा नेत्ररोगैकहंत्री तुल्यं दीप्तिस्थिराग्निं पुनरपि नवकं रोगिदेहं करोति॥४९॥

भाषा-८ तोले गन्धक, पारा ४ तोले, लोहभस्म २ तोले, अभ्रक १ तोला, ताम्रभस्म आधा तोला इन सबका एकत्र चूर्ण कर लोहेके पात्रमे खरल करके फिर लोहेकी कढाईमे मन्दाग्निसे पाक करे। पर्पटीकी समान पाककालमे धीरे २ चलाता जाय। इसकोही पंचामृतपर्पटी कहते हैं। प्रतिदिन सहद और घृतके साथ २ रत्ती इस औषधिका सेवन करे। प्रतिदिन दो रत्ती बढाकर सेवन करे। लोहेके

पात्रमें घुटनेके कारण लोहेका मेल होनेसे इसकी सेवनक्रियाभी लोहवत् हो जाती है। प्रतिदिन दो रत्ती बढाकर आठ रत्तीतक बढावे। इस प्रकार ३ सप्ताहतक सेवन करना चाहिये। इस औषधिसे अनेक प्रकारकी संग्रहणी, अरुचि, दुर्णाम, वमन, ज्वरयुक्त पुराना अतिसार, रक्तपित्त, क्षय आदि रोग दूर होते हैं। वृष्य औषधियोंमें यह सबसे श्रेष्ठ है। इससे वलीपलितादिका नाश होकर नेत्ररोग दूर होते हैं। इससे रोगीको जठराग्नि प्रदीप्त होकर पहलेकी समान स्थिरभाव धारण करती है और रोगीकी देह फिर नईसी हो जाती है॥ ४९॥

स्वल्पनायिकाचूर्णम्।

त्रिशाणं पंचलवणं प्रत्येकं त्र्यूषणं पिचुः। गन्धकान्मापकानष्टौ चतुरो मापकान् रसात्॥ इन्द्राशनात् पलं शाणत्रितयाधिकमिष्यते। खादेन्मिश्रीकृताच्छाणमनुपेयं च कांजिकम्॥ माषकादिक्रमेणैवमनुयोज्यं रसायनम्। अत्यन्ताग्निकरं चात्र भोजनं सर्वकामिकम्॥ प्रसिद्धयोगिनीनारीप्रोक्तं चूर्णं रसायनम्॥ ५०॥

भाषा-पंचलवण प्रत्येक लवण तीन शाण, त्रिकुटा प्रत्येक २ तोले, ८ मासे गन्धक, ४ मासे पारा, भांगका चूर्ण तीन शाण एक पल इन सबको साथ मिला ले। इसकाही नाम स्वल्पनायिका चूर्ण है। कांजीके सहित इसको सेवन करना चाहिये। एक माससे आरम्भ करके क्रमसे मात्राको बढावे। यह औषधि अत्यन्त अग्निवर्धक है। इसको सेवन करके इच्छानुसार पथ्य करे। प्रसिद्धयोगिनी नारीने यह रसायनश्रेष्ठ चूर्ण कहा है॥ ५०॥

हंसपोटलीरसः।

दग्धान् कपर्दकान् पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंकणं विषम्। गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः॥ मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु। निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम्॥ ५१॥

भाषा-कपर्दकभस्म, त्रिकुटा, सुहागा, विष, गन्धक और शुद्ध पारा इन सबको बराबर लेकर जंबीरीके रसमें मर्दन करे। एक मासा इस औषधिका सेवन किया जाय। इसको सेवन करके घृतमिश्रित मिरचका चूर्ण चाटे। इससे संग्रहणीका नाश हो जाता है। इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमें तक्र और भात पथ्य करे। इसका नाम हंसपोटली रस है॥ ५१॥

ग्रहणीकवाटो रसः ।

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकाः । द्विभागो गंधकः सूतस्त्रिभागो मर्द्दयेदिमान् ॥ कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगशृङ्गे ततः क्षिपेत् । पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्द्दयेत् ॥ बलारसैः सप्तवारानपामार्गरसैस्त्रिधा । लोध्रप्रतिविषामुस्तधातकीन्द्रयवामृताः ॥ प्रत्येकमेतत्स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा । माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा ॥ हन्यात्सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि । कवाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपकः ८२॥

भाषा–चांदीकी भस्म, मोतीकी भस्म, सुवर्णभस्म, लोहभस्म इन सबको एक२ भाग ले, गन्धक २ भाग, पारा ३ भाग, सबको एकत्र करके कैथके रसमें गाढ खरल करे । फिर इस द्रव्यको हिरनके सींगमें भरकर मध्य पुट देकर निकाले फिर मर्द्दन करके खेरंटीके रसमें ७ वार भावना दे । फिर चिरचिटेके रसमें तीन वार, लोधके रसमें तीन वार, अतीसके रसमें तीन वार, मोथाके रसमें तीन वार, धायफूलके रसमें तीन वार, इन्द्रजौके रसमें तीन वार और गिलोयके रसमें तीन वार भावना देवे । इसका नाम ग्रहणीकवाट रस है । सहद और मिरचचूर्णके साथ इस औषधिको एक मासा सेवन करे । इसीसे सर्व प्रकारके अतिसार और समस्त ग्रहणीरोग ध्वंस होते हैं । इससे अग्नि दीप्त होती है ॥ ८२ ॥

ग्रहणीवज्रकवाटो रसः ।

मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटङ्कणम् । अग्निमन्थं वचां कुर्यात् सूततुल्यानिमान् सुधीः ॥ ततो जयन्तीजम्बीरभृङ्गद्रावैर्विमर्द्दयेत् । त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ॥ लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत् । अधो वह्निं शनैः कुर्यात् यामार्द्धं तत उद्धरेत् ॥ रसतुल्यामतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा । कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत् सप्तधा पृथक् ॥ धातकीन्द्रयवामुस्तालोध्रप्रतिविषामृताः । एतद्द्रवैर्भावयित्वा दिनैकं च विशोषयेत् ॥ रसं वज्रकवाटाख्यं माषैकं मधुना लिहेत् । वह्नि शुण्ठी बिडं बिल्वं सैन्धवं चूर्णयेत्समम् ॥ पिबेदुष्णाम्बुना वानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥ ८३ ॥

भाषा-पाराभस्म, अभ्रक, गन्धक, जवाखार, सुहागा, गनियारी इन सबको बराबर लेकर तीन दिन क्रमानुसार जयंती, जंबीरी और भांगरेके रसमें मर्द्दन करके गोला बनाय सुखावे । फिर लोहेके पात्रमें रखके ऊपर शरावको ढककर धीरे २ मृदु अग्निसे आधे प्रहरतक आंच दे । फिर उतारकर पारेके बराबर अतीस और मोचरस डालकर कैथके रसमें ७ वार और भंगके रसमें ७ वार भावना दे । फिर धायफूल, इन्द्रजौ, मोथा, लोध, अतीस, गिलोय इन सबके रसमें एक दिन खरल करके सुखा ले । इसका नाम ग्रहणीवज्रकवाट रस है । सहदके साथ इस औषधिको एक मासा मिलायकर लेहन करे । इसको सेवन करके चित्रकमूल, सोंठ, बिडनोन, बेलसोंठ और सेंधा बराबर चूर्ण करके गरम जलके साथ पान करे । इस औषधिसे सर्व प्रकारकी संग्रहणीका नाश हो जाता है ॥५३॥

गगनसुन्दरो रसः ।

रसगंधाभ्रकाणां च भागानेकद्विकाष्टवान् । संचूर्ण्य सर्वरोगेषु युञ्ज्याद्वल्लचतुष्टयम् ॥ ग्रहणीक्षयगुल्मार्शोमेहधातुगतज्वरान् । निहन्ति सूतराजोऽयं मंडलैकस्य सेवया ॥ ५४ ॥

भाषा-१ भाग पारा, २ भाग गन्धक, आठ भाग अभ्रक इन सबको चूर्ण करके मिला ले । इसका नाम गगनसुन्दर रस है । सब रोगोंमे यह औषधि ४ वल्ल देनी चाहिये । इससे संग्रहणी, क्षय, गुल्म, बवासीर, मेह और धातुगतज्वर आदि रोगोंका नाश हो जाता है ॥ ५४ ॥

पूर्णचन्द्रो रसः ।

सूतं गन्धं चाश्वगन्धां गुडूचीं यष्टीतोयैर्मर्द्दयेदेकघस्रम् । क्षुद्रं शंखं मौक्तिकं लौहकिट्टं भस्मीभूतं सूततुल्यं च दद्यात् ॥ भूकूष्माण्डैर्वासरं तद्विमर्द्य गोलं कृत्वा भूधरे तं पुटेत्तु । चूर्णं कृत्वा नागवल्लीरसेन दद्यादेवं मर्द्दयित्वैकयामम् ॥ मध्वाज्याभ्यां पूर्णचंद्रो रसेन्द्रः पुष्टिं वीर्यं दीपनं चैव कुर्यात् । प्रायो योज्यः पित्तरोगे ग्रहण्यामर्शोरोगे पित्तजे घोलयुक्तः ॥ स्त्रीणां रोगे शाल्मलीनीरयुक्तं मात्रामानं कालदेशं विभज्य ॥ ५५ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, असगन्ध और गिलोय इन सब द्रव्योंको बराबर लेकर मुलहठीके काढेमें एक दिन घोटे । इसमे पारेकी बराबर शंखभस्म, मुक्ताभस्म और मंडूरभस्म डाले । फिर पेठेके रसमे एक दिन घोट गोला बनाय भूधरयंत्रमें

पुट दे। फिर उसको चूर्ण करके पानके रसके साथ एक प्रहर घोटकर रोगीपर प्रयोग करे। सहद और घृत इसका अनुपान है। इसका नाम पूर्णचन्द्र रस है। इससे पुष्टि बढती है, वीर्य बढता है और अग्नि प्रदीप्त होती है। पित्तजग्रहणी और पित्तजअर्शरोगमें यह औषधि मट्ठेके साथ प्रयोग करे। और नारीरोगमें शाल्मली (सेंवर) रसके साथ प्रयोग करे देशकालका विचार करके औषधिकी मात्राका निरूपण करना चाहिये ॥ ५५ ॥

त्रिसुन्दरो रसः।

शुद्धसूतं मृतं चाभ्रं गन्धकं मर्दयेत्समम्। लोहपात्रे घृताभ्यक्ते क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ चालयेल्लोहदंडेन अवतार्य विभावयेत्। त्रिदिनं जीरकक्वाथैर्माषैकं भक्षयेत्सदा ॥ ग्रहणी शान्तिमायाति सर्वोपद्रवसंयुता ॥ ५६ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, मारिताभ्रक और गन्धक बराबर लेकर घृतयुक्त लोहपात्रमे रखके कुछ देरतक मन्दी आंचपर पाक करे। पाकके समय लोहेके दंडसे बराबर चलाता जाय। पाक समाप्त हो जानेपर उतारकर जीरेके क्राथमें ३ दिन भावना दे। इसका नाम त्रिसुन्दर रस है। इस औषधिको एक मासा सेवन करे। इससे समस्त उपद्रवोंके साथ संग्रहणीरोग शान्त हो जाता है ॥ ५६ ॥

मध्यनायिकाचूर्णम्।

कर्षं गन्धकमर्द्धपारदयुतं कुर्याच्छुभां कज्जलीं द्व्यक्षांशं त्रिकटोश्च पंचलवणात्सार्धं च कर्षं पृथक्। सार्द्धाक्षं द्विपलं विचूर्ण्य मसृणं शक्राशनान्मिश्रितात् खादेच्छाणमतोऽनु कांजिकपलं मन्दाग्निसंदीपनम् ॥ स्वेच्छाभोजनतो रसायनमिदं घूर्णादिकोपद्रवे पेयं चात्र तु कांजिकं वदति सा नारी महायोगिनी। त्रीन् दोषान् ज्वरकुष्ठपांडुजठरातीसारकासक्षयप्लीहार्शोग्रहणीर्जयेन्मतिबलस्मृत्यायुरोजःप्रदम् ॥ ५७ ॥

भाषा-पहले एक कर्ष अर्थात् २ तोले गन्धक और तिससे आधा अर्थात् एक तोला पारा लेकर कज्जली बनावे। फिर दो अक्ष अर्थात् ४ तोले सोठका चूर्ण, ४ तोले पिप्पलीचूर्ण, ४ तोले मिरचचूर्ण, पंचलवण प्रत्येक ३ तोले और भांगका चूर्ण ९ तोले मिला ले इसका नाम मध्यनायिका चूर्ण है। एक मासा परिमाण इस औषधिका सेवन करे। एक पल कांजी इसका अनुपान है। इससे

मन्दाग्निका उद्दीपन होता है । इस औषधिका सेवन करनेके पीछे इच्छानुसार भोजन करे । महायोगिनी नायिकाने इस औषधिको कहा है । योगिनी कह गई है कि घूरणादि उपद्रवमें इसको सेवन करनेके पीछे कांजीपान करे । इससे त्रिदोष, ज्वर, कोढ, पाण्डु, उदररोग, अतीसार, खांसी, क्षय, तिल्ली, ववासीर और संग्रहणीका नाश होता है और वुद्धि, वल, स्मृति, शक्ति, आयु और तेज वढ जाता है ॥ ९७ ॥

रसपर्पटिका ।

गन्धेशकज्जलीं लौहे द्रुतां वा दरवह्निना । गोमयोपरि विन्यस्तकदलीदलपातनात् ॥ कुर्यात्पर्पटिकाकारामस्य रक्तिद्वयं क्रमात् । दशकृष्णलकं यावत्प्रयोगः प्रहरार्द्धतः ॥ तदूर्ध्वं वहु पूगस्य भक्षणं दिवसे पुनः। तृतीय एव मांसाज्यदुग्धान्यत्र विधीयते ॥ वर्ज्यं विदाहिस्त्रीरम्भामूलं तैलं च सार्षपम् । ग्रहणीक्षयतृष्णार्शःशोथाजीर्णादिनाशिनी ॥ ९८ ॥

भाषा–पारा और गन्धक वरावर ले कज्जली करके लोहेके पात्रमें रखके मन्दी अग्निके तापसे गलावे फिर एक केलेका पत्ता गोवरके ऊपर विछाय तिसपर उस गले हुए द्रव्यको डालकर तिसके ऊपर दूसरा केलेका पत्ता दाव दे, पर्पटी हो जायगी । इसका नाम रसपर्पटिका है । इसकी मात्रा दो रत्तीसे आरम्भ करके क्रमसे १० गुंजातक वढावे । आधे प्रहरके अन्तरसे एक २ मात्रा सेवन करे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे सुपारी भक्षण करे । दो दिनके पीछे तीसरे दिनसे मांस, घृत और दुग्ध सेवन करे । इस औषधिका सेवन करके विदाही द्रव्य, नारीगमन, कदलीकंद और सरसोंका तेल छोड दे । यह औषधि गृहणी, क्षय, प्यास, ववासीर, सूजन और अजीर्णादिका नाश करती है ॥ ९८ ॥

कनकसुन्दरो रसः ।

हिंगुलं मरिचं गंधं पिप्पलीं टङ्कणं विषम् । कनकस्य च बीजानि समांशं विजयाद्रवैः ॥ मर्दयेद्याममात्रं तु चणमात्रा वटी कृता । भक्षणात् ग्रहणीं हन्ति रसः कनकसुन्दरः ॥ अग्निमांद्यं ज्वरं तीव्रमतीसारं च नाशयेत् । दध्यन्नं दापयेत् पथ्यं महातक्रौदनं चरेत् ॥ ९९ ॥

भाषा–सिंगरफ, मिरच, गन्धक, पीपल, सुहागा, विष और धतूरेके वीज वरावर लेकर भांगके पत्तोंके रसमें एक प्रहरतक घोटकर चनेकी वरावर गोलियां

बनावे । इस कनकसुन्दर नामक रसके सेवन करनेसे संग्रहणी, मन्दाग्नि, ज्वर और तीव्र अतिसारका नाश हो जाता है। इसको सेवन करनेके अन्तमें दही, मट्ठा और चावल पथ्य करे ॥ ५९ ॥

विजयभैरवो रसः ।

सूतकं गन्धकं लोहं विषं चित्रकपत्रकम् । विडङ्गरेणुकामुस्तमेलाग्रन्थिककेशरम् ॥ फलत्रयं त्रिकटुकं शुल्बभस्म तथैव च । एतानि समभागानि द्विगुणो दीयते गुडः ॥ कासे श्वासे क्षये गुल्मे प्रमेहे विषमज्वरे । लूतायां ग्रहणीमान्द्ये शूले पांड्वामये तथा ॥ हस्तपादादिरोगेषु गुटिकेयं प्रशस्यते ॥ ६० ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लौह, विष, चित्रक, तेजपात, वायविडङ्ग, रेणुका, मोथा, इलायची, गठीला, नागकेशर, त्रिफला, त्रिकुटा और ताम्रभस्म इन सबको बराबर लेकर इनके साथ सब सामग्रीसे दूना गुड मिलावे । भली भांतिसे मिल जानेपर गुटिका बनावे । इसका नाम विजयभैरव रस है । यह खांसी, दमा, क्षयी, गुल्म, प्रमेह, विषमज्वर, मकरीका फलना, संग्रहणी, मन्दाग्नि, शूल, पाण्डु और हाथ पांव आदिके रोगमें हितकारी है ॥ ६० ॥

कणाद्यचूर्णम् ।

कणानागरपाठाभिस्त्रिवर्गद्वितयेन च । बिल्वचन्दनह्रीबेरैः सर्वातीसारनुन्मतः ॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तामपि हन्ति प्रवाहिकाम् । नानेन सदृशो लेहो विद्यते ग्रहणीहरः ॥ ६१ ॥

भाषा-पीपल, सोंठ, आकनादि, त्रिवर्गद्वितीय अर्थात् त्रिफला और त्रिमद (मोथा, चीता, वायविडङ्ग), बेलसोंठ, लाल चन्दन, सुगन्धि वाला इन सबके बराबर लेकर चूर्ण करके इसके साथ सबकी बराबर लौह मिलावे । इसका नाम कणाद्यचूर्ण है । यह सर्व प्रकारके उपद्रवोंके साथ प्रवाहिक रोगका नाश करता है । इसकी समान संग्रहणीका नाश करनेवाला दूसरा लौह नहीं है ॥ ६१ ॥

अग्निमुखलोहम् ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डितिकाजटाः । प्रत्येकशोऽष्टपलिकान् जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ पलद्वयं विडङ्गस्य व्योषात् कर्षत्रयं पृथक् । त्रिफलायाः पलान् पंच शिलाजतु पलं न्यसेत् ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि वैकङ्कतहतस्य वा । पलद्वाद-

शकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्णितम् ॥ पलैश्चतुर्विंशत्याज्यात् मधुशर्करयोरपि । घनीभूते सुशीतेऽपि दापयेदवदारिते ॥ एतदग्निमुखं नाम दुर्णामान्तकरं परम् । मन्दमग्निं करोत्येप कालभास्करतेजसम् ॥ पर्वता अपि जीर्यन्ति प्राशनादस्य देहिनाम् । गुरुवृष्यान्नपानादिपयोमांसरसो हितः ॥ दुर्णामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम् । न स रोगोऽस्ति यं वापि न निहन्यात् क्षणादिदम् ॥ करीरकांजिकादीनि वर्जयेत्तु प्रयत्नतः । स्रवत्यतोऽन्यथा लोहे देहे किट्टं प्रजायते ॥ जटामूलं अजटेति पाठे भूम्यामलकीक्काथस्त्वष्टभागावशेषतः विडङ्गादिप्रक्षेपचूर्णम् । रुक्मलौहं कान्तलौहं कान्तलोहव्यतिरिक्तमधुशर्करयोर्मिलित्वा चतुर्विंशतिपलानि । सर्वा क्रिया अमृतसारवत् ६२

भाषा– ८ पल निसोथ, ८ पल चीतेकी छाल, ८ पल संभालूकी छाल, ८ पल थूहरकी मूल, ८ पल गोरखमुण्डी इन सवको एकत्र करके ६४ सेर जलमें सिद्ध करे, जव आठ सेर जल रह जाय तव उतार ले । फिर दो पल वायविडङ्गका चूर्ण, त्रिकुटाका चूर्ण प्रत्येक औपधि ३ पल, त्रिफलाचूर्ण प्रत्येक औषधि ५ पल, शिलाजीतका चूर्ण एक पल, १२ पल शुद्ध कान्तलौहचूर्ण, १२ पल शहद और १२ पल चीनी संग्रह कर रखे । फिर अमृतसारकी नाईं रीतिके अनुसार औषधिको आंच दे । घनी और शीतल होनेपर उतारकर नियमपूर्वक इन सव चूर्णोंका प्रक्षेप करे । अर्थात् एक लोहके पात्रमें घीको गरम करके तिसमें पहले कहा हुआ १२ पल कान्तलौहचूर्ण और तैयार किया हुआ क्काथ डालकर पाक करे । जव देखे कि घना हो गया है तव उतारकर ऊपर कहा हुआ दो पल विडङ्गचूर्ण, ९ पल त्रिकुटाचूर्ण (प्रत्येक औषधि ३ पल), १५ पल त्रिफलाचूर्ण (प्रत्येक औपधि ५ पल) और १ पल शिलाजीतका चूर्ण मिलावे । शीतल होनेपर १२ पल शहद और १२ पल चीनी डाले । इसका नाम अग्निमुखलौह है । इससे दुर्णामा रोग शान्त होता है । इसके प्रसादसे मन्दाग्नि, प्रलयकालीन सूर्यके समान तेजवान् हो जाती है । इस औषधिका सेवन करके पर्वत भोजन करे तो वहभी जीर्ण हो जाय । इस औषधिको सेवन करके गुरु और वृष्य अन्न पानादि, दुग्ध और मासका जूस पथ्य करे । इससे दुर्णामा, पाण्डु, सूजन, कोढ, तिल्ली और उदरामयका नाश हो जाता है । ऐसा रोग दिखाई नही देता जो इस औष-

धिसे क्षणमें दूर न हो सके। इसका सेवन करके वंशकरीर और कांजिकादि यत्नसे छोड दे, नहीं तो यह लौह देहसे फूट निकलता है[1] ॥ ६२ ॥

पीयूषसिन्धुरसः।

शुद्धं सूतं षड्गुणं जीर्णगन्धं काचे पात्रे वालुकायन्त्रयोगात्।
भस्मीकृत्य योजयेदत्र हेम तत्तुल्यांशं भस्मलौहाभ्रयोश्च॥
सूतातुल्यं गन्धकं मेलयित्वा खल्वे मर्द्यं शूरणस्य द्रवेण।
दन्ती मुण्डी काकमाची हलाख्या भृङ्गार्काग्नि सप्त चैषां रसेन॥
क्षिप्त्वा पश्चाद्धान्यराशौ त्रिघस्रं चूर्णीकृत्य माषमात्रं ददीत।
अर्शोरोगे दारुणे च ग्रहण्यां शूले पाण्डावम्लपित्ते क्षये च॥
श्रेष्ठं क्षौद्रं चानुपानं प्रशस्तं रोगोक्तं वा मासषट्कप्रयोगात्।
सर्वे रोगा यान्ति नाशं जरायां वर्षद्वन्द्वं सेवनीयं प्रयत्नात्॥
पथ्यं दद्यादम्लतैलादियोषिद्वर्ज्यं देयं सर्वरोगप्रशान्त्यै। पुष्टिं कान्तिं वीर्यवृद्धिं सुदाढ्यां सेवायुक्तो मानवः संलभेत॥ ६३ ॥

भाषा–जितना पारा हो उससे छः गुण जीर्ण गन्धक लेकर एक कांचकी शीशीमे भरे। फिर उसको वालुकायंत्रमे करके जारण करे। अनन्तर इसके साथ पारेकी बराबर सुवर्ण, लौह, अभ्रक और गन्धक मिलाकर जिमीकन्दके रसमें पीसे, फिर दन्तीके रसमे सात वार, गोरखमुण्डीके रसम सात वार, मकोयके रसमे सात वार, मद्यमे सात वार, आकके रसमें सात वार, भांगराके रसमे सात वार और चित्रकके रसमे सात वार, पीसकर धान्यके ढेरमें रख दे। तीन दिन बीतनेपर निकालकर चूर्ण कर ले फिर औषधिका प्रयोग करे। इसका नाम पीयूषसिन्धु रस है। शहदके अनुपानके साथ एक मासा इस औषधिको रोगमे प्रयोग करे। यह दारुण बवासीर, शूल, पाण्ड, अम्लपित्त और क्षयरोगमें प्रयोग करे। छः मासतक इस औषधिका सेवन करनेसे ये रोग जाते रहते हैं। दो वर्षतक यत्नके साथ सेवन करनेसे जरा दूर होती है। इस औषधिका सेवन करनेके अन्तमें खटाई और तैलादिका पथ्य करे। इसको सेवन करके नारीसंग छोड दे। सब रोगोंकी शांतिके लिये इसका प्रयोग करे। नियमित शुश्रूषाके अधीन रहनेसे रोगी इस औषधिके प्रसाद करके पुष्टि, कान्ति और दृढ वीर्यको प्राप्त करता है॥ ६३ ॥

---

१ "त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डितिकाजटाः।" यहा मूलमे जो जटा शब्द है, तिसका अर्थ वैद्यगण "मूल" का करके निसोथ आदिकी जड ग्रहण करते है। परन्तु अनेक वैद्य अजटापाठ करके तिसके अर्थसे भुईआमला ग्रहण करते है।

षडाननरसः ।

वैक्रान्तताम्राभ्रकगंधकानां रसस्य कान्तस्य समानभागः ।
चूर्णं भवेत्तेन षडाननोऽयं अर्शोविनाशाय च वल्लमात्रम् ॥ ६४ ॥

भाषा—वैक्रान्त, ताम्र, अभ्रक, गन्धक, पारा, कान्तलोह इन सबकी भस्म बराबर लेकर चूर्ण करे । इसका नाम षडाननरस है । इससे अर्शरोग नाशको प्राप्त होता है । इसकी मात्रा एक वल्ल है ॥ ६४ ॥

अर्शःकुठारो रसः ।

मृतं ताम्रं मृतं लौहं प्रत्येकं च पलत्रयम् । त्र्यूषणं लाङ्गली दन्ती चित्रकं पिलुकं तथा ॥ प्रत्येकं द्विपलं योज्यं यवक्षारं च टङ्कणम् । उभौ पंचपलौ योऽयौ सैन्धवं पलपंचकम् ॥ द्वात्रिंशत्पलगोमूत्रं स्नुहीक्षीरं च तत्समम् । मृद्वग्निना पचेत्सर्वं स्थाल्यां यावत्सुपिंडितम् ॥ माषद्वयं सदा खादेत् रसो ह्यर्शः-कुठारकः ॥ ६५ ॥

भाषा—तीन पल मृतकताम्र, ३ पल मृतक लोह, २ पल त्रिकुटा, २ पल कालिहारी, २ पल दन्ती, २ पल पीलू, ५ पल जवाखार, ५ पल सुहागा, ५ पल सेंधा इन सबको एकत्र करके ३२ पल गोमूत्र और ३२ पल थूहरके दूधमें मन्दी आंचसे पाक करे । जबतक औषधिका पिण्ड न हो जाय तबतक पाक करे । जब पिण्ड हो जाय तो औषधि ग्रहण करे । इसका नाम अर्शःकुठार रस है । इस औषधिको दो मासे सेवन करे ॥ ६५ ॥

भल्लातकलौहः ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकामृता । हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरकाः ॥ एषां चतुःपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत् । भल्लातकसहस्रे द्वे छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ॥ तेन पादावशेषेण लौहपात्रे पचेद्भिषक् । तुलार्द्धं तीक्ष्णलौहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ त्र्यूषणं त्रिफला वह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् । सौवर्चलं विडङ्गानि पलिकांशानि दापयेत् ॥ कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च । शूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिःक्षिपेत् ॥ सिद्धशीते प्रदातव्यं मधुनः कुडव-

द्वयम्। प्रातर्भोजनकाले वा ततः खादेद्यथाबलम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगमरोचकम् । कृमिगुल्माश्मरीमेहान् शूलं चास्य व्यपोहति ॥ करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम्। रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ६६ ॥

भाषा-४ पल चित्रकमूल, ४ पल त्रिफला, ४ पल मोथा, ४ पल गठीला, ४ पल चव्य, ४ पल गिलोय, ४ पल गजपीपल, ४ पल चिरचिटेकी जड, ४ पल दण्डोत्पल, ४ पल जङ्गली तुलसी इन सबको एकत्र कर ६४ सेर जलमें पाक करे। पाकके समय २ सहस्र भिलावे तिसमें डाले। लौहपात्रमें पाक करना चाहिये। जब १६ सेर रह जाय तब उस क्वाथको उतार ले फिर एक लोहेके पात्रमें २ कुडव घी गरम करके तिसमें तुलार्ध अर्थात् पञ्चाशत् पल तीक्ष्ण लोहचूर्ण डालकर इस क्वाथमे पाक करे। जब पाक समाप्त होनेपर आ जावे अर्थात् घना दिखाई दे तब उसमें एक पल त्रिकुटाचूर्ण, १ पल त्रिफलाचूर्ण, १ पल चित्रकचूर्ण, १ पल सैंधवचूर्ण, १ पल रेगमाचूर्ण, १ पल विरियासंचर (नमक) चूर्ण, १ पल उद्भिद्लवणचूर्ण, एक पल सौवर्चलचूर्ण, एक पल वायविडङ्गचूर्ण, विधायरेके बीजोंका चूर्ण एक कुडव, विधायरेकी बराबर तालमूलीका चूर्ण और ८ पल जिमीकन्दका चूर्ण डाले। पाक सिद्ध होनेपर जब शीतल हो जाय तो २ कुडव शहद मिला लेना चाहिये। इसका नाम भल्लातकलोह है। प्रातःकाल अथवा भोजनके समय बलाबल विचार कर जिसके अनुसार मात्रासे इस औषधिको सेवन करे। इससे बवासीर, संग्रहणी, पाण्डु, अरुचि, कृमि, गोला, पथरी, मेह और शूलरोगका नाश होता है। सब रोगका नाश करनेवाली यह औषधि रसायनश्रेष्ठ कही गई है। यह वीर्यको बढाती है। बलीपलितादिका नाश करती है ॥ ६६ ॥

नित्योदितरसः।

मृतसूतार्कलौहाभ्रविषं गन्धं समं समम्। सर्वतुल्यं च भल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥ द्रवैः शूरणकन्दोत्थैः खल्वे मर्द्यं दिनत्रयम्। माषमात्रं लिहेदाज्यैः रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥ रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भवकुलान्तकृत् । हस्ते पादे मुखे नाभौ गुदे वृषणयोस्तथा ॥ शोथो हृत्पार्श्वशूलं च यस्यासाध्योऽर्शसो हि सः। असाध्यस्यापि कर्त्तव्या चिकित्सा शंकरोदिता६७

१ ३२ तोला, कोई २ दो सेर और कोई आध सेर ग्रहण करते हैं।

भाषा-मृतक पारद, ताम्र, लोह, अभ्रक, विष और गन्धक इन सबको बराबर लेकर जितने ये सब द्रव्य हों उतने मिलावे ले। इन सब चीजोंको ग्रहण करके एकसङ्ग मर्दन करके जिमीकन्द और मानकन्दके रसमें ३ दिनतक भावना दे। इसका नाम नित्योदित रस है इस औषधिको एक मासा ले घीमें मिलाकर चाटे। इससे बवासीर, समस्त गुह्यरोग, हृदय, बगलका दर्द नष्ट होता है और हाथ, पांव, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोष इन अंगोंकी सूजनका नाश होता है। असाध्य बवासीरभी इससे जाती रहती है। महादेवजीने कहा है कि इससे असाध्यरोगकी चिकित्साभी हो जाती है ॥ ६७ ॥

चक्रबद्धरसः ।

दिनत्रयं गन्धसमं रसेन्द्रं विमर्दयेत् श्वेतवसुद्रवेण ।
ताम्रस्य चक्रेण निबध्य वह्निहरीतकीभृंगरसैर्विमर्द्य ॥
कटुत्रयेणास्य ददीत गुंजाद्वयं मरुत्पायुरुजःप्रशान्त्यै ॥ ६८ ॥

भाषा-गन्धक और पारा बराबर लेकर एक साथ सफेद सांठके रसमे तीन दिन खरल करे। फिर तिसमे तांबेकी भस्म डालकर चित्रक, हरीतकी, भांगरा और त्रिकुटा इन सबके रसमें ३ दिन खरल करे। इसका नाम चक्रबन्ध रस है। इस औषधिकी मात्रा २ रत्ती है। यह औषधि वातकी बवासीरको दूर करती है ॥६८॥

चंद्रप्रभागुटिका ।

कृमिरिपुदहनव्योषत्रिफलामरुदारुचव्यभूनिंबम् । मागधिमूलं मुस्तं सशठीवचं माक्षिकं चैव ॥ लवणक्षारनिशायुगकुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः । कर्षांशिकान्येव समानि कुर्यात् पलाष्टकं चाम्लजतोर्विदध्यात् ॥ निष्पत्रशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव । सिताचतुष्कं पलमत्र वांश्या निकुम्भकुम्भत्रिसुगंधियुक्तम् ॥ चंद्रप्रभेयं गुटिका प्रयोज्या अर्शांसि निर्णाशयते षडेव । भगन्दरं पांडुककामलाश्च निर्णष्टवह्नेः कुरुते च दीप्तिम् ॥ हन्त्यामयान् पित्तकफानिलोत्थान् नाडीगते मर्मगते व्रणे च । ग्रन्थ्यर्बुदे विद्रधिराजयक्ष्मणि मेहे भगाख्ये प्रबले च योज्या ॥ शुक्रक्षये चाश्मरिमूत्रकृच्छे शुक्रप्रवाहेऽप्युदरामये च । भक्तस्य पूर्वं सततं प्रयोज्या तक्रानुपानं त्वथ म-

स्तुपानम् ॥ आजो रसो जांगलजो रसो वा पयोऽथ वा शीतजलानुपानम् । बलेन नागस्तुरगो जवेन दृष्ट्या सुपर्णः श्रवणे वराहः ॥ शुक्रदोषान् निहन्त्यष्टौ प्रमेहानपि विंशतिम् । वलीपलितनिर्म्मुक्तो वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ न पानभोज्यं परिहार्यमस्ति न शीतवातातपमैथुनेषु । शम्भुं समभ्यर्च्य कृतप्रसादेनाप्ता गुटी चंद्रमसा प्रसादात् ॥ अत्र माक्षिकं स्वर्णमाक्षिकम् युगशब्दस्य त्रिष्वेव सम्बन्धः । तेन सैन्धवसौवर्चले यवक्षारसर्जिकाक्षारौ हरिद्रादारुहरिद्रे । किञ्च दशमूलक्वाथे चतुर्गुणे उष्णे पत्रादिरहितनिरवकरगुग्गुलुं प्रक्षिप्यालोड्य वस्त्रपूतं विधाय प्रचंडातपे विशोष्य पिण्डितगुग्गुलोः पलद्वयम् । सिताचतुष्कमिति पलचतुष्कम् । निकुम्भो दन्ती कुम्भस्त्रिवृता एतयोः प्रत्येकं पलमेकम् । छायाशुष्कवटी कार्या ॥ ६९ ॥

भाषा-विडङ्ग, चित्रककी जड, त्रिकुटा, त्रिफला, देवदारु, चव्य, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, शठी, वच, सोनामक्खी, सेंधा, विरियासंचरनोन, जवाखार, सज्जीखार, हलदी, दारुहलदी, धनिया, गजपीपल और अतीस इन सबको दो तोला ले । शिलाजीत ८ पल, शुद्ध गूगल २ पल, लोहचूर्ण २ पल, शर्करा ४ पल और एक २ पल वंशलोचन, दन्तीमूल, निसोत, गुडत्वक्, तेजपात और इलायची ग्रहण करे । पहले चार गुण दशमूलके क्काथमें पत्रादिशून्य गूगल डालकर चलाता रहे । फिर कपडेमें छानकर तेज धूपमे सुखाय गूगल व शिलाजीत और दूसरे द्रव्योका चूर्ण मिलाकर गोलियां बनावे । छायामे सुखावे । इसका नाम चन्द्रप्रभागुटिका है । यह औषधि छः प्रकारकी बवासीर, भगन्दर, पाण्डु और कामलाका नाश करती है । इससे नष्टाग्नि पुनरुद्दीप्त होती है । वायु, पित्त और कफजात रोगोंको यह दूर कर देती है । नाडीगत और मज्जागत व्रणरोग, ग्रन्थि, अर्बुद, विद्रधि, राजयक्ष्मा, मेह, प्रबल भग्नरोग, शुक्रक्षय, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रप्रवाह और उदरामय इन सब रोगोमे यह औषधि देनी चाहिये । भोजनके पहले इसका सेवन करना चाहिये । इसका अनुपान मट्ठा वा मांड है । इसको सेवन करनेके पीछे छागदुग्ध जङ्गली पशुओंके मांसका जूष वा दुग्ध और शीतल जल सेवन करे । इसका सेवन करनेसे बलमें हाथीकी समान, वेगमे घोडेकी समान, दृष्टिमे गरुडकी समान और श्रवणशक्तिमे शूकरकी

समानता प्राप्त हो जाती है । यह १८ प्रकारके शुक्रदोष और २० प्रकारके प्रमेहका नाश करती है । इसका सेवन करनेसे वृद्धभी वलीपालितसे छूटकर युवाकी समान होता है । इस ओषधिको सेवन करके पानाहार, शीत, वायु, रौद्र और नारी किसीका विचार न करे । देवदेव चन्द्रमाजीने महादेवजीकी उपासना करके उनके प्रसादसे इस औषधिको पाया था ॥ ६९ ॥

अथ भस्मकरोगे योगः ।

त्रिफलामुस्तविडङ्गैः कणया सितया समैः ।
स्यात्खरमञ्जरीबीजैर्लेहो भस्मकनाशनः ॥ ७० ॥

भाषा-त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, पीपल, शर्करा इन सब द्रव्योंको बराबर ले ये सब तोलमें जितने हों उतने अपामार्ग (चिरचिटे) के बीजका चूर्ण करके इन द्रव्योमे मिला चूर्ण करके सेवन करे । इससे भस्मक रोग दूर होता है ॥ ७० ॥

अथाजीर्णरोगे क्रव्यादरसः ।

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिःक्षिपेत् । पारदं पलमानेन मृतशुल्बायसी पुनः॥तेन मानेन संमिश्र्य पंचांगुलदले क्षिपेत्। ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्यायसपात्रके॥चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन ज्वालयेन्मृदुनानलम् । प्रस्थमात्रं रसं सम्यक् जम्बीरस्य प्रयोजयेत् ॥ संचूर्ण्य पंचकोलोत्थैः कषायैः साम्लवेतसैः । भावनाः खलु दातव्याः पंचाशत्प्रमितास्तथा ॥ भृष्टटंकणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् । तदर्द्धं कृष्णलवणं सर्वतुल्यं मरीचकम् ॥ सप्तधा भावयेत् पश्चात् चणकक्षारवारिणा । ततः संशोष्य संपिष्य कूप्यास्तु जठरे क्षिपेत् ॥ अत्यर्थं गुरुमांसानि गुरुभोज्यान्यनेकशः। भक्षित्वा कंठपर्यन्तं चतुर्वल्लमितं रसम् ॥ कद्वम्लतक्रसहितं पिबेत्तदनुपानतः । क्षिप्रं तज्जीर्यते भुक्तं जायते दीपनं पुनः ॥ रसः क्रव्यादनामायं प्रोक्तो मन्थानभैरवैः । सिंहलक्षोणिपालस्य बहुमांसप्रियस्य च ॥ प्रियार्थं कृतवांश्चैव भैरवानन्दयोगिना ॥ कुर्याद्दीपनमग्नेश्च (?) दुष्टामयोच्छोषणं तुन्दस्थौल्यनिवर्हणं गदहरं शूलार्त्तिमूलापहम्। गुल्मप्लीहविनाशनं

लघुभुजां विध्वंसनं स्रंसनं वातग्रन्थिमहोदरापहरणं क्रव्यादनामा रसः ॥ ७१ ॥

भाषा-दो पल शुद्ध गन्धक गलाकर तिसमें एक पल पारा, एक पल ताम्र और एक पल लोहभस्म डाले। फिर इसको चूर्ण करके लोहेके पात्रमें धरकर चूल्हेके ऊपर पर्पटीपाककी समान पाक करे। फिर तिसमें एक प्रस्थ जंभीरीका रस डालकर मन्दी २ आंच दे। जब रस सूख जाय तब औषधिको चूर्ण करके पञ्चकोलके काढे और अमलवेतके काढेमें ५० वार भावना दे ले। फिर सब द्रव्योंकी बराबर सुहागा, सुहागेसे आधा बिडलवण और सबकी बराबर मिरचका चूर्ण मिलाय चनेके क्षारमें अर्थात् चनेके जलमे सात वार भावना दे फिर सुखाय और चूर्ण करके शीशीमे भर रक्खे। इसका नाम क्रव्याद रस है। भारी मांस व और द्रव्य बहुतसे भोजन करके इस औषधिको ४ वल्ल सेवन करे। लवण, खटाई और मठा ये इसके अनुपान हैं। इसको सेवन करनेसे भुक्तद्रव्य शीघ्र जीर्ण होकर फिर अग्नि प्रदीप्त होती है। भगवान् मन्थानभैरव यह क्रव्याद रस कह गये हैं। बहुतसे मांसको खानेसे प्रसन्न होनेवाले सिंहलराजके उपकारार्थ यह औषधि निकाली गई है। इससे मन्दाग्नि दीप्त होती है, दुष्ट आमका नाश होता है, थोंद बढनेका रोग दूर हो जाता है। शूलादि जडसे उखड जाते हैं और गोला, प्लीहा, वात, ग्रन्थि, उदररोग इत्यादि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७१ ॥

मतान्तरम्।

पलं रसस्य द्विपलं बलेः स्यात् शुल्बायसी चार्द्धपलप्रमाणे। संचूर्ण्य सर्वं द्रुतमग्नियोगात् एरण्डपत्रेषु निवेशनीयम् ॥ पिष्ट्वाथ तां पर्पटिकां विधाय लोहस्य पात्रेऽम्बरपूतमस्मिन्। जम्बीरजं पक्वरसं पलानि शतं तलेऽस्याग्निमथाल्पमात्रम्॥जीर्णे रसे भावितमेतदेतैः सुपंचकोलोद्भववारिपूरैः। सेवेत साम्लैः शतमत्र योज्यं चतुष्पलं टंकणजं सुभृष्टम् ॥ बिडं तदर्द्धं मरिचं समं च तत्सप्तधार्द्रं चणकाम्लवारा। क्रव्यादनामा भवति प्रसिद्धो रसस्तु मंथानकभैरवोक्तः ॥ माषद्वयं सैन्धवतक्रपीतमेतस्य धन्यैः खलु भोजनान्ते । गुरूणि मांसानि पयांसि पिष्टकृतानि सेव्यानि फलानि योगात् ॥ मात्रातिरिक्तान्यपि सेवितानि यामद्वयाज्जारयति प्रसिद्धः ॥ ७२ ॥

भाषा-एक पल पारा, २ पल गन्धक, २ तोले ताम्र, २ तोले लोह इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण करके पर्पटीकी समान पाक करे। फिर उसको अरण्डके पत्तेपर डालकर १०० पल जम्बीरीके रसमें पाक करे। मन्द २ आंच देकर पाक करना चाहिये। जब रस मर जाय तब फिर पंचकोलके क्काथमे और अम्लवेतके क्काथमें शत वार भावना दे। फिर ४ पल सुहागा, सुहागेसे आधा बिडनोन, सुहागेकी बराबर काली मिरचका चूर्ण मिलाकर चनेके जलमे ७ वार भावना दे। इसका नाम क्रव्याद रस है। मन्थानभैरवने इसे कहा है। भोजन करनेके पीछे सेंधा और तक्रके अनुपानके साथ इस औषधिको २ मासे सेवन करे। इसको सेवन करनेके अन्तमें भारी मांस, दूध पिष्टक और जल सेवन करे। अत्यन्त भोजन कर ले तोभी इस औषधिके गुणसे दो प्रहरमें जीर्ण हो जायगा ॥ ७२ ॥

कृमिघातिनी गुटिका ।

रसगन्धाजमोदानां कृमिघ्नब्रह्मबीजयोः । एकद्वित्रिचतुःपंच तिन्दोर्बीजस्य षट् क्रमात् ॥ संचूर्ण्य मधुना सर्वं गुटिकां कृमिघातिनीम् । खादेत् पिपासुस्तोयं च मुस्तानां कृमिशान्तये ॥ आखुपर्णीकषायं च पिबेच्चानु सशर्करम् ॥ ७३ ॥

भाषा-१ भाग पारा, २ भाग गन्धक, ३ भाग अजमोद, ४ भाग वायविडङ्ग, ५ भाग इन्द्रजव, ६ भाग तेंदूके बीज इन सब द्रव्योंको एकत्र चूर्ण करके सहदके साथ मिलाय गुटिका बनावे। इसका नाम कृमिघातिनी गुटिका है । कृमिरोगीके इस औषधिके सेवन करे पीछे प्यास लगे तो रोगकी शांतिके लिये मोथेका जल पिये। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे शर्कराके साथ मूषाकर्णीका क्काथ पिये ॥ ७३ ॥

अजीर्णकंटको रसः ।

शुद्धसूतं विषं गंधं समं सर्वं विचूर्णयेत् । मरिचं सर्वतुल्यांशं कण्टकार्याः फलद्रवैः ॥ मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् । वटीं गुंजात्रयं खादेत् सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ अजीर्णकंटकः सोऽयं रसो हन्ति विषूचिकाम् ॥ ७४ ॥

भाषा-पारा, गन्धक और विष बराबर लेकर इन सबकी बराबरका काली मिरचका चूर्ण मिलाय कटेरीके फलके रसमें पीसे। भलीभांतिसे पीस जानेपर तीन तीन चोटलीकी गोलियां बनावे। इसका नाम अजीर्णकण्टक रस है। इससे समस्त अजीर्ण दूर होते हैं और विषूचिकाभी नाश होता है ॥ ७४ ॥

मतान्तरम् ।

गन्धेशटंकाश्चैकैकां विषमत्र त्रिभागिकम् । अष्टभागं तु मरिचं जम्भांभोमर्दितं दिनम्॥तद्वटीं मुद्गमानेन कृताद्रैंण प्रयोजयेत् । शूलारोचकगुल्मेषु विषूच्यां वह्निमान्द्यके ॥ अजीर्णसन्निपातादिशैत्ये जाड्ये शिरोगदे ॥ ७५ ॥

भाषा-एक २ भाग गन्धक, पारा, सुहागा, तीन भाग विष, ८ भाग काली मिरच इन सबको एकत्र करके एक दिन जंबीरीके रसमे खरल करे । मूंगकी समान गोलियां बनावे । अदरकके रसके अनुपानके साथ इसका सेवन करे । शूल, अरुचि, गुल्म, विषूचिका, मंदाग्नि, अजीर्ण, सन्निपातादि, शैत्य और जाड्य व शिरके रोगोमे यह औषधि देनी चाहिये ॥ ७५ ॥

अमृतवटी ।

कुर्याद्गन्धविषव्योषत्रिफलापारदैः समैः ।
भृंगाम्बुमर्दितैर्मुद्गमात्रामृतवटीं शुभाम् ॥
अजीर्णश्लेष्मवातघ्नीं दीपनीं रुचिवर्द्धिनीम् ॥ ७६ ॥

भाषा-गन्धक, विष, त्रिकुटा, त्रिफला, पारा इन सबको समान ले । सबको भांगरेके रसमें घोटकर मूंगके समान गोलियां बनावे । यह अमृतनाम वटी अजीर्ण, कफ, वातको नष्ट करे । जठराग्निको वढावे ॥ ७६ ॥

अग्निकुमारो रसः ।

टङ्कणं रसगन्धौ च समं भागत्रयं विषात् । कपर्दशंखौ त्रिनवौ वसुभागं मरीचकम्॥दिनं जम्भाम्भसा पिष्टं भवेदग्निकुमारकः। विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्ये द्विगुंजकः ॥ अजीर्णे संग्रहण्यां वा प्रयोज्योऽयं निजौषधैः ॥ ७७ ॥

भाषा-सुहागा, पारा, गन्धक, एक २ भाग, तीन भाग विष, तीन भाग कौडीभस्म, ९ भाग शंखभस्म और ८ भाग काली मिरच इन सबको एकत्र करके विहारी नींबूके रसमे एक दिन खरल करे । इसका नाम अग्निकुमार रस है । विषूचिका, शूल, वातादिरोग, मन्दाग्नि, अजीर्ण, संग्रहणी रोगमें यह औषधि देनी चाहिये । इसकी मात्रा दो रत्ती है ॥ ७७ ॥

भस्मामृतः ।

पलैकं मूर्च्छितं सूतं मरिचं हिंगु जीरकम् । प्रतिकर्षं वचा शु-

ण्ठी तत्सर्वमार्कवद्रवैः ॥ दिनं पिष्ट्वा लिहेन्मासं मधुना वह्नि-दीप्तये । कर्षैकं भस्मयेच्चानु दाडिमं नागरं गुडैः ॥ ७८ ॥

भाषा—एक पल मूर्च्छित पारा, एक पल काली मिरच, १५० सिंगरफ, १५० जीरा, एक कर्ष वच, १ कर्ष सोंठ इन सबको एकत्र करके आनके दूधमें एक दिन पीसे । इसका नाम भस्मामृत है । अग्नि प्रदीप्त करनेके लिये इस औषधिको एक मासा लेकर सहदके साथ मिलाकर चाटे । इसको सेवन करे पीछे १ कर्ष दाडिम और एक कर्ष सोठका चूर्ण गुडके साथ मिलाकर खाय ॥ ७८ ॥

मतान्तरम् ।

धान्याभ्रं सूतकं तुल्यं मर्द्दयेन्मारकद्रवैः । दिनैकं तिलकल्केन पटं लिप्त्वाथ वर्त्तिकाम् ॥ कृत्वैव तस्य तैलेन विलिप्य च पुनः पुनः। प्रज्वाल्य तामधः पात्रे सतैलं पारदं पचेत्॥ सदिनं भूधरे पक्वो भस्मीभवति नान्यथा । योजितो रसयोगेशस्तत्तद्रोगहरो भवेत् ॥ मर्द्दनं तप्तखल्वेऽस्य विशेषादग्निकारकः । अत्र प्रक-रणे वक्ष्ये शुद्धसूतस्य मारिकाः ॥ औषधीर्याः समस्ता वा व्यस्ताव्यस्ता दशोत्तराः । योजिता घ्नन्ति देवेशि सूतं गंधं विनापि ताः॥ मेघनादो वज्रवल्ली देवदाली च चित्रकम् । बला शुण्ठी जयन्ती च कर्कोटी तुम्बिका तथा ॥ कटुतुम्बी कन्दर-म्भा कन्दवारणशुण्डिकाः। कोषातक्यमृताकन्दं कन्यका चक्र-मर्द्दकम् ॥ सूर्यावर्त्तः काकमाची गुंजा निर्गुण्डिका तथा । लांगली सहदेवी च गोक्षुरः काकतुम्बिका॥जाती लज्जालुपट्टके हंसपाद्भृङ्गराजकम् । ब्रह्मबीजं च भूधात्री नागवल्ली वरी तथा ॥ स्नुह्यर्कदुग्धं तुलसी धत्तूरो गिरिकर्णिका । गोपाली पटुमेता-भिर्वज्रमूषागतं पचेत् ॥ ग्रावा दग्धास्तुषा दग्धा दग्धा वल्मी-कमृत्तिकाः । लोहकिट्टं च घस्रार्द्धमाजक्षीरेण मर्दयेत् ॥ नृके-शशणसंयुक्ता वज्रमूषा च तत्कृतिः ॥ ७९ ॥

भाषा—बराबर २ पारा और धान्याभ्रक लेकर एक दिन धतूरेके रसमें खरल करे। फिर एक कपडेके टुकडेमें तिलकल्कका लेप करके तिससे बत्ती बनाय अग्नि जलावे ।

उस बत्तीसे जो तेल निकले, तिसके साथ ऊपर कहे हुए पारेको पाक करे। फिर एक दिनतक भूधरयंत्रमे पाक करे। इस प्रकार करनेसे पारा भस्म हो जाता है। फिर उस पारेको तप्त खरलमे पीसे तो अग्नि अधिक बढती है। इस पारेसे अनेक रोग दूर होते हैं। हे देवेशि! गन्धकके सिवाय और जिन २ वस्तुओसे पारा जीर्ण होता है, वहभी यहां कही जाती है। इन कहे हुए समस्त द्रव्योंके संग अथवा दश २ के संग पीसकर अन्ध मूषामे पाक कर ले। वह द्रव्य यथा; वरना, हडसंहारी, वंदाल, त्रिफला, खरेटी, सोठ, जयंती, ककोडा, तोंबी, कडवी तूंबी, कदलीकन्द, जमीकन्द, हाथीशुण्डी, तुरई, गिलोय, गाजर, घीक्कार, चकवड, हुलहुल, मकोय, गुंजा, संभालू, करिहारी, सहदेई, गोखरू, कठूमर, चमेलीके फूल, छुईमुई, छत्री, हंसपदी, भांगरा, ढाकके बीज, भूआंवला, पान, शतावर, थूहर, आकका दूध, तुलसी, धतूरा, कोयल, अपराजिता और छोटे ककोडे। अब घडिया बनानेकी रीति कही जाती है। जला हुआ सफेद पत्थर, जला हुआ तुष, वमईकी मिट्टी और मण्डूर इन सब द्रव्योंको बराबर लेकर बकरीके दूधके साथ दो प्रहरतक पीसकर तिसके साथ थोडेसे आदमीके बाल और सन मिलाकर वज्रमूषा बनावे। यह गोल और गोथनकी समान आकारवाली हो ॥ ७९ ॥

मूषान्तरं यथा।

मृत्स्नैका षड्गुणतुषा ख्याता मूषा द्रढीयसी।
भक्ताङ्गाराप्लुता लोहद्रावणे शोधने स्थिता ॥ ८० ॥

भाषा—एक भाग मिट्टी और मिट्टीसे छः गुण तुष लेकर भक्ताङ्गारके साथ मिलाकर दृढ मूषा बनावे। लोहको डालनेके कार्यमे इस घडियाकी आवश्यकता है ॥ ८० ॥

मतान्तरम्।

अप्रसूतगवां मूत्रैः पेषयेद्रक्तमूलिकाः। तद्द्रवैर्मर्दयेत् सूतं तुल्यगंधकसंयुतम् ॥ ततखल्वे चतुर्याममविच्छिन्नं विमर्दयेत्। तत्पिंडं पाचयेद्यन्त्रे त्रिसंघट्टे महापुटे ॥ एवं दशपुटैश्चैव मर्द्यं पाच्यं पुनः पुनः। तदुद्धृत्य पुनर्मर्द्यं वज्रमूषां निरोधयेत् ॥ भूधराख्ये पुटे पच्यात् दशधा भस्मतां व्रजेत्। द्रवैः पुनः पुनर्मर्द्यं सिद्धोऽयं भस्मसूतकः ॥ मूलिकामारितः सूतो जारणाक्रमवर्जितः। न क्रमेद्देहलौहेषु रोगहर्ता भवेद्ध्रुवम् ॥ ८१ ॥

भाषा-पहले अनब्याई गायके मूत्रके साथ छुईमुईको मलकर रस निकाले। फिर बराबर पारा और गन्धक लेकर एक साथ उस रसमें पीसे। फिर तत्ते खरल-में रखकर ४ प्रहरतक बराबर घोटे। घोटते २ जब पिण्डसा बन जाय तब महा-पुटमे पाक कर ले। इस प्रकार दश वार पीसने और पाक करनेपर वज्रमूषामें और भूधरयंत्रमें दश वार पाक करे इस प्रकार करनेसे पारा भस्म हो जाता है। फिर वारंवार लज्जालुके रसमे पीस ले। तब पारदभस्म सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार लज्जालुमारित जारणके क्रमसे वर्जित पारेसे देहका कोई अमंगल नहीं होता, वरन यह निःसन्देह सब रोगोंका नाश करनेवाला है ॥ ८१ ॥

रामबाणः ।

पारदामृतलवङ्गगन्धकं भागयुग्ममरिचेन मिश्रितम् । तत्र जातिफलमर्द्धभागिकं तिन्तिडीफलरसेन मर्दितम् ॥ माषमा-त्रमनुपानसेवितं रामबाणगुटिकारसायनम् । बिल्वपत्रमरिचेन भक्षितं सद्य एव जठराग्निवर्द्धितम् ॥ वातो नाशमुपैति चार्द्रक-रसैर्निर्गुण्डिकाया द्रवैः पित्तं नाशमुपैति धान्यकजलैर्वासा त्रिदोषं हरेत् । (?) सिन्धुहरीतकीभिरुदरं क्वाथैश्च पौनर्नवैः शोथं पाण्डुगदं निहन्ति गुटिका रोगार्त्तिविध्वंसिनी ॥ वह्नि-मान्द्यदशवक्त्रनाशनो रामबाण इति विश्रुतो रसः । संग्रहग्र-हणिकुम्भकर्णकमामवातखरदूषणं जयेत् ॥ ८२ ॥

भाषा-एक भाग पारा, एक भाग विष, एक भाग लवङ्ग, एक भाग गन्धक, दो भाग मिरच, अर्द्ध भाग जायफल यह सब द्रव्य एकत्र कच्ची इमलीके रसम पीस ले। इसका नाम रामबाण है। बेलपत्रके रस और मिरचचूर्णके सहित एक मासा इस औषधिका सेवन करनेसे शीघ्र जठराग्नि प्रदीप्त होती है। अदरखके रस और निर्गुंडीके रसके साथ सेवन करनेसे वातका नाश होता है। जो धनियाके जलके साथ इस औषधिका सेवन किया जाय तो पित्तका नाश होता है। विसो-टेके रसके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे त्रिदोषध्वंस होता है। जो सेधा और हरीतकी चूर्णके साथ इसका सेवन करा जाय तो उदररोगका नाश होता है। पुनर्नवाके रसके साथ सेवन करनेसे सूजन और पाण्डुरोग दूर होता है। यह रामबाण रस अग्निमान्द्यरूप रावण, संग्रहणीरूप कुम्भकर्ण और आमवातरूप खरदूषणका नाश करता है ॥ ८२ ॥

अग्निकुमाररसः ।

टङ्कणं रसगंधौ च समभागं त्रयं विषात् । कपर्दं सर्जिकाक्षारं मागधी विश्वभेषजम् ॥ पृथक् पृथक् कर्षमात्रं वसुभागं मरीचकम् । जम्बीराम्लैर्दिनं पिष्टं भवेदग्निकुमारकः ॥ विषूचीशूलवातादिवह्निमान्द्यप्रशान्तये ॥ ८३ ॥

भाषा-सुहागा, पारा और गन्धक बराबर अर्थात् प्रत्येक एक २ भाग वा एक १ तोला, विष तीन भाग वा ३ तोले, एक कर्ष कौडीभस्म, एक कर्ष सज्जीखार, एक कर्ष पीपल, एक कर्ष सोंठ, ८ तोले मिरच इन सबको एकत्र करके जंबीरीके रसमें एक दिन पीसे । इसका नाम अग्निकुमार रस है । इससे विषूचिका, शूल, वातादि और मन्दाग्नि दूर होती है ॥ ८३ ॥

लघ्वानन्दरसः ।

पारदं गंधकं लौहमभ्रकं विषमेव च । समांसं मरिचं चाष्टौ टंकणं च चतुर्गुणम् ॥ भृंगराजरसैः सप्त भावनाश्चाम्लदाडिमैः । गुंजाद्वयं पर्णखण्डैः खादेत् सायं निहन्त्यसौ ॥ वातश्लेष्मभवान् रोगान् मन्दाग्निं ग्रहणीं ज्वरम् । अरुचिं पाण्डुतां चैव जयेदचिरसेवनात् ॥ ८४ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, विष ये सब बराबर ले, आठ भाग काली मिरच, ४ भाग सुहागा, इन सबको एकत्र करके भांगरेके रसमें सात बार और खट्टे दाडिमके रसमें ७ बार भावना दे । इसका नाम लघ्वानन्द रस है । सन्ध्याकालमें पानके साथ २ रत्ती इसको सेवन करे । इससे शीघ्रही वातश्लेष्मसे उत्पन्न रोग, मन्दाग्नि, ग्रहणी, ज्वर, अरुचि, पाण्डु इन सब रोगोंका नाश होता है॥८४॥

महोदधिवटी ।

एकैकं विषसूतं च जातिटङ्कं द्विकं द्विकम् । कृष्णात्रिकं विश्वषट्कं दग्धं कपर्दकं तथा ॥ देवपुष्पं बाणमितं सर्वं संमर्द्य यत्नतः । महोदधिवटी नाम्ना नष्टमग्निं प्रदीपयेत् ॥ ८५ ॥

भाषा-विष और पारा एक२ भाग, जायफल और सुहागा दो दो भाग, पीपल तीन भाग, सोंठ छः भाग, जली कौडी ६ भाग, देवपुष्प अर्थात् लौङ्ग बाणपरिमाण (पाच भाग) इन सबको एकत्र यत्नके साथ पीसकर गोलियां बनावे । इसका नाम महोदधिवटी है । इससे नष्ट हुई अग्नि फिर दीप्त होती है ॥ ८५ ॥

चिंतामणिरसः ।

रसं गन्धं मृतं शुल्बं मृतमभ्रं फलत्रिकम् । त्र्यूषणं बीजजैपालं समं खल्वे विमर्दयेत् ॥ द्रोणपुष्पीरसैर्भाव्यं शुष्कं तद्वस्त्रगालितम् । चिन्तामणिरसो ह्येष अजीर्णे शस्यते सदा ॥ ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वशूलहरः परः । गुंजमेकं द्विगुंजं वा आमवातहरं परम् ॥ ८६ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, मृत ताम्र, मृत अभ्रक, त्रिफला, त्रिकुटा, जमालगोटा इन सबको बराबर ले खरल करके गूमेके रसमें भावना दे । सूखनेपर कपडेमें छान ले । इसका नाम चिन्तामणि रस है । अजीर्णरोगमे यह औषधि महाफलदाई है । इससे आठ प्रकारके ज्वर और सर्व प्रकारके शूल ध्वंस होते हैं । इसको एक रत्ती या दो रत्ती सेवन करे तो आमवातका नाश होता है ॥ ८६ ॥

राजवल्लभः ।

शुद्धसूतं गन्धकं च तोलकैकं प्रदीपनम् । चतुर्गुणं प्रदातव्यं चुल्लिकालवणं ततः ॥ खल्वेन मर्दयेत्तत्तु सूक्ष्मवस्त्रेण गालयेत् । माषमात्रः प्रदातव्यो भक्तमांसादिजारकः ॥ अजीर्णेषु त्रिदोषेषु देयोऽयं राजवल्लभः ॥ ८७ ॥

भाषा-पारा, गन्धक और प्रदीपन अर्थात् अजवायन यह एक २ तोला और चुल्लिकालवण ४ तोले इन सबको खरलमे पीसकर महीन कपडेमे छान ले इसका नाम राजवल्लभ है । इसकी मात्रा एक मासा है । इससे अन्न व मांसादि भोजन किये पदार्थ जीर्ण हो जाते हैं। त्रिदोषसे उत्पन्न हुए अजीर्णमे यह औषधि देनी चाहिये ॥ ८७ ॥

लघुपानीयभक्तगुटिका ।

रसोर्द्धभागिकस्तुल्या विडंगमरिचार्द्रकाः । भक्तोदकेन संमर्द्य कुर्याद्गुंजासमान् गुडान् ॥ भक्तोदकानुपानैकास्ये वा वह्निप्रदीपनी । वार्यन्नं भोजनं चात्र प्रयोगे सात्म्यमिष्यते ॥ ८८ ॥

भाषा-पारा अर्द्ध भाग, वायविडङ्ग, अदरक और काली मिरच बराबर अर्थात् एक २ भाग, समस्त द्रव्य एकत्र करके कांजीके साथ पीसकर चोंटलीकी समान गोलियां बनावे । भातके जल (माड) के साथ सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होती

है। इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमें वार्यन्न अर्थात् जलदार भातादि सात्म्य भोजन करे ॥ ८८ ॥

पाण्ड्वरिः।

रसगन्धकलोहैक्यं पांड्वरिः पुटितस्त्रिधा।
कुमार्याक्तश्चतुर्वल्लं पाण्डुकामलपूर्वनुत् ॥ ८९ ॥

भाषा-पारा, गन्धक और लोहा बराबर ग्रहण करके घीकारके रसमें पीसकर ३ बार पुट दे। यह पाण्डुरोगका शत्रु है। इसको ४ वल्ल सेवन करनेसे पाण्डु और कामलाका नाश होता है ॥ ८९ ॥

पांडुसूदनरसः।

रसं गन्धं मृतं ताम्रं जयपालं च गुग्गुलुम्। समांशमाज्यसंयुक्तं गुटिकां कारयेन्मिताम् ॥ एकैकां खादयेद्वैद्यः शोथपांड्वपनुत्तये। शीतलं च जलं चाम्लं वर्जयेत् पांडुसूदने ॥ ९० ॥

भाषा-पारा, गन्धक, मृतक ताम्र, जमालगोटा और गूगल इनको बराबर ग्रहण करके घीके साथ घोटकर विचारानुसार गोलियां बनावे। सूजन और पाण्डु-रोगका नाश करनेके लिये इसकी एक २ गोली सेवन करे। इसको सेवन करे पीछे ठंडे पानी और खटाईको छोड दे। इसका नाम पाण्डुसूदन रस है ॥ ९० ॥

पांडुगजकेसरी रसः।

रविभागं तु मण्डूरं तत्समं लौहभस्मकम्। शिलाजतु तदर्द्धं स्यात् गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ पंचकोलं देवदारु मुस्ता व्योषं फलत्रयम्। पृथगर्द्धं विडङ्गं च पाकान्ते चूर्णितं क्षिपेत् ॥ पाययेदक्षमात्रं तु तक्रेणाल्पाशनो भवेत्। पाण्डुग्रहणिमन्दाग्निशोथार्शांसि हलीमकम् ॥ ऊरुस्तम्भक्रिमिप्लीहगलरोगान् विनाशयेत् ॥ ९१ ॥

भाषा-१२ भाग मण्डूर, इतनीही लौहभस्म, ६ भाग शिलाजीत इन तीनोको एकत्र करके आठ गुणे गोमूत्रमे पाक करे। जब पाक समाप्त होनेपर आ जावे तब मण्डूरादि तीन द्रव्योसे आधा पंचकोल, देवदारु, मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला और विडङ्ग इन सबका चूर्ण डाले। इसका नाम पाण्डुगजकेसरी रस है। मठेके अनुपानके साथ यह औषधि १६ मासे सेवन करनी चाहिये। इसको सेवन

करके थोडासा आहार करे । इस औषधिसे पाण्डु, संग्रहणी, मन्दाग्नि, शोथ, बवासीर, हलीमक, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लीहा और गलरोगका नाश होता है ॥९१॥

वङ्गेश्वरः ।

वंगसूतकयोर्भागं समं च कन्यकाद्रवैः । संमर्द्य वटिकाः कृत्वा पाचयेत्काचभाजने ॥ यावच्चन्द्रनिभाः शुभ्राः श्रीवंगेशो महागुणः । पाण्डुप्रमेहदौर्बल्यकामलादाहनाशनः ॥ ९२ ॥

भाषा-बराबर रांगा और पारा ग्रहण करके घीकारके रसमें पीस काचपात्रमें पाक करके वटिका बनावे । जबतक चन्द्रमाकीसी श्वेतवर्ण न हो जाय, तबतक पाक करना चाहिये । क्योंकि इस प्रकारसेही महागुणदायी होता है। इससे पाण्डु, प्रमेह, दुर्बलता, कामला और दाहका नाश होता है । इसका नाम वंगेश्वर है॥९२॥

पांडुनिग्रहो रसः ।

अभ्रभस्म रसभस्म गंधकं लौहभस्म मुशलीविमर्दितम् । शाल्मलीजरसतो गुडूचिकाक्काथकैश्च परिमर्दिता दिनम् ॥ भावयेत्त्रिफलकार्द्रकन्यकावह्निशिग्रुजरसैश्च सप्तधा । जायते हि भवजोऽमृतस्रवः शुष्कपाण्डुविनिवृत्तिदायकः ॥ वल्लयुग्मपरिमाणितं त्विमं लेहयेच्च घृतमाक्षिकान्वितम् । पथ्यमत्र परिभाषितं पुरा यत्तदेव परिवर्ज्यवर्जनम् ॥ शोथपाण्डुविनिवृत्तिदायिकः सेवितं तु यवाचिंचिकाद्रवैः । नागराग्निजयपालकैस्तु वा वज्रिदुग्धपरिपक्वसर्पिषा ॥ तक्रभक्तमिह भोजयेदतिस्निग्धमन्नमतिनूतनं त्यजेत् ॥ ९३ ॥

भाषा-अभ्रकभस्म, पारदभस्म, गन्धक, लोहभस्म और मूसली इन सबको बराबर लेकर सेमलके रस और गिलोयके क्वाथमें एक दिन खरल करके त्रिफलाके क्वाथमें ७ वार, अद्रकके रसमें सात वार, घीकारके रसमे ७ वार, चित्रकके रसमें ७ वार और सहजनेके रसमें ७ वार भावना दे । ऐसा करनेसे औषधि अमृतकी समान होती है । इससे शुष्क पाण्डु दूर होता है । इस औषधिको २ वल्ल लेकर घी और शहदके साथ चाटे । पहले जिस प्रकार पथ्यापथ्यका वर्णन किया है, इस औषधिको सेवन करनेके अंतमेंभी वैसाही पथ्यापथ्य नियत है । जौ और इमलीके पानीके साथ अथवा सोंठ, चित्रक और जयपाल (जमालगोटे) के साथ अथवा थूहरके दूधके साथ पकाय घृतके साथ इस औषधिको सेवन करना चाहिये । इस

औषधिको सेवन करके पीछे मठा और भात खाय। परन्तु अधिक शीतल और नया अन्न छोड दे। इस औषधिका नाम पाण्डुनिग्रह रस है॥ ९३॥

आनिलरसः।

ताम्रभस्म रसभस्म गंधकं वत्सनाभमपि तुल्यभागिकम्। वह्नितोयपरिमर्दितं पचेत् यामपादमथ मंदवह्निना॥ रक्तिकायुगलमानतोऽनिलः शोथपाण्डुघनपंकशोषकः॥ ९४॥

भाषा-ताम्रभस्म, पारदभस्म, गन्धक, वत्सनाभ इन सबको बराबर लेकर एकसाथ चित्रकके क्वाथमें पीसकर मन्दी आंचसे चौथाई प्रहरतक पकावे। इसका नाम अनिल रस है। दो रत्ती इस औषधिको सेवन करनेसे सूजन पाण्डु आदिका नाश हो जाता है॥ ९४॥

लौहसुन्दररसः।

सूतभस्म मृतलोहगंधकौ भागवर्द्धितमिदं विनिःक्षिपेत्। दीर्घनालदृढकूपिकोदरे मृत्स्नया च परिवेष्ट्य तां क्षिपेत्॥ चुल्लिकोपरि च कूपिकामुखे प्रक्षिपेच्च वरशाल्मलीद्रवम्। त्रैफलं च सगुडूचिकारसं पाचयेत्तु मृदुवह्निना दिनम्॥ स्वाङ्गशीतलमिदं प्रगृह्य च त्र्यूषणार्द्रकरसेन भावयेत्। लौहसुन्दररसोऽयमीरितः शुष्कपाण्डुविनिवृत्तिदः परः॥ ९५॥

भाषा-पारदभस्म, मृतलौह और गन्धक इन सब द्रव्योंको क्रम २ से एक २ भाग बढाकर ले अर्थात् १ भाग पारा, २ भाग मृतलौह और ३ भाग गन्धक ले बडी नालवाली शीशीके भीतर भरके उस शीशीपर कपरोटी कर धूपमें सुखा लेवे। फिर चूल्हेपर चढावे, जब अग्नि लगने लगे तब उस शीशीके मुँहमें सेमरका रस, त्रिफलाका काढा और गिलोयका काढा भरके एक दिनतक वालुकायन्त्रमें मन्दाग्निसे पाक करे। शीतल होनेपर उसको ग्रहण करे। फिर त्रिकुटा और अद्रकके रसमे भावना दे लेवे। इसका नाम लौहसुन्दर रस है। इससे शुष्क पांडुका नाश हो जाता है॥ ९५॥

धात्रीलोहः।

धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः। लौहो निवारयेत्तस्य कामलां सहलीमकाम्॥ ९६॥

भाषा-आमला, लौहरज (लोहचून), त्रिकुटा, हलदी, सहद, घी और

मिश्री इन सबको बराबर ग्रहण करके मिला ले । इसका नाम धात्रीलौह है । इससे कामला और हलीमकका नाश हो जाता है ॥ ९६ ॥

कांस्यपिष्टिकारसः ।

पाण्डुरोगोदिता योगा घ्नन्ति ते कामलामपि । प्रयुक्ता भिषजा युक्त्या तत्तच्चोक्तं हलीमकम् ॥ कांस्येन पिंडिकां कृत्वा देवदालीरसप्लुताम् । तीक्ष्णगंधरजोयुक्ता युक्त्या हन्यात् हलीमकम् ॥ ९७ ॥

भाषा–जिन औषधियोंसे पाण्डुरोगका नाश होता है, युक्तिके अनुसार युक्त होनेपर तिनसे हलीमककाभी नाश होता है । कांसीके साथ बराबर तीक्ष्ण लौह और गन्धकचूर्ण मिलाकर बिंदालके रसमें पीसे, फिर गोलियां बनावे । इसका नाम कांस्यपिष्टिकारस है । इससे हलीमकका नाश हो जाता है ॥ ९७ ॥

द्विहरिद्राद्यलौहः ।

लौहचूर्णं निशायुग्मं त्रिफलयं कटुरोहिणीम् ।
प्रलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां कामलार्त्तः सुखी भवेत् ॥ ९८ ॥

भाषा–लौहचूर्ण, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, कुटकी इन सबको बराबर ले चूर्ण करके सहद और घीके साथ लेहन करे । इससे कामलारोगी अच्छा हो जाता है । इसका नाम द्विहरिद्राद्यलौह है ॥ ९८ ॥

सुधानिधिरसः ।

सूतं गंधं माक्षिकं लोहचूर्णं सर्वं घृष्टं त्रैफलेनोदकेन । मूषामध्ये भूधरे तत्पुटित्वा दद्याद्गुंजां त्रैफलेनोदकेन ॥ लौहे पात्रे गोपयः पाचयित्वा रात्रौ दद्याद्रक्तपित्तप्रणुत्त्यै ॥ ९९ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, सोनामक्खी, लोहचून इनको बराबर लेकर एक साथ त्रिफलाके पानीमें पीसकर घडियाके भीतर भरे । फिर भूधरयंत्रमें पुट देकर त्रिफलाके जलके साथ एक रत्तीभर प्रयोग करे । इसका नाम सुधानिधि रस है । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे लोहेकी कढाईमें गायका दूध औटाकर रात्रिके समय पिये । इससे रक्तपित्त दूर होता है ॥ ९९ ॥

शर्कराद्यलेहः ।

शर्करातिलसंयुक्तं त्रिकत्रयसमन्वयात् ।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरोऽपि सन् ॥ १०० ॥

भाषा-मिश्री, तिल, त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, चित्रक और विडङ्ग इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर ले। इसका नाम शर्कराद्यलेह है। यह सर्वरोगहारी औषधि रक्तपित्तका नाश करती है॥ १००॥

खण्डकाद्यलौहः।

शतावरी छिन्नरुहा वृषमुण्डितिकाबलाः। तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा॥ भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक् पंच पलानि च। जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम्॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा। पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चूर्णितम्॥ खण्डतुल्यं घृतं देयं पलषोडशिकं बुधैः। पचेत्तथायसे पात्रे गुडपाको मतो यथा॥ प्रस्थार्द्धं मधुना देयं शुभाश्मजतुकत्वचः। शृंगी विडंगं कृष्णा च शुण्ठयजाजीपलं पलम्॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं व्यक्षं मरिचकेशरम्। चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धभाण्डे निधापयेत्॥ यथाकालं प्रयुञ्जीत विडालपदकं ततः। गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसं पयः॥ गुरुवृष्यानुपानं च स्निग्धमांसादिबृंहणम्। रक्तपित्तं क्षयं कासं हृदि शूलं विशेषतः॥ वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं कृमिम्। श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा॥ आनाहं रक्तसंस्रावमम्लपित्तं निहन्ति च। चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं मङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम्॥ आरोग्यपुत्रदं श्रेष्ठं कायाग्निबलवर्द्धनम्। श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्यं प्रकीर्त्तितम्॥ छागं पारावतं मांसं तित्तिरिः कूकराः शशाः। कुरङ्गाः कृष्णसाराश्च तेषां मांसानि योजयेत्॥ नारिकेलपयःपानं सुनिषण्णकवास्तुकम्। शुष्कमूलकजीराख्यं पटोलं बृहतीफलम्॥ वालवार्ताकुपक्वाम्रं खर्ज्जूरं स्वादुदाडिमम्। ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम्॥ वर्जनीयं विशेषेण खण्डकाद्यं प्रकुर्वता॥ १०१॥

भाषा-शतावरी, गिलोय, बिसोटेकी छाल, गोरखमुण्डी, बला (खरेटी),

तालमूली, खैर, त्रिफलाकी छाल, भारंगी, पोहकरमूल इन सबको पांच २ पल ले सबको एकत्र करके एक द्रोण जलमें पाक करे । चौथाई जल रह जाना चाहिये । फिर इस क्वाथमें दिव्यौषधि जाहिर अर्थात् मैनशिल वा सोनामक्खीसे जारित सूक्ष्मलौह चूर्ण १२ पल और १६ पल घृत देकर पाक करे । लोहपाकमें गुणपाककी समान पाक करे । जब पाक समाप्त होनेपर आ जाय तब एक पल शिलाजीतचूर्ण, एक पल दालचीनी, एक पल काकडासिंगीका चूर्ण, एक पल विडङ्गका चूर्ण, एक पल पीपलका चूर्ण, एक पल सोंठचूर्ण, एक पल जीरेका चूर्ण, ४ तोले त्रिफला, ४ तोले धनियां, ४ तोले तेजपात, ४ तोले मिरचचूर्ण, ४ तोले नागकेशरका चूर्ण और अर्द्ध प्रस्थ मधु डालकर चलाय चिकने वर्तनमें रक्खे । समयानुसार इस औषधिको २ तोले रोगमें प्रयोग करे । इसका सेवन करनेके पीछे गायका दूध, मांसका रस और दूध अनुपान करे । इसको सेवन करके बलकारी और भारी द्रव्य, चिकने मांसादि खाये जा सकते हैं । इससे रक्तपित्त, क्षय, खांसी, हृदयका दर्द, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, कृमि, सूजन, पाण्डु, कोढ, तिल्ली, उदररोग, अफरा, रुधिर गिरना और अम्लपितका नाश होता है । इससे नेत्रोंका तेज वढता है, बृंहण, वृष्य, मंगलदाई, प्रीतिवर्द्धक, आरोग्यदाई, पुत्रजनक, शरीरपुष्टिकारक, अग्निप्रदीपक, बलवर्द्धक और लाघवकर है । इसका नाम खण्डक्काथ लौह है । इस औषधिको सेवन करके छाग, कबूतर, तीतर, कुक्कर, खरगोश, हरिण, कृष्णसार इन सब जीवोंका मांस, नारियलका जल, चौपतियाका शाक, बथुएका शाक, सूखी मूली, जीरा, परवल, बृहती, बैगन, पक्के आम, खजूर और स्वादिष्ठ दाडिम पथ्य करे । इस औषधिको सेवन करके ककारादि नामाद्याक्षरवाले जलज देशोके जीवोका मांस त्याग दे ॥ १०१ ॥

अमृतेश्वररसः ।

रसभस्मामृतासत्वं लौहं मधुघृतान्वितम् ।
अमृतेश्वरनामायं षड्गुंजा राजयक्ष्मनुत् ॥ १०२ ॥

भाषा–पारदभस्म, सतगिलोय और लौह इन सबको इकट्ठा करके शहद और घी मिलावे । इसका नाम अमृतेश्वर रस है । ६ रत्ती इस औषधिको प्रयोग करनेसे राजयक्ष्माका नाश हो जाता है ॥ १०२ ॥

रत्नगर्भपोटलीरसः ।

रसं वज्रं हेम तारं नागं लौहं च ताम्रकम् । तुल्यांशं मारितं योज्यं मुक्तामाक्षिकविद्रुमम् ॥ शंखं च तुत्थं तुल्यांशं सप्ताहं चित्रकद्रवैः । मर्दयित्वा विचूर्ण्याथ तेनापूर्य वराटकम् ॥ टङ्कणं

रविदुग्धेन पिष्ट्वा तन्मुखमन्धयेत् । मृद्भाण्डे तान् निरुद्ध्याथ सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ आदाय चूर्णयेत्सर्वं निर्गुण्ड्याः सप्त भावनाः । आर्द्रकस्य द्रवैः सप्त चित्रकस्यैकविंशतिः ॥ द्रवैर्भाव्यं ततः शोष्यं देयं गुंजाचतुष्टयम् । क्षयरोगं निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ॥ योजयेत्पिप्पलीक्षौद्रैः सघृतैर्मारिचैश्च वा । महारोगाष्टके कासे ज्वरे श्वासेऽतिसारके ॥ पोटलीरत्नगर्भोऽयं योगवाहे नियोजयेत् ॥ १०३ ॥

भाषा-पारा, हीरा, सोना, चांदी, सीसा, लोहा, तांबा इन सबकी भस्म, मारित मुक्ता, माक्षिक, मारित मूंगा, मारित शंख, मारित नीलाथोथा इन सबको बराबर लेकर सात दिनतक चित्रकके रसमें मर्दन करे। फिर चूर्ण करके उस चूर्णको कितनी एक कौडियोंके भीतर भरे । फिर आकके दूधमे सुहागेको पीसकर तिससे कौडियोंका मुँह बन्द करे। फिर उन कौडियोंको मिट्टीके बर्तनमें रखकर भली भांतिसे गजपुटमें पाक करे । फिर उसको निकालकर चूर्ण करके संभालूके रसमें सात वार, अद्रकके रसमें ७ वार और चित्रकके रसमे २१ वार भावना दे । फिर सूख जानेपर औषधि बन जाती है । इसका नाम रत्नगर्भपोटलीरस है । रोगमें इसकी ४ रत्ती मात्रा दे । इससे साध्यासाध्य सव प्रकारका क्षयरोग दूर होता है । पीपलचूर्ण और शहदके साथ अथवा मिरचचूर्ण और घृतके साथ इसको सेवन करे। यह औषधि ८ प्रकारके महारोगोंमे, खांसी, ज्वर, दमा और अतिसारमें देनी चाहिये ॥ १०३ ॥

महामृगाङ्को रसः ।

स्याद्रसेन समं हेम मौक्तिकं द्विगुणं भवेत् । गन्धकस्तु समस्तेन रसपादस्तु टंकणम् ॥ सर्वं तद्गोलकं कृत्वा कांजिकेन विशोधयेत् । यन्त्रे लवणपूर्णेऽथ पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ मृगाङ्कसंज्ञको ज्ञेयो रोगराजनिकृन्तनः । रसस्य भस्मना हेम भस्मीकृत्य प्रयोजयेत् ॥ गुंजाचतुष्टयं चास्य मरिचैर्भक्षयेद्भिषक् । पिप्पलीदशकैर्वापि मधुना लेहयेद्बुधः ॥ पथ्यं सुलघुमांसेन प्रायशोऽस्य प्रयोजयेत् । दध्याज्यं गव्यतक्रं वा मांसमाजं प्रयोजयेत् ॥ व्यंजनैर्घृतपक्वैश्च नातिक्षारैर्न हिङ्गुलैः । एलाजाती-

मरीचैस्तु संस्कृतैरविदाहिभिः ॥ वृन्ताकतैलबिल्वानि कारवेल्लं च वर्जयेत्। स्त्रियं परिहरेद्दूरे कोपं चापि परित्यजेत्॥ कैवर्त्तमुस्तकाढकीमूलेन क्वाथयेत्पलम्। तत्क्वाथं पाययेद्रात्रौ कटुकत्रयसंयुतम्॥ त्रिशूली सा समाख्याता तन्मूलं क्वाथये- त्पलम्। कटुत्रयसमायुक्तं पाययेत् कासशान्तये ॥ ईषद्धि- ङ्गुसमायुक्तं काकमाचीमूलस्य च । भक्षयेत् पेयभोज्येषु क्वाथवान्तिप्रशान्तये ॥ मार्कण्डीपत्रचूर्णस्य गुटिकां मधुना कृताम्। धारयेत्सततं वक्त्रे कासविष्टम्भनाशिनीम्॥ छागमांसं पयश्छागं छागं सर्पिः सनागरम्। छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवनम्। अतो विशेषात् संरक्षेत् यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ १०४ ॥

भाषा-पारा और सुवर्णभस्म बराबर, पारेसे दूने मोती, मोतियोंकी बराबर गन्धक, पारेसे चौथाई सुहागा इन सबको एक साथ मिलाकर गोला बनावे। कांजीसे शुद्ध करे। फिर ४ प्रहरतक लवणयन्त्रमें पाक कर ले । इसका नाम महामृगाङ्क रस है। यह रोगराशिका नाश कर देता है । औषधिमें जो सुवर्ण ग्रहण करना कहा गया, वह सुवर्ण पारदभस्मसे जारित हो । वैद्यको चाहिये कि मिरचचूर्णके साथ इस औषधिको ४ रत्ती सेवन करावे। अथवा दश पीपल और शहदके साथ मिलाकर चाटे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे बहुधा लघुमांस पथ्य करे या दही, घी, गायका मट्ठा और छागका मांस सेवन कराया जा सकता है। इस औषधिको सेवन करके इलायची, जायफल, मिरच इत्यादिसे संस्कृत (छके हुए), अतिक्षार और हींगरहित, घीसे पके, अविदाही व्यंजन पथ्य करे। इसको सेवन करके बैंगन, तेल, बेल, करेला, नारीसंग और क्रोध करना छोड दे। कैवर्ती मोथा और आढकीमूलका क्वाथ बनाकर उस क्वाथको एक पल लेकर त्रिकुटाचूर्णके साथ मिलाय रात्रिके समयमे सेवन करे। त्रिशूलीमूलका क्वाथ एक पल लेकर त्रिकुटाचूर्णके साथ मिलाय खांसीके साथ मिलाय सेवन करे। मकोयकी जडका क्वाथ बनाकर तिसके साथ थोडासा शहद मिलाय भोज्य और पानीयके साथ सेवन करनेसे वान्ति दूर होती है। वनककोडेके पत्तेका चूर्ण शहदके साथ मिलाय गुटिका बनावे। उस गुटिकाको सदा मुखमे धारण करनेसे खासी और विष्टम्भ दूर होता है। यक्ष्मरोगमें छागमास, छागीका दूध, छागीका घृत, सोठके

चूर्णके साथ मिलाकर सेवन करे। छागसे वा छागोंके बीचमें शयन करनेसे यह रोग दूर होता है। पुरुषका बल शुक्रके आधीन और जीवन मलके आधीन है, इस कारण यक्ष्मरोगीको चाहिये कि मल और वीर्यकी यत्नसहित रक्षा करे ॥ १०४ ॥

स्वल्पमृगांको रसः।

रसभस्म हेमभस्म तुल्यं गुंजाद्वयं द्वयम्। पूर्ववदनुपानेन मृगांकोऽयं क्षयापहः ॥ छागदुग्धानुपानेन दशरत्यादिमात्रया॥१०५॥

भाषा-२ रत्ती पारदभस्म और २ गुंजा स्वर्णभस्म मिलाकर पहले कहे हुए अनुपानोंके साथ सेवन करानेसे क्षयरोग दूर होता है। इस औषधिका नाम स्वल्पमृगाङ्क रस है। बकरीके दूधके अनुपानके साथ इस औषधिको १० रत्तीतक दिया जा सकता है ॥ १०५ ॥

लोकेश्वरो रसः।

पलं कपर्दचूर्णस्य पलं पारदगन्धयोः। माषष्टङ्कणकस्यैको जम्बीराद्भिर्विमर्दयेत् ॥ पुटेल्लोकेश्वरं नाम्ना लोकनाथोऽयमुत्तमः। ऋते कुष्ठं रक्तपित्तमन्यान् व्याधीन् क्षयं नयेत् ॥ पुष्टिवीर्यप्रसादौजःकान्तिलावण्यदः परः। कोऽस्ति लोकेश्वरादन्यो नृणां शंभुमुखोद्भवात् ॥ १०६ ॥

भाषा-१ पल कौडीचूर्ण, १ पल पारा और गन्धक, १ मासा सुहागा इन सबको एकत्र कर जंबीरीके रसमें मर्दन करके पुट दे। इसका नाम लोकेश्वर रस है। यह उत्तम औषधि लोकनाथस्वरूप है। कोढ और रक्तपित्तके सिवाय शेष सब रोग इससे दूर होते हैं। यह पुष्टिदाई, वीर्यकारी, प्रसादजनक, तेजःप्रद, कांति और लावण्यजनक है। महादेवजीके मुखसे प्रकाशित इस लोकेश्वर नामक रसके सिवाय मनुष्योंके लिये और क्या महौषधि है ॥ १०६ ॥

पर्पटीरसः।

भागौ रसस्य गंधस्य द्वावेको लौहभस्मतः। एतद्द्वयं द्रवीभूतं मृद्वग्नौ कदलीदले ॥ पातयेद्गोमयगते तथैवोपरि योजयेत्। ततः पिष्ट्वा द्रवैरेभिर्मर्दयेत् सप्तधा पृथक् ॥ भार्ङ्गी मुंडी चातिबलारसैश्च विजयाद्रवैः। घोषारसैः कन्याद्रवैः शुष्कं शुष्कं पुटेल्लघु ॥ आगन्धं खर्परे नाम्ना पर्पटीतो रसो भवेत्। सर्वरो-

गहरश्चैव कान्तिलावण्यवीर्यदः ॥ ताम्बूलवल्लीपत्रेण कास-श्वासहरः परः । अन्यांश्च विविधान् रोगान् नाशयेत् मासम-ध्यतः ॥ अम्लिकातैलवार्ताकुकूष्माण्डसुषवीफलम् । वर्ज्यं मासत्रयं सर्वं कफकृत् स्त्रीमुखादिकृत् ॥ १०७ ॥

भाषा—२ भाग पारा, २ भाग गन्धक, १ भाग लौहभस्म इनको एकत्र करके मन्दी आंचसे पाक करे जब देखे कि पिघल गये तब गोबरपर पडे हुए केलेके पत्तेपर डाल दे । फिर भारंगी, गोरखमुण्डी, कंघी, गोरक्षचाकुले, भंग, तुरई और घृतकुमार इन सबके रसमें अलग २ सात वार भावना दे । फिर सूख जानेपर खपडेमें करके जबतक गन्ध न निकले, तबतक लघुपुटमें पाक करे । इस प्रकार करनेसे पर्पटीरस बनता है । इससे सब रोग शान्त होते हैं । यह कांति, लावण्य और वीर्यको बढाता है । पानके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे खांसी और दमा दूर होता है । इससे १ मासमें अनेक रोग जाते रहते है । इस औषधिको सेवन करके खटाई, तेल, बैंगन, पेठा, करेला और कफकर द्रव्य तीन मासतक छोडे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे नारीसंगभी सर्वथा छोड दे ॥ १०७ ॥

लोकेश्वरपोटलीरसः ।

रसस्य भस्मना हेम पादांशेन प्रकल्पयेत् । द्विगुणं गंधकं दत्त्वा मर्दयेच्चित्रकाम्बुना ॥ वराटकांश्च संपूर्य्य टंकणेन निरुध्य च । भांडे चूर्णप्रलिप्तेऽथ क्षिप्त्वा रुन्धीत मृण्मये ॥ शोषयित्वा पुटे-द्गर्तेऽरत्निमात्रे पराह्निके । स्वाङ्गशीतलमुद्धृत्य चूर्णयित्वाथ विन्यसेत् ॥ एष लोकेश्वरो नाम वीर्यपुष्टिविवर्द्धनः । गुंजाच-तुष्टयं चास्य पिप्पलीमधुसंयुतम् ॥ भक्षयेत्पयसा भक्त्या लोकेशः सर्वदर्शनः । अंगकार्श्येऽग्निमान्द्ये च कासे पित्ते रस-स्त्वयम् ॥ मरिचैर्घृतसंयुक्तैः प्रदातव्यो दिनत्रयम् । लवणं वर्जयेत्तत्र साज्यं दधि च योजयेत् ॥ एकविंशदिनं यावत् मरिचं सघृतं पिबेत् । पथ्यं मृगाङ्कवज्ज्ञेयं शयीतोत्तानपा-दतः ॥ ये शुष्का विषमानलैः क्षयरुजा व्याप्ताश्च ये कुष्ठिनो ये पाण्डुत्वहताः कुवैद्यविधिना ये शोषिणो दुर्भगाः । ये

तथा विविधज्वरभ्रममदोन्मादैः प्रमादं गतास्ते सर्वे विगता-मया हि परया स्युः पोटलीसेवया ॥ १०८ ॥

भाषा–पारा जितना हो उससे चौथाई स्वर्णभस्म, पारेसे दूना गन्धक इन सब द्रव्योंको एकत्र करके चित्रकके रसमें पीसे भली भांतिसे पिट्ठी होनेपर कौडीमें भरकर सुहागेसे उन कौडीका मुँह बन्द करे । फिर चूर्णलिप्त मिट्टीके बर्त्त-नमें रखकर उसका मुँह बन्द करे । फिर सूख जानेपर मुट्ठीभर गहरा गढा खोदकर तिसमें पुट दे । दूसरे दिन शीतल होनेपर निकालके चूर्ण करे। इसका नाम लोके-श्वरपोटली रस है । यह वीर्य और पुष्टिको बढा देता है । इस औषधिको ४ रत्ती लेकर पीपलचूर्ण और शहदके साथ सेवन करे । भक्तियुक्त हो दूधके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे मनुष्यलोकमें श्रेष्ठ और सर्वदर्शी हो सकता है । दुबला-पन, मन्दाग्नि, खांसी और पित्तरोगमें यह औषधि मिरचचूर्ण और घृतके साथ मिलाकर ३ दिनतक सेवन करे । इसको सेवन करे तो नमक छोड दे, घी, दही पथ्य करे । इस औषधिको सेवन करके २१ दिनतक घृतसंयुक्त मिरचचूर्ण सेवन करे । मृगाङ्करसकी समान इसमेंभी पथ्य करे । पैर फैलाकर सोवे । जो लोग विषमानलसे अर्थात् मन्दाग्निसे सूख गये हैं, क्षयरोगी, कुष्ठी, पाण्डुरोगी, कुवैद्यकी चिकित्सासे शोथरोगवान्, दुर्भाग्यशील, ज्वरग्रस्त, भ्रमरोगी, उन्मादग्रस्त और प्रमादगत है, वे इस पोटलीरसका सेवन करनेसे विगतरोग हो जाते हैं ॥ १०८ ॥

राजमृगाङ्को रसः ।

रसभस्म त्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् । मृतताम्रस्य भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ प्रतिभागद्वयं सिद्धमेकीकृत्य विचूर्ण-येत् । वराकीः पूरयेत्तेन अजाक्षीरेण टंकणम् ॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे परिरोधयेत् । शुष्कं गजपुटे पाच्यं चूर्णयेत् स्वांगशीतलम् ॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः । दशभिः पिप्पलीक्षौद्रैर्मरिचैकोनविंशतिः ॥ सघृतैर्दापयित्वाथ वातश्लेष्मोद्भवे क्षये ॥ १०९ ॥

भाषा–३ भाग पारदभस्म, १भाग सुवर्णभस्म, एक भाग मृतक ताम्र, २भाग मेनशिल, २ भाग गन्धक, २ भाग हरिताल इन सबको एकत्र करके चूर्ण करे । फिर कौडियोंमें यह चूर्ण भरके, बकरीके दूधके साथ पीसे हुए सुहागेसे उन कौ-डियोंका मुख बन्द करके मिट्टीके पात्रमें रक्खे । फिर उस पात्रका मुख बन्द

करके शुष्क होनेपर गजपुटमें पाक करे । फिर शीतल होनेपर चूर्ण कर ले । इसका नाम राजमृगाङ्क रस है । इसको ४ रत्ती सेवन करनेसे क्षयरोग दूर होता है । १० पीपलका चूर्ण, शहद, १९ मिरचका चूर्ण और घृत इन सबके साथ इस महौषधिका सेवन करना चाहिये । वातश्लेष्मासे उत्पन्न हुए क्षयरोगमें यह औषधि दे ॥ १०९ ॥

शिलाजत्वादिलौहम् ।

क्षिलाजतुमधुव्योपताप्यलोहरजांसि यः ।
क्षीरभुगचिरेणैव क्षयः क्षयमवाप्नुयात् ॥ ११० ॥

भाषा—शिलाजीत, मुलहठी, सोनामक्खी और लोहा इन सब द्रव्योंको एकत्र करके दूधके साथ सेवन करे । इसका नाम शिलाजत्वादि लोह है । इससे शीघ्र क्षयरोगका क्षय होता है ॥ ११० ॥

सूर्यावर्त्तो रसः ।

सूतार्द्धो गन्धको मर्द्यो मार्षैकं कनकाम्बुनाम् ।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ॥
दिनार्द्धं वालुकायन्त्रे पक्वमादाय चूर्णयेत् ।
सूर्यावर्त्तो रसो ह्येष द्विगुंजः श्वासजिद्भवेत् ॥ १११ ॥

भाषा—थोडासा पारा और पारेसे आधा गन्धक एकत्र करके घीकारके रसके साथ एक प्रहरतक घोटे । भली भांतिसे मर्दित होनेपर उस कल्कसे पारा और गन्धक दोनोंके बराबर ताम्रपत्रको लेप करे । फिर वालुकायंत्रमें आधे दिनतक पाक करे । फिर शीतल होनेपर चूर्ण कर ले । इसका नाम सूर्यावर्त्त रस है । इस औषधिको २ रत्ती सेवन करनेसे श्वास पराजित होता है ॥ १११ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्षं शुद्धरसेन्द्रस्य गन्धकस्याभ्रकस्य च । ताम्रस्य हरितालस्य लोहस्य च विषस्य च ॥ मरिचस्य च सर्वेषां श्लक्ष्णचूर्णं पृथक् पृथक् । माणोद्भौ घंटकर्णश्च निर्गुण्डी काकमाचिका ॥ केशराजभृङ्गराजस्वरसेन सुभाविताम् । कलायपरिमाणां तु वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन् परितोष्य च । जीर्णान्नो भक्षयेत्पश्चात् क्षीरमांसरसाशनः ॥

अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति । कासं पंचविधं हन्ति श्वासं चैव सुदुर्जयम् ॥ ११२ ॥

भाषा-एक २ कर्षके परिमाणसे शुद्ध पारा, गन्धक, अभ्रक, ताम्र, हरिताल, लोहा, विष और मिरच इन सब द्रव्योंको भली भांतिसे चूर्ण करे। फिर मानकन्द, जिमीकन्द, पाडर, संभालू, मकोय, कूकरभांगरा, भांगरा इन सबके रसमे अलग २ भावना देकर मटरकी समान गोलिया बनावे। प्रथम महादेवजीकी पूजा कर ब्राह्मणोंको संतोष दिलाय अन्न भक्षण करके जब भोजन जीर्ण हो जाय तब इस औषधिका सेवन करे। इस औषधिको सेवन करतेही दूध और मांसका रस पिये। इस औषधिका नाम रसेन्द्रगुटिका है। जो अम्लपित्त सैकडों वैद्योंकरके त्यागा गया है, वह रोगभी इससे शांत होता है। इससे पांच प्रकारकी खांसी, अजीत जो दमेका रोग है सोभी शान्त होता है ॥ ११२ ॥

हेमाद्रिरसः ।

आच्छादितशिलां ताम्रीं द्विगुणां वालुकाह्वये। पक्त्वा संचूर्ण्य गन्धेशौ दिनार्द्धं तां पुनः पचेत् ॥ श्वासहेमाद्रिनामायं महाश्वासविनाशनः। वर्णवृद्धिकरो ह्येष सुवर्णस्य न संशयः ॥११३॥

भाषा-जितना ताम्रपत्र हो, तिससे आधी मैनशिल लेकर ताम्रपत्रपर लेप करके वालुकायंत्रमे पाक करे। फिर उसको चूर्ण करके तिसके साथ गन्धक और पारो मिलाय आधे दिनतक फिर पाक करे। इस प्रकार करनेसे श्वासहेमाद्रि रस नामक औषधि बनती है। इससे महाश्वासका नाश होता है। यह निःसन्देह सुवर्णकी समान वर्णको बढानेवाली है ॥ ११३ ॥

मेघडम्बरो रसः ।

तंडुलीयद्रवैः पिष्टं सूतं तुल्यं च गन्धकम्। वज्रमूषागतं चैव भूधरे भस्मतां नयेत् ॥ दशमूलकषायेन भावयेत् प्रहरद्वयम्। गुंजाद्वयं हरत्याशु हिक्काश्वासं न संशयः ॥ अनुपानेन दातव्यो रसोऽयं मेघडम्बरः ॥ ११४ ॥

भाषा-बराबर पारा और गन्धक लेकर चौलाईके रसमें खरल कर वज्रमूषामें धरके भूधरयंत्रमे भस्म कर ले फिर दशमूलक्काथमे २ प्रहरतक भावना दे। इसका नाम मेघडम्बर रस है। इसको २ रत्ती सेवन करनेसे हिचकी और श्वास निःसन्देह दूर होता है। यह मेघडम्बर रस उचित अनुपानके साथ प्रयोग करे ॥ ११४ ॥

१ पारा और गन्धक बराबर लेना चाहिये।

पिप्पल्यादिलोहः ।

पिप्पल्यामलकीद्राक्षाकोलास्थिमधुशर्करा- ।
विडङ्गपुष्करैर्युक्तो लौहो हन्ति सुदुर्जयाम् ॥
छर्दिं हिक्कां तथा तृष्णां त्रिरात्रेण न संशयः ॥ ११५ ॥

भाषा–पीपल, आमला, दाख, बेरगुठलीकी मींगी, शहद, मिश्री, विडङ्ग और पुष्कर इन सबके चूर्णके साथ लोहेको मिला लेनेसे पिप्पल्यादि लोह बनता है[1] । इससे दुर्जय वमन, हिचकी और प्यास ३ रातके बीचमें दूर होती है । इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ११५ ॥

ताम्रचक्री ।

ताम्रं चक्रिकया बद्धं सूतं तालं सतुत्थकम् ।
वटांकुररसैर्मर्द्यं तृष्णास्त्वद्वल्लमानतः ॥ ११६॥

भाषा–ताम्रचक्री (तांबेकी चकती), पारा, हरिताल और तूतिया इन सबको बराबर लेकर वडकी कोपलके रसमें पीस ले । इसको १ पल सेवन करनेसे तृष्णा-रोग शान्त हो जाता है[2] ॥ ११६ ॥

उन्मादे पर्पटी हृद्या साजावीपयसान्विता ।
अपस्मारेऽपि तत्प्रोक्तमेतयोराज्यकेन वा ॥ ११७ ॥

भाषा–उन्मादरोगमे बकरीका दूध या भेडके दूधके साथ पर्पटी विशेष हित-कारी है । मृगीरोगमेभी यह औषधि दे । अथवा घृतके साथभी पर्पटीका प्रयोग किया जाता है ॥ ११७ ॥

उन्मादांकुशः ।

त्रिदिनं कनकद्रावैर्महाराष्ट्रीरसैः पुनः । विषमुष्टिद्रवैः सूतं समु-त्थाप्यार्कचक्रिकाम् ॥ कृत्वा तप्तां सगन्धं तं युक्त्या बन्ध-नमानयेत् । तत्समं कानकं बीजमभ्रकं गंधकं विषम् ॥ मर्दयेत्त्रिदिनं सर्वं वल्लमात्रं प्रयोजयेत् ॥ ११८ ॥

भाषा–धतूरा, महाराष्ट्री, कुचला इन सबके रसमें पारेको ३ दिनतक वारंवार खरल करके बराबर गन्धकके साथ तपी हुई ताम्रचकतीसे युक्तिके अनुसार

---

१ वैद्यलोग इस प्रकारकी व्यवस्था देते है कि पिप्पल्यादि पुष्करान्त कई एक द्रव्य बराबर और सब द्रव्योंकी समान लोहा ग्रहण करे ।

२ चिकित्सकलोग ताम्रादि कई एक द्रव्य बराबर लेकर वडकी कोपलके रसमे पीसकर चकती बनाय पुटपाक कर लेते हैं ।

पारेको बांधे। फिर पारेकी बराबर धतूरेके बीज, अभ्रक, गन्धक और विष मिलाय तीन दिनतक मर्दन कर ले। इसका नाम उन्मादांकुश है। इस औषधिकी मात्रा १ वल्ल है ॥ ११८ ॥

त्रिकत्रयाद्यलोहम्।

यद्भेषजमपस्मारे तदुन्मादे च कीर्त्तितम्।
त्रिकत्रयसमायुक्तं जीवनीययुतं त्वयः ॥
हन्त्यपस्मारमुन्मादं वातव्याधिं सुदुस्तरम् ॥ ११९ ॥

भाषा-मृगीके रोगमें जिन २ औषधियोंको कहा है। उन्मादमेंभी उनकाही व्यवहार करे। लोहेके साथ त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिसुगन्ध और जीवनीयगण[1] मिला लेनेसे त्रिकत्रयाद्य लोह बनता है। इससे मृगी, उन्माद और कठोर वातव्याधियोका नाश होता है ॥ ११९ ॥

सुखभैरवरसः।

गन्धालमाक्षिकमयःसुरसाविषाणि सूतेन्द्रटङ्कणकटुत्रयमग्निमन्थम्। शृंगीं शिवां दृढतरं सुरसेभशुण्ठ्योः क्षीरेण घृष्टमनिलामयहारि बद्धम् ॥ रास्नामृतादेवदारुशुण्ठीमुस्तशृतं पयः। सगुग्गुलुं पिबेत् कोष्णमनुपानं सुखावहम् ॥ १२० ॥

भाषा-गन्धक, हरिताल, सोनामक्खी, लोह, संभालू, विष, पारा, सुहागा, त्रिकुटा, गनियारी, काकडासिंगी, शिवा (हरीतकी) इन सबको एकत्र करके संभालू और हस्तिशुण्डीके रसमे भली भांति पीस ले। इससे वातव्याधिका नाश होता है। रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, मोथा इन सबका रस और गूगल इन सबको कुछेक गरम करके अनुपान करे। यह अनुपान सुखकारी है ॥ १२० ॥

विजयभैरवतैलम्।

रसगन्धशिलातालं सर्वं कुर्यात् समांशकम्। चूर्णयित्वा ततः श्लक्ष्णमारनालेन पेषयेत् ॥ तेन कल्केन संलिप्य सूक्ष्मवस्त्रं ततः परम्। तैलाक्तं कारयेद्वर्त्तिमूर्ध्वभागे च तापयेत् ॥ वर्त्यधः स्थापिते पात्रे तैलं पतति शोभनम्। लेपयेत्तेन गात्राणि भक्षणाय च दापयेत् ॥ नाशयेत्सूततैलं तद्वातरोगा-

[1] जीवनीयगण अर्थात् जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुलहठी, मुगवन, मषवन, जीवन्ती। यह समस्त द्रव्य और त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिसुगन्ध यह बराबर ले।

नशेषतः । बाहुकम्पं शिरःकम्पं जंघाकंपं ततः परम् ॥ एकाङ्गं च तथा वातं हन्ति लेपान्न संशयः । रोगशान्त्यै प्रदातव्यं तैलं विजयभैरवम् ॥ १२१ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, मैनशिल और हरिताल इन सब द्रव्योंको बराबर ले महीन पीसकर कांजीके साथ पीसे। फिर उस कल्कसे महीन कपडेके टुकडेपर लेप करे। फिर इस कपडेकी बत्ती बनावे। उस बत्तीको तेलसे भिगोकर उसके ऊपरी भागमे अग्निसे ताप देना चाहिये। नीचेकी ओर एक पात्र स्थापन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे नीचेके पात्रमें अत्युत्तम तेल गिरेगा। वह तैल रोगीके शरीरमें मलनेको दे और रोगीको सेवन करनेके लिये दे। इससे अनेक प्रकारके वातरोग जडसे जाते रहते हैं। इसको शरीरमें लगानेसे बाहुकम्प, शिर कांपना, जांघोंका कांपना, एकाङ्गवातादि निश्चय दूर होते हैं। रोगकी शान्तिके लिये इस विजय-भैरव तैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ १२१ ॥

पिष्टीरसः ।

बाणभागं शुद्धसूतं द्विगुणं गन्धमिश्रितम् । नागवल्लीद्रवैः पिष्टं ततस्तेन प्रलेपयेत् ॥ ताम्रपत्रीं प्रलिप्यैतां रुद्ध्वा गज-पुटे पचेत् । द्विगुंजं त्र्यूषणेनार्द्धवपुर्वातं सकम्पकम् ॥ निह-न्ति दाहसंतापमूर्च्छापित्तसमन्वितम् ॥ १२२ ॥

भाषा–५ भाग शुद्ध पारा, १० भाग गन्धक लेकर पानोके रसमें मर्दन करे फिर उससे ताम्रपत्रपर लेप करके बंद कर दे। गजपुटमे पाक करे इसका नाम पिष्टीरस है। इस औषधिको २ रत्ती लेकर त्रिकुटाके चूर्णके साथ सेवन करनेसे कम्पसहित अर्द्धाङ्गवात, दाह, सन्ताप, मूर्च्छा और पित्तका नाश होता है॥१२२॥

कालकण्टकरसः ।

वज्रसूताभ्रहेमार्कतीक्ष्णमुण्डं क्रमोत्तरम् । मारितं मर्द्दयेदम्ल-वर्गेण दिवसत्रयम् ॥ त्रिक्षारं पंचलवणं मर्द्दितस्य समं मतम् । दत्त्वा निर्गुण्डिकाद्रावैर्मर्द्दयेद्दिवसत्रयम् ॥ शुष्कमेतद्विचूर्ण्याथ विषं चास्याष्टमांशतः । टङ्कणं विषतुल्यांशं दत्त्वा जम्बीरज-द्रवैः ॥ भावयेद्दिनमेकं तु रसोऽयं कालकंटकः । दातव्यो वातरोगेषु सन्निपाते विशेषतः ॥ द्विगुञ्जमार्द्रकद्रावैर्घृतैर्वा

वातरोगिणाम् । निर्गुण्डीमूलचूर्णं तु महिषाख्यं च गुग्गुलुम् ॥ समांशं मर्दयेदाज्ये तद्वटी कर्षसम्मिता । अनुयोज्या घृतैर्नित्यं स्निग्धमुष्णं च भोजनम् ॥ मण्डलान्नाशयेत्सर्वान् वातरोगान्न संशयः । सन्निपाते पिबेच्चानु रविमूलकषायकम् ॥१२३॥

भाषा-मारित हीरा, पारा, अभ्रक, सुवर्ण, ताम्र और मुण्डलोह इन सब द्रव्योंको क्रमानुसार एक २ भाग बढाकर ग्रहण करे । अर्थात् एक भाग मारित हीरा, २ भाग पारद भस्म, ३ भाग मृत अभ्रक, ४ भाग मारित स्वर्ण, पांच भाग मृतक ताम्र और ६ भाग मारित मुण्डलोह लेकर ३ दिन अम्लवर्गके रसमें मर्दन करे । फिर इन मर्दित द्रव्योंको बराबर त्रिक्षार और पंचलवण मिलाकर संभालूके रसमें ३ दिनतक खरल करे । फिर उसको सूख जानेपर चूर्ण करके सब द्रव्योंसे आठवां अंश विष और विषकी बराबर सुहागा मिलाय जम्बीरीके रसमें एक दिन भावना दे । इसका नाम कालकण्टक रस है । वातरोगमें विशेष करके सन्निपातमें यह औषधि दे । वातरोगीको अदरखके रस और घीके साथ यह औषधि २ रत्ती सेवन करनेको दे । संभालूकी जडका चूर्ण और भैंसिया गूगल बराबर लेकर घीके साथ पीसके कर्षभरकी गोलियां बनाय प्रतिदिन घृतके साथ रोगीको सेवन करावे । इसको सेवन करनेके पीछे चिकने और गरम द्रव्य भोजन करे । इससे सर्व प्रकारके वातरोग और मण्डल निःसन्देह नाशको प्राप्त होते हैं । सन्निपातमें इस औषधिको सेवन करके आककी जडका क्वाथ पिये ॥ १२३ ॥

अर्केश्वरो रसः ।

रसस्य भागाश्चत्वारो गन्धकस्य दशैव तु । ताम्रस्य वाटिकायां च दत्त्वा चैतामधोमुखीम् ॥ सम्यक् निरुध्य तस्याश्च दद्यादूर्ध्वं शरावकम् । भाण्डे निरुध्य यत्नेन भस्मनापूर्य भाण्डकम् ॥ अग्निं प्रज्वालयेद्यामं मुखं तस्य निरुध्य च । स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य तत्ताम्रं चूर्णयेद्भृशम् ॥ भावयेदर्कदुग्धेन पुटित्वा दशधा पुनः । रसोऽर्केश्वरनामायं लवणादिविवर्जितः ॥ माषमात्रप्रयोगेण मंडलादिविनाशनः ॥ १२४ ॥

भाषा-एक तांबेकी बनी हुई वाटीमें ४ भाग पारा और १० भाग गन्धक रखके वाटी नीचेको मुखकर ओर पात्रमें रखके सरैयासे ढके और पात्रको राखसे भरके मुँह बन्द कर प्रहरतक आंच दे । ठंडा होनेपर औषधि लेकर चूर्ण करे ।

फिर आकके दूधमें मर्दन करके १० पुट दे । (थालीमें गन्धकके साथ पुट देना चाहिये) इसका नाम अर्केश्वर रस है । इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमें लवणादिको छोड दे । इस औषधिकी एक मासा मात्रा सेवन करनेसे मण्डलादिका नाश हो जाता है ॥ १२४ ॥

तालकेश्वररसः ।

एकभागो रसस्यास्य शुद्धतालकभागिकः । अष्टौ स्युर्विजयायाश्च गुटिकां गुडतः शुभाम् ॥ एकैकां भक्षयेत् प्रातश्छायायामुपवेशयेत् । तालकेश्वरनामायं योगोऽस्पर्शविनाशनः ॥ मंडलं च निघृष्याथ चित्रकेणोपलेपयेत् । अल्पास्पर्शप्रदोषे तु रक्तं निःसार्य देशतः ॥ विषलेपं प्रकुर्वीत वातारिबीजलेपनम् ॥ १२५ ॥

भाषा—पारा १ भाग, शुद्ध हरिताल १ भाग, भंगका चूर्ण ८ भाग इनको गुडके साथ मिलाय गोलियां बनावे । सवेरेही एक गोली सेवन करके छायामे बैठे । इसका नाम तालकेश्वर रस है । इससे अस्पर्शता रोगका नाश होता है । जहांपर दाद हो गये हैं, उस स्थानको घिसकर तहांपर पानीमें पीसी हुई चित्रककी जडका लेप करे । थोडा २ अस्पर्शतादोष उत्पन्न होवे तो वहांसे रुधिर निकालकर विषका लेप करे या अरण्डीके बीज पीसकर लेप कर दे ॥ १२५ ॥

अर्केश्वरो रसः ।

रसेन दग्धं द्विगुणं विमर्द्य ताम्रस्य चक्रेण सुतापितेन । आच्छादयित्वाथ ततः प्रयत्नाच्चक्रे विलग्नं च ततः प्रगृह्य ॥ संचूर्ण्य च द्वादशधार्कदुग्धैः पुटेत वह्नित्रिफलाजलैश्च । सम्भावितोऽर्केश्वर एष सूतो गुंजाद्वयं चास्य फलत्रयेण ॥ ददीत मासत्रितयेन सुप्तिवाताद्विमुक्तो हि भवेद्धिताशी । क्षारं सुतीक्ष्णं दधिमांसमाषं वृन्ताकमध्वादिविवर्जनीयम् ॥ १२६ ॥

भाषा—पारेके साथ दूना गन्धक मिलाय खरल करके तपी हुई तांबेकी चकतीसे ढककर रखे । फिर चकतीमें लगी हुई औषधि यत्नसहित लेकर चूर्ण करके आकका दूध, चित्रकरस और त्रिफलाके क्काथसे बारह पुट दे । इसका नाम अर्केश्वर रस है । इस औषधिको २ रत्ती लेकर त्रिफलाके पानीके साथ सेवन करनेसे ३ मासमें

सुप्तिवातसे छुटकारा हो जाता है । परन्तु रोगीको हितकारी द्रव्य भोजन करने चाहिये । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे तीक्ष्ण, क्षार, दही, मांस, उर्द, बैंगन और सहदको छोड देना चाहिये ॥ १२६ ॥

सिद्धतालकेश्वरः ।

तालसत्वं चतुर्थांशं सूतं कृत्वा च कज्जलीम् । सोमराजीकषायेण मर्दयित्वा पुनः पुनः ॥ अधो भूधरगं पाच्यं काचकूप्यां दिनत्रयम् । तालेन सदृशं किञ्चिदौषधं कुष्ठरोगिणाम् ॥ नास्ति वातविकारघ्नं ग्रन्थिशोथनिवारणम् ॥ १२७ ॥

भाषा-हरितालसत्व और उससे चौथाई पारा लेकर कज्जली बनावे । फिर बावचीके कषायसे वारंवार मर्दन करके शीशीमे भरकर ३ दिनतक अधोभूधरयंत्रमें पाक करे । इसका नाम सिद्धतालकेश्वर है । इसकी समान कुष्ठका नाश करनेवाली, वातविकारनाशक और ग्रन्थिशोथनिवारक दूसरी औषधि नहीं है ॥ १२७ ॥

त्रिगुण्याख्यरसः ।

गन्धकाष्टगुणं सूतं शुद्धं मृद्वग्निना क्षणम् । पक्त्वावतार्य संचूर्ण्य चूर्णतुल्याभयायुतम् ॥ सप्तगुंजामितं खादेद्वर्द्धयेच्च दिने दिने । गुंजैकैकं क्रमेणैव यावत् स्यादेकविंशतिः ॥ क्षीराज्यं शर्करामिश्रं शाल्यन्नं पथ्यमाचरेत् । कम्पवातप्रशान्त्यर्थं निर्वाते निवसेत्सदा ॥ त्रिगुणाख्यो रसो नाम त्रिपक्षात् कम्पवातनुत् ॥ १२८ ॥

भाषा- गन्धक शुद्ध ले, गन्धकसे ८ गुण शुद्ध पारा ले एकत्र कर कुछ बिलम्बतक मन्दी आंचसे पाक करे । फिर उतारकर चूर्ण करे, उस चूर्णकी बराबर हरीतकीका चूर्ण मिलावे । इस औषधिकी मात्रा ७ रत्ती सेवन करे । प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर इक्कीस रत्तीतक बढावे । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे दूध, घी और मिश्री मिलाकर साठीका भात खाय । कंपवातकी शान्तिके लिये इस औषधिका सेवन करके ऐसे स्थानमें बैठे जहां हवा न हो । इस औषधिका नाम त्रिगुणाख्य रस है । इससे तीन पक्षमें कंम्पवातका नाश हो जाता है ॥ १२८ ॥

रक्तपित्ते च ये योगास्तान् पित्तेष्वपि योजयेत् ॥ १२९ ॥

भाषा-रक्तपित्तरोगमें जो योग कहे हैं, पित्तमेंभी वह प्रयोज्य हैं ॥ १२९ ॥

लेपसूतः ।

कनकभुजगवल्लीमालतीपत्रमूर्वादलरसकुनटीभिर्मर्दितस्तैल-
योगात् । अपहरति रसेन्द्रः कुष्ठकण्डूविसर्पस्फुटितचरणरन्ध्रं
श्यामलत्वं नराणाम् ॥ अस्य तैलस्य लेपेन वातरक्तः प्रशा-
म्यति ॥ १३० ॥

भाषा-धतूरेके पत्ते, पान, मालतीके पत्ते, मूर्वाके पत्ते और कुनटी इन सबके रसयोगमें तेल पीसकर तिसका लेप करनेसे कोढ, दाद, विसर्प, चरणस्फोट और अंगका सांवरापन जाता रहता है । इस तेलका लेप करनेसे वातरक्त शान्त होता है । इसका नाम लेपसूत है ॥ १३० ॥

गुडूचीलोहः ।

गुडूचीसारसंयुक्तं त्रिकत्रयसमन्वयात् ।
वातरक्तं निहन्त्याशु सर्वरोगहरोऽपि सन् ॥ १३१ ॥

भाषा-गिलोयका सत, त्रिकुटा, त्रिफला और त्रिसुगन्ध इन सब द्रव्यों के साथ लोहेको मर्दन करनेसे गुडूचीलोह बनता है । इस सर्वरोगनाशक औषधिसे शीघ्र वातरक्तका नाश होता है । वैद्यलोग सतगिलोय आदि समस्त द्रव्य बराबर और सबकी समान लोहा ग्रहण करते हैं । यद्यपि मूलमें लोहेका जिकर नहीं है, तथापि लोहा समझना चाहिये ॥ १३१ ॥

वातविध्वंसनरसः ।

प्रक्षिप्य गन्धं रसतुल्यभागं कलाप्रमाणं च विषं समन्तात् ।
कृशानुतोयेन च भावयित्वा वल्लं ददीतास्य मरुत्प्रशान्त्यै ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सर्वांगव्यथनेऽपि च । देयोऽयं वल्लमा-
त्रस्तु सर्ववातनिवृत्तये ॥ १३२ ॥

भाषा-पारा और गन्धक बराबर इन दोनों द्रव्योंसे षोडशांश विष इन सबको मिलाय चित्रकके क्वाथमें भावना दे । इसका नाम वातविध्वंसन रस है । वातरोगकी शान्तिके लिये इसकी १ वल्ल मात्रा प्रयोग करे । मृगी, उन्माद, सब अंगोंका दर्द और सर्व प्रकारके वातरोगमे इस औषधिको एक वल्ल प्रयोग करे ॥ १३२ ॥

आमवातारिः ।

एरण्डमूलत्रिफलागो मूत्रं चित्रकं विषम् ।
गुंजैका घृतसंपन्ना सर्वान् वातान् विनाशयेत् ॥ १३३ ॥

भाषा-अंडकी जड,त्रिफला, गोमूत्र,चीता और विष इन सब द्रव्योंको एकत्र करके एक २ रत्तीकी मात्रासे प्रयोग करे। घीके साथ सेवन करे। सब द्रव्योको बराबर ग्रहण करे। इससे सब प्रकारके वातरोग नष्ट होते हैं। इसका नाम आमवातारि है ॥ १३३ ॥

वृद्धदाराद्यलोहम् ।

वृद्धदारत्रिवृद्दन्तिकरिकर्णाग्निमानकैः ।
त्रिकत्रयसमायुक्तमामवातान्तकं त्वयः ॥
सर्वानेव गदान् हन्ति केसरी करिणीर्यथा ॥ १३४ ॥

भाषा-विधायरेके वीज, निसोत, दन्ती, हस्तिपलाशकी जड,चित्रकमूल, मानकन्द, त्रिकुटा, त्रिफला, सुगन्ध इन सबके साथ बराबर लोहा मिलाय ले तो आमवातका नाश करनेवाला वृद्धदाराद्य लोह बनता है। सिंह जिस प्रकार हथिनीका नाश करता है, वैसेही यह औषधि रोगराशिका ध्वंस करती है ॥ १३४ ॥

आमवातारिवटिका ।

रसगन्धकलौहार्कतुत्थटङ्कणसैन्धवान् । समभागैर्विचूर्ण्याथ चूर्णात् द्विगुणगुग्गुलुः ॥ गुग्गुलोः पादिकं देयं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् । तत्समं चित्रकस्याथ घृतेन वटिकां कुरु ॥ खादेन्माषद्वयं चेदं त्रिफलाजलयोगतः । आमवातारिवटिका पाचिका भेदिका ततः ॥ आमवातं निहन्त्याशु गुल्मशूलोदराणि च । यकृत्प्लीहानमष्ठीलां कामलां पांडुमुग्रकम् ॥ हलीमकाम्लपित्ते च श्वयथुं श्लीपदार्बुदौ । ग्रन्थिशूलं शिरःशूलं गृध्रसीं वातरोगहा ॥ गलगण्डं गण्डमालां कृमिकुष्ठविनाशिनी । आध्मानविद्रधिहरी चोदरव्याधिनाशिनी ॥ आमवाते ह्यतीवेगे दुग्धं मुद्गांश्च वर्जयेत् ॥ १३५ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोह, ताम्र, तूतिया, सुहागा, सेंधा इन सब द्रव्योंको बराबर ग्रहण करके चूर्ण करे फिर चूर्णसे दूना गूगल, गूगलसे चौथाई श्रेष्ठ त्रिफलाचूर्ण और त्रिफला चूर्णकी बराबर चित्रकचूर्ण इन सबको एकत्र करके घीके साथ मर्दन कर दो२ मासेकी एक गोली बनावे। त्रिफलाजलके साथ यह गोलियां सेवन करे। इसका नाम आमवातारिवटिका है। यह पाचक और भेदक है। इस औषधिसे

आमवात, गोला, शूल, उदररोग, यकृत, तिल्ली, अष्ठीला, कामला, पाण्डु, हलीमक, अम्लपित्त, श्वयथू, श्लीपद, अर्बुद, ग्रंथिशूल, दर्दशिर, गृध्रसी, वातरोग, अफरा, विद्रधि और उदरव्याधिका नाश होता है। आमवात अत्यन्त उग्र हो तो दूध और मूंगको छोड देना चाहिये ॥ १३५ ॥

विद्याधराभ्रम् ।

विडङ्गमुस्तत्रिफला गुडूची दन्ती त्रिवृच्चित्रकटूनि चैव। प्रत्येकमेषां पलभागचूर्णं पलानि चत्वार्ययसो मलस्य ॥ गोमूत्रसिद्धस्य पुरातनस्य किंवास्य देयानि भिषग्वरैश्च। कृष्णाभ्रचूर्णस्य पलं विशुद्धं निश्चंद्रकं श्लक्ष्णमतीव सूतात् ॥ पादोनकर्षं स्वरसेन खल्वे शिलातले वा तंडुलीयकस्य । संशोष्य पश्चादतिशुद्धगन्धपाषाणचूर्णेन पलसम्मितेन ॥ युक्त्या ततः पूर्वरजांसि दत्त्वा सर्पिर्मधुभ्यामवमर्द्य यत्नात्। निधापयेत् स्निग्धविशुद्धभाण्डे ततः प्रयोज्योऽस्य रसायनस्य॥ प्राङ्मापकौ द्वावथ वा त्रयो वा गव्यं पयो वा शिशिरं जलं वा। पिबेदयं योगवरः प्रभूतकालप्रणष्टानलदीपकश्च ॥ योगो निहन्यात् परिणामशूलं शूलं तथान्नद्रवसंज्ञकं च । यक्ष्माम्लपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां जीर्णज्वरं लोहितकं च कुष्ठम् ॥ न सन्ति ते यान् न निहन्ति रोगान् योगोत्तमः सम्यगुपास्यमानः ॥ १३६ ॥

भाषा—वायविडङ्ग, मोथा, त्रिफला, गिलोय, दन्ती, निसोथ, चीता, त्रिकुटा इन सबका चूर्ण एक २ पल ले गोमूत्रमें सिद्ध किया हुआ पुराना लोहमल ४ पल, शुद्ध कृष्णाभ्रचूर्ण एक पल, विना कणका शुद्ध पारदचूर्ण सवा कर्ष इन सब चीजोंको एकत्र करके शिलातलपर अथवा खरलमे चौलाईके रसमे पीसे। फिर एक पल अतिशुद्ध गन्धकके साथ यह द्रव्य मिलाय घी और सहदके साथ यत्नसहित मर्दन करके साफ चिकने पात्रमें रक्खे। फिर रोगमे प्रयोग करे। इसका नाम विद्याधराभ्र है। पहले इसकी २ मासे या ३ मासे मात्रा लेकर गायके दूधके साथ या वरफके पानीके साथ सेवन करे। इस योगश्रेष्ठसे वहुत दिनकी पुरानी मन्दाग्नि दूर होती और अग्नि प्रदीप्त होती है । यह परिणामशूल, अन्नद्रवशूल, यक्ष्मा, अम्लपित्त, दारुण ग्रहणी, जीर्णज्वर और लाल कुष्ठका नाश करता है। यह

योगराज भली भांतिसे प्रयुक्त होनेपर ऐसा कोई रोग नहीं है जिसका नाश न कर सके ॥ १३६ ॥

पथ्यालौहम् ।

पथ्या लौहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।
परिणामरुजं हन्ति वातपित्तकफान्विताम् ॥ १३७ ॥

भाषा-हरीतकीचूर्ण, लौहभस्म और सोठका चूर्ण एकत्र करके सहत और घीके साथ मिलाय सेवन करनेसे वात, पित्त और कफसे उत्पन्न हुआ परिणामशूल जाता रहता है। इसका नाम पथ्यालौह है । हरीतकीचूर्ण और सोठ बराबर ग्रहण करना चाहिये ॥ १३७ ॥

कृष्णाभ्रलोहम् ।

कृष्णाभया लौहचूर्णं लेहयेन्मधुसर्पिषा ।
परिणामभवं शूलं सर्वं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ १३८ ॥

भाषा-पीपलका चूर्ण, अभयाचूर्ण (हरीतकीचूर्ण), लौहभस्म सहत और घीके साथ मिलाकर चाटे तो त्रिदोषसे उत्पन्न हुआ सर्व प्रकारका परिणामशूल दूर होवे । इसका नाम कृष्णाभ्रलोह है । पीपलचूर्ण, हरीतकीचूर्ण और लौहभस्म बराबर ग्रहण करे ॥ १३८ ॥

मध्यपानीयभक्तगुटिका ।

कृष्णाभ्रलौहमलशुद्धविडंगचूर्णं प्रत्येकमेकपलिकं विधिवद्विधाय । चव्यं कटुत्रयफलत्रयकेशराजदन्तीपयोदचपलानलखंडकर्णाः॥ माणौल्लशुक्तबृहतीत्रिवृताः ससूर्यावर्त्ताः पुनर्नवकश्च सहितं त्वमीषाम् । मूलं प्रति प्रतिसुशोधितमक्षमेकं चूर्णं तदर्द्धरसगन्धकसंयुतं च ॥ कृत्वार्द्रकीयरससंवलितं च भूयः संपिष्य तस्य विधिवद्गुटिका कृता सा । हन्त्यम्लपित्तमरुचिं ग्रहणीमसाध्यां दुर्नामकामलभगन्दरशोथशोथान् ॥ शूलं च पाकजनितं सततं च मन्दं सद्यः करोत्युपचितं चिरमन्दमग्निम् । कुष्ठान्निहन्ति पलितं च वलिं प्रवृद्धां श्वासं च कासमपि पांडुगदान्निहन्यात् ॥ वार्य्यन्नमाषदधिकांजिकमत्स्यतक्रवृक्षाम्लतैलपरिपक्वभुजो यथेष्टम् । शृंगाटबिल्वगुडकं वटना-

रिकेलदुग्धानि सर्वविदलं कदलीफलं च ॥ व्यायाममैथुनपरिश्रमवह्नितापतप्ताम्बुपानपनसादि विवर्ज्जयेत्तु ॥ १३९ ॥

भाषा—कृष्णाभ्र, लौहमल, शुद्ध विडङ्ग, विधिविधानसे इन सबका चूर्ण करके प्रत्येक वस्तुका चूर्ण एक पल ग्रहण करे । फिर चव्य, त्रिकुटा, त्रिफला, कुकुरभांगरा, दन्ती, पयोद (मोथा), चपला (पीपल), अनल (चित्रक), खण्डकर्ण, मानकन्द, श्वेत कटेरी, त्रिवृत्, हुलहुल, सांठ इन सबकी जडका चूर्ण एक अक्ष अर्थात् २ तोले । इनके साथ पहला कहा हुआ कृष्णाभ्रादिका चूर्ण मिलाय समस्त चूर्णसे आधा पारा और गन्धक मिलावे । फिर अदरखके रसमे पीसकर विधिके अनुसार गोलियां बनावे । इसका नाम मध्यपानीयभक्तगुटिका है । यह औषधि अम्लपित्त, अरुचि, असाध्य ग्रहणी, दुर्नामा, कामला, भगन्दर, शोष, शोथ और पाकसे उत्पन्न हुआ मन्दशूल नष्ट करती है । इससे पुरानी मन्दाग्नि सतेज होती है । यह गुटिका कोढ, वली, पलित, दमा, खांसी और पाण्डुको दूर करती है । इसको सेवन करके उर्द, जलयुक्त भात (पतला), दही, कांजी, मछली, घोल, इमली, तेलमे पके हुए द्रव्य, सिंगाडा, बेल, गुड, वड, नारियल, दूध, समस्त विदल द्रव्य, केलेकी फली, कसरत, मैथुन, परिश्रम, अग्निताप, गरम जल पीना और कटहर आदि छोड दे । यह औषधि सेवन करे पीछे अदरखका रस और जलका अनुपान करे ॥ १३९ ॥

पीडाभञ्जी रसः ।

व्योमपारदगन्धाश्च जयपालकटंकणान् । वह्निचन्द्रशशिद्विद्विभागान् जम्भाम्भसा त्र्यहम्॥ पिष्ट्वा कोलमिताः कृत्वा गुडकांजिकतो वटीः । वितरेदामशूलादौ कृमिशूले विशेषतः ॥ पथ्यं तक्रोदनं चात्र स्तम्भार्थं शीतलाः क्रियाः ॥ १४० ॥

भाषा—अभ्रक, पारा, गन्धक, जमालगोटा, सुहागा ये सब द्रव्य यथाक्रमसे अग्नि, चन्द्रमा, शशी और दो २ भाग अर्थात् ३ भाग अभ्रक, एक भाग पारा, एक भाग गन्धक, दो भाग जमालगोटा और २ भाग सुहागा इन सबको इकट्ठा करके नींबूके रसमें ३ दिन पीसकर कोलभरकी एक गोली बनावे । आमशूलादिमें विशेष करके कृमिरोगमें यह गोली गुड और कांजीके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेके पीछे तक्रयुक्त अन्न पथ्य करे और स्तम्भनके लिये शीतल क्रिया करे ॥ १४० ॥

शंखवटी ।

चिंचाक्षारपलं पटुव्रजपलं निम्बूरसे कल्कितं
तस्मिन् शंखपलं सुतप्तमसकृन्निर्वाप्य शीर्णाविधि ।
हिंगुव्योषपलं रसामृतवलीन्निक्षिप्य निष्कांशिकान्
रुद्धा शंखवटी क्षयग्रहणिकारुक्पंक्तिशूलादिषु ॥ १४१ ॥

भाषा-एक पल इमलीका क्षार, जंवीरीके रससे कल्क किया हुआ पंच लवण इन दोनोंके साथ तप्त शंखभस्म एक पल मिलावे । फिर एक पल हींग, त्रिकुटा और निष्कभर पारा, विष और गन्धक डालकर मिलावे । फिर यथाविधिसे गोली वनावे । यह शंखवटी नामक औषधि क्षय, ग्रहणी और पंक्तिशूलमें प्रयोग करे ॥ १४१ ॥

शुद्धसुन्दरो रसः ।

समं ताम्रदलं लिप्त्वा रसेन्द्रेण द्विगंधकम् । मृद्वस्त्रेण समावेष्ट्य पटुयन्त्रे पुटं ददेत् ॥ संचूर्ण्य हेमवातारि चित्रकव्योषजैर्द्रवैः । षोडशांशं विषं दत्त्वा चूर्णयित्वास्य वल्लकम् ॥ प्रागुक्तैरनुपानैश्च सद्यो जातं च वातजम् । कफजं पंक्तिशूलं च हन्यात् श्रीशिवशासनात् ॥ १४२ ॥

भाषा-पारा, पारेसे दूना गन्धक एक साथ कज्जली करके तिससे वरावर भागके ताम्रपत्रपर लेप करके मिट्टीसे लिपे वस्त्रसे लपेटकर लवणयंत्रमें पुट दे । फिर धतूरा, अरंड, चीता, त्रिकुटा इनके क्वाथमे भावना देकर सोलहवां भाग विषका मिलाकर चूर्ण करे । यह औषधि एक वल्ल पहले कहे हुए अनुपानके साथ सेवन कराई जाती है । इससे शीघ्र उत्पन्न हुए वातज और कफज पंक्तिशूलका नाश होता है। श्रीमहादेवजीने ऐसी अनुमति की है । इस औषधिका नाम शुद्धसुन्दर रस है॥१४२॥

ज्वरशूलहरो रसः ।

रसगन्धकयोः कृत्वा कज्जलीं भांडमध्यगाम् । तत्राधोवदनां ताम्रपात्रीं संरुध्य शोषयेत्॥ पादांगुष्ठप्रमाणेन चुल्ह्यां ज्वालेन तां दहेत् । यामद्वयं ततस्तत्स्थं रसपात्रं समाहरेत् ॥ संचूर्ण्य गुंजायुगलं त्रितयं वा विचक्षणः । ताम्बूलदलयोगेन विद्यात् सर्वज्वरप्रणुत् ॥ जीरसैन्धवसंलिप्तवक्राय ज्वरिणे दिनम् ।

अस्य सुप्रावृतस्यात्र यामार्द्धाद्धिज्वराकृतिः ॥ स्वेदोद्गमो भवत्येव देवि सर्वेषु पाप्मसु । चातुर्थिकादीन् विषमान् नवमागामिनं ज्वरम् ॥ साधारणं सन्निपातं जयत्येव न संशयः ॥ १४३ ॥

भाषा–पहले पारे और गन्धककी एक साथ कज्जली करके एक पात्रमें रखकर तिसके ऊपर एक तांबेका वर्त्तन उलटा नीचेको मुख करके रक्खे । मुख बन्द कर दे । फिर सूख जानेपर चूल्हेके ऊपर चढाय पादाङ्गुष्ठके परिमाणसे आंच दे । २ प्रहरतक आंच देनेपर तिस पात्रकी औषधिको ग्रहण करके चूर्ण कर ले । चतुर वैद्यको चाहिये इस औषधिको २ या ३ रत्ती पानके साथ सेवन करावे । इससे सब ज्वर दूर होते हैं । इसका नाम ज्वरशूलहर रस है । इस औषधिको सेवन कराकर ज्वररोगीके मुखमे जीरा और सेंधा रखके एक दिन बैठाये रहे । उसके शरीरको कपडेसे ढके रहे । आधे प्रहरमें पसीना आनेसे ज्वर दूर हो जाता है । इस औषधिसे चौथइया, विषम, नूतन, आगामी, साधारण, सन्निपात और निःसन्देह सर्व प्रकारके ज्वरोका नाश हो जाता है ॥ १४३ ॥

शूलगजकेसरी रसः ।

शुद्धसूतं तथा गन्धं यामैकं मर्द्दयेद्दृढम् । द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् ॥ ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भाण्डे धारयेद्भिषक् । ततो गजपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ संपुटं चूर्णयेत् सूक्ष्मं पर्णखण्डे द्विगुंजकम् । भक्षयेत् सर्वशूलार्त्तो हिंगु शुण्ठी च जीरकम् ॥ वचा मरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् । असाध्यं साधयेच्छूलं रसः स्याच्छूलकेसरी ॥ १४४ ॥

भाषा–शुद्ध पारा और गन्धक बराबर लेकर एक प्रहरतक भली भांति खरल करे । फिर दोनोमें बराबर शुद्ध ताम्र मिलाकर मिट्टीके पात्रमें रख ऊपर और नीचे दोनो ओर नमकके पुट लगाय वंद कर दे । फिर गजपुटमें पाक करे । शीतल होनेपर चूर्ण कर ले । इस औषधिको २ रत्ती लेकर पानके साथ सेवन करे । इसको सेवन करनेके पीछे शूलरोगी हींग, सोंठ, जीरा, वच और मिरच इन सबका चूर्ण एक कर्षभर लेकर गरम जलके साथ पिये । यह शूलगजकेसरी रस असाध्य शूलकाभी नाश करता है ॥ १४४ ॥

चतुःसमलौहम्।

अभ्रस्ताम्रं रसं लौहं प्रत्येकं संस्कृतं पलम्। सर्वमेतत् समाहृत्य गृह्णीयात्कुशलो भिषक्॥ आज्ये पलद्वादशके दुग्धे वत्सरसंख्यके। पक्त्वा तत्र क्षिपेत् चूर्णं संपूतं घनतन्तुना॥ विडङ्गत्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च। पिष्ट्वा पलोन्मितानेतान् यथा संमिश्रितान्नयेत्॥ ततः पिष्टं शुभे भाण्डे स्थापयेत्तु विचक्षणः। आत्मनः शोभने चाह्नि पूजयित्वा रविं गुरुम्॥ घृतेन मधुना पिष्ट्वा भक्षयेन्मापकादिकम्। अष्टौ मासान् क्रमेणैव वर्द्धयेत्तु समाहितः॥ अनुपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा। जीर्णे लोहितशाल्यन्नं दुग्धमांसरसादयः॥ रसायनाविरुद्धानि चान्यान्यपि च कारयेत्। हृच्छूलं पार्श्वशूलं च आमवातं कटीग्रहम्॥ गुल्मशूलं शिरःशूलं यकृत्प्लीहौ विशेषतः। कासं श्वासमग्निमान्द्यं क्षयं कुष्टं विचर्चिकाम्॥ अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन नाशयेत्॥ १४५॥

भाषा–चतुर वैद्यको चाहिये कि शुद्ध अभ्रक, तांबा, पारा और लोहा प्रत्येकको एक २ पल ले। फिर बारह पल घी और १२ पल दूधके साथ लिखे हुए अभ्रकादि द्रव्य एक साथ पाक करके तिसमे वायविडङ्ग, त्रिफला, चित्रक, त्रिकुटा इन सबका चूर्ण एक २ पल डाले। इन चूर्णोंको मोटे कपडेमे छान लेना चाहिये फिर चतुर वैद्य उसको भली भांतिसे पीसकर साफ पात्रमें रक्खे। इसका नाम चतुःसमलौह है। रोगीको उचित है कि शुभ दिनमें सूर्य भगवान् और गुरुजीकी पूजा करके घी और शहदके साथ इस औषधिका सेवन करे। एक मासेसे आरम्भ करके ८ मासेतक मात्रा वढावे। दूध या नारियलका जल इसका अनुपान है। औषधि पच जानेपर लाल चावलका भात, दूध, मांसका जूस व रसायनके अविरुद्ध और द्रव्य पथ्य करे। इससे हृदयका शूल, बगलका शूल, आमवात, कटिग्रह, गुलमशूल, शिरः शूल, यकृत, तिल्ली, खासी, दमा, मन्दाग्नि, खई, कुष्ठ, विचर्चिका, पथरी, मूत्रकृच्छ्रादि निःसन्देह नाशको प्राप्त होते हैं॥ १४५॥

त्रिकाद्यलौहः।

त्रिकत्रयसमायुक्तं तालमूलं शतावरी।

योगो निहन्ति शूलानि दारुणान्ययसो रजः ॥१४६॥

भाषा-लौहभस्मके साथ त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिसुगन्धि, तालमूली और शतावरीका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे दारुण शूलरोग जाता रहता है । इसका नाम त्रिकाद्यलौह है । त्रिकत्रयादि अर्थात् त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिसुगन्धिका चूर्ण बराबर ले और लौहभस्म सब चूर्णके वजनकी समान ले ॥ १४६ ॥

लौहाभयचूर्णम् ।

मूत्राम्भःपाचितां शुष्कां लौहचूर्णसमन्विताम् ।
सगुडामभयां दद्यात् सर्वशूलप्रशान्तये ॥ १४७ ॥

भाषा-गोमूत्रपाचित और शुष्क लौहचूर्ण व हरीतकी चूर्ण एकत्र करके गुड मिलाकर सेवन करे तो सब प्रकारके शूल नष्ट हों । इसका नाम लौहाभय चूर्ण है ॥ १४७ ॥

शर्करालौहः ।

त्रिफलायास्ततो धात्र्याश्चूर्णं वा काललोहजम् ।
शर्कराचूर्णसंयुक्तं सर्वशूलेषु लेहयेत् ॥१४८॥

भाषा-त्रिफलाका चूर्ण और लौहचूर्ण अथवा केवल आमलकीचूर्ण और लौहचूर्ण एकत्र करके तिसके साथ मिश्री मिलाय शूलरोगीको चटावे । सब द्रव्योंका चूर्ण एक २ भाग और आंवलेके चूर्णको दूना ग्रहण करना चाहिये ॥ १४८ ॥

त्रिफलालौहः ।

संयुक्तं त्रिफलाचूर्णं तीक्ष्णायश्चूर्णमुत्तमम् ।
प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलविनाशनम् ॥ १४९ ॥

भाषा-त्रिफलाचूर्ण और तीक्ष्ण लौहचूर्ण एकत्र करके सहत और घीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारका शूल जाता रहता है । इसका नाम त्रिफलालौह है ॥ १४९ ॥

अम्लपित्तान्तकः ।

मृतसूताभ्रलौहानां तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् ।
माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ १५० ॥

भाषा-रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा और हरीतकी इन सब पदार्थोंको बराबर

लेकर पीसे । एक मासा शहदके साथ सेवन करे तो अम्लपित्त शान्त होवे। इसका नाम अम्लपित्तान्तक रस है[1] ॥ १५० ॥

लीलाविलासो रसः ।

रसो बलिर्व्योम रविस्तु लोहं धात्र्यक्षनीरैस्त्रिदिनं विमर्द्य । तदल्पभृष्टं मृदुमार्करेण[2] संमर्दयेदस्य च वल्लयुग्मम् ॥ हन्त्यम्लपित्तं मधुनावलीढं लीलाविलासो रसराज एषः । दुग्धं सकूष्माण्डरसं सधात्रीफलं शनैस्तत् ससितं भजेद्वा[3] ॥ १५१ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, अभ्रक, ताम्र, लोह इन सबको बराबर ले आमले और बहेडेके रसमें ३ दिन खरल करे । फिर भांगरेके रसमें खरल करके ६ रत्तीकी गोलियां बनावे । शहदके साथ इस औषधिको चाटनेसे अम्लपित्तका नाश हो जाता है । यह लीलाविलास रस है । इसका अनुपान दूध, पेठेका रस, आमलेका रस और मिश्री है ॥ १५१ ॥

क्षुधावती वटिका ।

गगनाद्द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम् । लौहकिट्टयाः पलं चार्द्धं सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैः पुनः । वराभृङ्गकेशराजकणामारिषजैः रसैः ॥ त्रिफलाभद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विचूर्णितम् । रसगन्धकयोः कर्षं प्रत्येकं ग्राह्यमेव च ॥ तन्मर्दितं शिलाखल्वे यत्नतः कज्जलीकृतम् । वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका॥ व्योषं मुस्तं विडंगं च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी। त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्त्तः सितस्तथा ॥ भृंगमानककन्दाश्च खंडकर्णक एव च । दण्डोत्पलं केशराजं कालकंकडकोऽपि च ॥ एषामर्द्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम् । प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्द्धं पलमेव वा ॥ एत-

---

१ कोई २ चिकित्सक इस श्लोकको इस प्रकार पढकर तिसके अनुसार औषधि बनाते है । यथा - " मृतसूतार्कलोहाना तुल्यां पथ्यां विमर्दयेत् । माषत्रय लिहेत् क्षौद्रैरम्लपित्तप्रशान्तये ॥ " अर्थात् मूर्छित पारा, ताम्र, लौह और हरीतकी बराबर ले मर्दन करके ३ मासे शहदके साथ चाटनेसे अम्लपित्तरोग दूर हो जाता है ।

२ तदल्पघृष्ट मृदुमार्करेण इति पाठान्तरम् ।

३ छर्दिं सशूलं हृदयास्यदाहं निवारयेदेष न संशयोऽस्ति ॥ इति पाठान्तरम् ॥ अर्थात् इस औषधिसे वमनशूल, हृदयदाह, मुखदाहादि निःसन्देह नष्ट होते है ।

त्सर्वं समालोड्य लोहपात्रे च भावयेत्। आतपे दण्डसंघृष्ट-मार्द्रकस्वरसैस्त्रिधा ॥ तद्रसेन शिलापिष्टं गुटिकाः कारयेद्भिषक्। बदरास्थिनिभाः शुष्काः सुतप्ते तन्निधापयेत् ॥ तत्प्रातर्भोजनादौ तु सेवितं गुटिकात्रयम्। अम्लोदकानुपानं च हितं मधुरवर्जितम् ॥ दुग्धं च नारिकेलं च वर्जनीयं विशेषतः। भोज्यं यथेष्टमिष्टं च वारितक्राम्लकांजिकम् ॥ हंत्यम्लपित्तं विविधं शूलजं परिणामजम्। पांडुरोगं च सर्वं च शोथोदरगुदामयान् ॥ यक्ष्माणं पंचकासांश्च मंदाग्नित्वमरोचकम्। प्लीहानं शोषमानाहमामवातस्वरामयम् ॥ गुटी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगहारिणी ॥ १५२ ॥

भाषा–विधिसे शुद्ध किया अभ्रक २ पल, लोह १ पल, मण्डूरचूर्ण ४ तोले इन सबको लेकर गोरखमुण्डी, श्वेत हुलहुल और तालमूलीके रसमें प्रथम स्थालीपाक करे। फिर शतमूली, भांगरा, कूकरभांगरा, पीपल और मजीठके रसमें दूसरा स्थालीपाक करके त्रिफलाके क्वाथ और भद्रमोथाके रसमें तीसरा स्थालीपाक करे। फिर उसको चूर्ण कर ले। फिर पारा और गन्धकको दो दो तोले लेकर चिकनी शिलापर पीसकर कज्जली बनावे। इस कज्जलीके साथ पहला कहा हुआ अभ्रादि चूर्ण और वच, चव्य, अजवायन, जीरा, सोया, त्रिकुटा, वायविडङ्ग, मोथा, पीपलामूल, लाल अपराजिताकी जड, निसोत, चित्रककी छाल, दन्तीमूल, सफेद हुलहुलकी छाल, लाल चन्दन, भांगरेकी जड, वन जिमीकन्द, खण्डकर्णकी छाल, दंडोत्पल, कूकर भांगरा, कसोदीकी जड इन सबमेंसे एक २ का चूर्ण चार २ तोले ले और प्रत्येक ४ तोलेके हिसाबसे त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर समस्त द्रव्यको ३ बार अद्रकके रसमें भावना दे। फिर बेरकी गुठलीकी समान गोलियां बनाकर सुखाकर तप्त पात्रमें रक्खे। प्रभातको और भोजनके समयसे आगे इसकी ३ गोलिये खाय। इसको सेवन करके कांजीका अनुपान करे। मधुर द्रव्य, दूध और नारियल न सेवे। घोल और कांजीको इच्छानुसार सेवन करनेसे उपकार दिखलाई देता है। इससे अम्लपित्त, परिणामादि अनेक प्रकारके शूल, सर्व प्रकारके पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, गुदरोग, यक्ष्मा, पांच प्रकारकी खांसी, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, अफरा, आमवात और स्वरभंगरोग दूर होता है। यह रोगहारिणी गुटिका क्षुधावतीवटीके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १५२ ॥

तत्र अभ्रादिशोधनं लिख्यते ।

आशुभक्तोदकैः पिष्टमभ्रकं तत्र संस्थितम् ।कन्दमाणास्थिसंहारखण्डकर्णरसैरथ ॥ तण्डुलीयं च शालिंचकालमारिषजेन च । वृश्चीरबृहतीभृङ्गलक्ष्मणाकेशराजकैः ॥ पेषणं भावनं कुर्यात् पुटं चानेकशो भिषक् । यावन्निश्चन्द्रिकं तत् स्याच्छुद्धिरेकं विहायसः ॥ स्वर्णमाक्षिकशालिञ्चध्मातं निर्वापितं जले । त्रैफलेन विचूर्ण्यैवं लौहं काण्डादिकं पुनः॥ बृहत्पत्रकरीकर्णत्रिफलावृद्धदारजैः।माणकन्दास्थिसंहारशृङ्गवेरभवै रसैः॥ दशमूलीमुण्डितिकातालमूलीसमुद्भवैः । पुटितं साधुयत्नेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत् ॥ वसिरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णी मयूरकः। तंडुलीयं च कर्षाह्वं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव च ॥ पाच्यं सुजीर्णमण्डूरं गोमूत्रेण दिनत्रयम् । अन्तर्बाष्पमदग्धं च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ॥ विचूर्णितं शुद्धिरियं लोहकिट्टस्य दर्शिता । जयन्त्या वर्द्धमानस्य आर्द्रकस्य रसेन तु ॥ वायस्याश्चानुपूर्वकं मर्द्दनं रसशोधनम् । गन्धकं नवनीताख्यं क्षुद्रितं लौहभोजने ॥ त्रिधा चंडातपे शुष्कं भृङ्गराजरसाप्लुतम् ।ततो वह्नौ द्रवीभूतं त्वरितं वस्त्रगालितम् ॥ यत्नाद्भृंगरसे क्षिप्तं पुनः शुष्कं विशुध्यति ॥ १९३ ॥

भाषा-क्षुधावती वटिकाके बनानेमें जिस प्रकार अभ्रादिको शुद्ध करना पडता है, सो कहा जाता है । पहले कृष्णाभ्रको आशुधान्य (वर्षाके समय होते हैं) की कांजीके साथ पीसकर उसही कांजीमें भिगो रक्खे । फिर जिमीकन्द, मानकन्द, अस्थिसंहार, छोटे पत्तोंकी चौलाई, शालिंचशाक, बडे पत्तोंकी चौलाई, सफेद पुनर्नवा, कटेरी, भांगरा, लक्ष्मणाकन्द, कूकरभांगरा इन सबके रसमें वारंवार पीसकर और भावना देकर पुटपाक करे । जबतक अभ्रक भली भांतिसे चूर्ण न होय, तबतक भावना और पुटपाक दे । इस प्रकारसे अभ्रकको शोधित करे । फिर सोनामक्खीको शालिंचशाकके रसमें पीसकर तिससे लोहेके पत्रपर लेप करे और भट्टीमें रखके धमावे । जब लोहेका पत्र लाल हो जाय तब त्रिफलाके क्वाथमें

बुझावे । वारंवार इस प्रकार लोहेको लाल कर त्रिफलाके काथमें बुझाकर चूर्ण करे । फिर उसको भली भांतिसे धोकर धूपमें सुखा ले । फिर विधायरा, खंडकर्ण, आलू त्रिफला, बथुआ, मानकन्द, जिमीकन्द, सोंठ, दशमूल, गोरखमुण्डी और तालमृलीके रसमें इस लोहचूर्णको यत्नके सहित पुटपाक करे इस प्रकार करनेसे लोहा शुद्ध हो जाता है । फिर श्वेतवर्ण सोंफ, सफेद फूलकी खरेटी, गिलोय, चिरचिटा सोंठ, चौलाई इन सबको पुराने मण्डूरके ऊपर नीचे हांडीमें बिछाय गोमूत्रके साथ ३ दिन पाक करे । और फिर ढककर भीतरी वाफमें ३ दिन रक्खे । फिर उसको धो ले और सुखाय चूर्ण बनाय ग्रहण करे । इस प्रकार करनेसे मण्डूर शुद्ध होता है । फिर जयंती, अंडकी जड, अद्रक और मकोयके रसमें पारेको खरल करनेसे शुद्ध किया जाता है । फिर नवनीत नामक गन्धकको छोटे पात्रमें रखके भांगरेके रसमें खरल करे और तेज धूपमे सुखा ले । तीन वार इस प्रकार करके बेरी के अंगारेकी बलती हुई आगमें पिघलावे । और किसी पात्रमें भांगरेका रस भरकर मुखपर महीन कपडा बांध दे, उस कपडेके ऊपर गले हुए गन्धकको डाल दे । दो वार इस प्रकार करके धोने और सुखानेसे गन्धककी शुद्धि होती है ॥ १५३ ॥

सूर्यपाकताम्रम् ।

विचूर्ण्य गन्धाश्मपलं विशुद्धं रसद्विकर्षेण समं च खल्लयेत् । रसार्द्धसौवर्चलचूर्णयुक्तं तत् खल्लितं खल्लशिलासु यत्नतः ॥ सूर्यावर्त्तककर्णमोरटरसैराप्लाव्य तत् कज्जलं नैपालोद्भवताम्रकं पलमितं तत्कण्ठवेधायितम् । तेनालिप्य च कज्जलेन सुचिरं जम्बीरनीरस्थितं ॥ खल्लाश्मार्पितमेतदातपधृतं पिण्डीकृतं घट्टनैः संपिष्याशु शुभं सुपर्णनिहितं रक्तित्रयं योजयेत् तत्कालोत्थितवक्रशुद्धिरुचिता चूर्णं विना प्रत्यहम् । हन्त्येतद्वमनाम्लपित्तकगदान् पाण्ड्वग्निमान्द्यज्वरान् रक्तिर्वर्द्धितमाप एप नियतो लोहोक्तसर्वो विधिः ॥ १५४ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, गन्धक, शिलाजीत प्रत्येकको ४ तोले लेकर कजली बनावे । फिर २ तोले बिरियासंचर नोनके साथ मर्दन करके हुलहुल और कर्णमोरटके काथमे खरल करके सूक्ष्मताम्रको उस कजलीसे लपेटे । फिर जंबीरीके रसमें मिलाकर धूपमे रक्खे और वारंवार हिलाते व घोटते हुए पिंडाकार होकर जब क्रमसे सूख जाय तब चूर्ण कर ले । इस औषधिको तीन रत्ती लेकर पानके साथ प्रयोग करे । परंतु

उसमें चूर्ण न डाले । यह औषधि वमन, अम्लपित्त, पाण्डु, मन्दाग्नि और ज्वरका नाश करती है । यह औषधि क्रम २ से बढाकर एक मासेतक सेवन करे ॥१९५॥

अभ्रप्रयोगः ।

अम्लोदनाम्बुरुबुमूलरसे निमग्नं कृष्णाभ्रकं वसनबद्धमहानि सप्त । पिष्ट्वा च किञ्चिदुपशोष्य पलप्रमाणं न्यग्रोधदुग्धपलयुक्तमथो पुटेत्तत् ॥ माषाष्टकैः पृथगथ त्रिकटोर्वरायाः संयोज्य चाज्यमधुनी च चिरं विमर्द्य । तप्ताम्बुपानमुपभुक्तमिदं निहन्ति शूलाम्लपित्तवमनानि हिताशिनोदः ॥ १९६ ॥

भाषा-कपडेमें कृष्णाभ्रचूर्ण बांधकर कांजी और अरंडके रसमें ७ दिन डुबाये रक्खे । फिर मर्दन करके कुछेक सुखाय आठ तोले वटनिर्यास (वडके दूध) के साथ त्रिकुटा व त्रिफलाका चूर्ण प्रत्येक ८ मासे ले। फिर घी और शहद मिलाकर बहुत देरतक मर्दन करे । इसके साथ गरम जलका अनुपान है ।जो हितकारी पथ्यका सेवन करता है, वह इस औषधिका व्यवहार करनेसे शूल, अम्लपित्त और वमनादि रोगसे छूट जाता है ॥ १९६ ॥

अविपक्तिकरचूर्णम् ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं बीजं चैव विडंगकम् । एलापत्रं च सर्वं च समभागं विचूर्णयेत् ॥ यावन्त्येतानि चूर्णानि लवङ्गं तत्समं भवेत् । सर्वचूर्णाद्द्विगुणितं त्रिवृच्चूर्णं च दापयेत् ॥ सर्वमेकीकृतं यावत्तावच्छर्करयान्वितम् । सर्वमेकीकृतं पात्रे स्निग्धभाण्डे निधापयेत् ॥भोजनादौ ततोऽन्ते च मध्वाज्याभ्यामिदं शुभम्। शीततोयानुपानं च नारिकेलोदकं तथा ॥ ततो यथेष्टमाहारं कुर्याच्च क्षीरसाशनः । अम्लपित्तं निहन्त्याशु विबद्धमलमूत्रकम् ॥ अग्निमान्द्यभवान् रोगान्नाशयेच्चाविकल्पतः। बलपुष्टिकरं चैव शूलदुर्नामनाशनम् ॥ प्रमेहान् विंशतिं चैव मूत्राघातान् तथाश्मरीम् । अविपक्तिकरं चूर्णं अगस्त्यऋषिणोदितम् ॥ १९७ ॥

भाषा-बराबर त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग,इलायची, तेजपात इन सब-

को एक साथ चूर्ण करके समस्त चूर्णकी बराबर लवङ्गचूर्ण, लवङ्गचूर्णसे दुगुना निसोथचूर्ण और सब द्रव्योंकी बराबर मिश्री इन सबको एक साथ मिलाकर चिकने पात्रमें स्थापन करे । आहारसे पहले और पीछे इस औषधिको घी और शहदके साथ मिलाकर सेवन करे । ठंडा पानी और नारियलका जल इसका अनुपान है । इस औषधिको सेवन करके बहुतसा भोजन करे और दूध पिये । यह चूर्ण अम्लपित्त, मलमूत्रावरोध, मन्दाग्नि, दुर्नामा, २० प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात और पथरीरोगका नाश करता है । इससे बलके साथ पुष्टि बढती है । अगस्त्यमुनिने इस चूर्णको बनाया है । इसका नाम अविपत्तिकर चूर्ण है ॥ १५७ ॥

पानीयभक्तगुटिका ।

त्रिवृता मुस्तकं चैव त्रिफला त्र्यूषणं तथा । प्रत्येकं तु पलं भागं तदर्द्धौ रसगन्धकौ ॥ लौहाभ्रकविडंगानां प्रत्येकं च पलद्वयम् । एतत्सकलमादाय चूर्णयित्वा विचक्षणः ॥ त्रिफलायाः कषायेण वटिकां कारयेद्भिषक् । एकैकां भक्षयेत्प्रातस्तक्रं चापि पिबेदनु ॥ हन्ति शूलं पार्श्वशूलं कुक्षिवस्तिगुदारुजम् । श्वासं कासं तथा कुष्ठं ग्रहणीदोषनाशिनी ॥ १५८ ॥

भाषा–निसोथ, मोथा, त्रिफला, त्रिकुटा इन सबको एक २ पल ले, पारा और गन्धक चार २ तोले, लोह और विडङ्ग दो २ तोले इन सबको एकत्र करके त्रिफलाके क्वाथमें खरल करके गोलियां बनावे । प्रभातकालही इसकी एक २ गोली सेवन करके घोलका अनुपान करे । इसका नाम पानीयभक्त गुटिका है । यह औषधि शूल, पार्श्वशूल, कोखके रोग, बस्तिरोग, गुह्यरोग, दमा, खांसी, कुष्ठ और संग्रहणीका नाश करती है ॥ १५८ ॥

बृहत्पानीयभक्तगुटिका ।

त्रिकटु त्रिफला मुस्तविडंगामृतचित्रकम् । यवानी हवुषा हिंगु तुम्बुरुर्लवणत्रयम् ॥ भल्लातं शतपुष्पा च धान्याकं जीरकद्वयम् । अजमोदा वचा शृंगी रोहिषं बृहतीद्वयम् ॥ वानराह्वयवातारिबाणमुण्डितिकाह्वयम् । कुठारच्छिन्नकन्दौ च अक्षपीतं शुभांजनम् ॥ सूर्यावर्त्तस्त्रिवृद्दन्ती भद्रोत्कटपुनर्नवे । भार्ङ्गी पलाशमूलं च मेधावीन्द्राशनः शठी॥ तेजोवत्ती गवाक्षी च नीलिन्येलाथ पुंखकः । करिकर्णपलाशं च गृध्रनख्यः

शतावरी ॥ सर्पदंष्ट्रा कणामूलं राजानं भृंगकेशयोः । वृद्धदारक-शम्याकौ रसेन्द्रसुविपास्तथा ॥ दण्डोत्पलं वरुणकं सुदर्शखर-मंजरी । तालमूल्यस्थिसंहारखण्डकर्णौ रुदन्तिका ॥ कर्षमात्रं तु संग्राह्यमेतेषां तु पृथक् पृथक् । एकपत्रीकृतं कृष्णमभ्रकं च पलाष्टकम् ॥ आशु भक्ताम्लपानीये स्थापनीये दिनत्रयम् । शुष्कचूर्णीकृतं पश्चात्पुटयेद्गोमयाग्निना ॥ मानास्थिसंज्ञक-न्दानां भृंगार्द्रत्रिफलारसैः । एवं दद्याच्च लौहस्य षट्पलस्य यथाक्रमम् ॥ पश्चादेकीकृतं सर्वं पुटयेदार्द्रमानयोः । पारदार्द्ध-पलं शुद्धं गन्धकं च पलं तथा ॥ सर्वमेकीकृतं श्लक्ष्णं पेषये-दार्द्रकाम्बुना । षण्माषकमिताश्चैव वटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ गुटीत्रयं भक्षयित्वा अम्लं चानु पयः पिबेत् । नागार्जुनेन मु-निना निर्मिता हितकारिणा ॥ सर्वरोगहरी चैषा गुटिका चा-मृतोपमा । अनेन वर्द्धते पुष्टिरग्निवृद्धिश्च जायते ॥ सर्वरोगा विनश्यन्ति आमाजीर्णज्वरादयः । अम्लपित्तं च गुदजं ग्रह-णीं नाशयेदपि ॥ कामलां पाण्डुरोगं च वलीपलितनाशनम् । सकलाः पक्षिणो भक्ष्या मांसं च सकलं तथा ॥ वार्य्यन्नं दधि शाकं च तक्रं चापि यथेच्छया । सर्वाम्लं तिन्तिडीवर्ज्यं मद्यमांसं च भक्षयेत् ॥ कांजिकं चाम्लमाषं च मूलकं चैव वर्जयेत् । मधुरं नारिकेलं च वर्जनीयं विशेषतः ॥ १५९ ॥

भाषा–त्रिकुटा दो २ तोले, त्रिफला, मोथा, वायविडङ्ग, गिलोय, चित्रककी छाल, अजवायन, हाऊबेर, हींग, धनियां, सेंधानोन, काला निमक, बिडनोन, मि-लावेका वक्कल, सोफ, धान्य, जीरा, काला जीरा, वच, काकडाश्रृंगी, रोहिषतृण, बडी कटेरी, कटेरी, कौंचकी डाढी, नीले रंगकी कटसैरैया, गोरखमुण्डी, जिमीकन्द, शिवलिंगी, सहजनेके बीज, हुलहुलका वक्कल, निसोथकी जड, दन्तीमूल, शतमूली, सोंठ, भारंगी, ढाककी जड, ब्रह्मी, भंग, कचूर, वच, गोखरू, ककडी, नीलकी जड, इलायची, शरफोंका, हस्तिकर्णपलाश, तालमखाना, शतावरी, गोहालियाके फूल, निर्छवाघास, पीपलामूल, भांगरा, कूकरभांगरा, विधायरेके बीज, नींबूकी जड, खरेंटी,

संभालू, दंडोत्पल, वरणाकी छाल, पद्म, गिलोय, चिरचिटेके बीज, मूसली, हडसंहारी, शक्करकन्द, रुदन्ती (लाणा) इन सबका चूर्ण और ६४ तोले काला अभ्रक इन सबको इकट्ठा करके ३ दिनतक कांजीमें भिगो रक्खे । फिर सुखाकर अरने उपलोंकी आंचसे गजपुटमें पाक करे फिर ४८ तोले लोह मिलाकर पुट दे । फिर ४ तोले पारेके साथ बराबर गन्धक मिलाकर कज्जली करके, उस कज्जलीको मिलाकर आर्द्रकके रसके साथ पीसे । भली भांतिसे पिस जानेपर छः २ मासेकी गोलियां बनावे । इन तीन गोलियोंको सेवन करके अम्ल (खटाई) और जल पिये । नागार्जुनऋषिने इस औषधिको कहा है । यह औषधि अमृतकी समान है । इस औषधिसे पुष्टि बढती है, जठराग्नि बढती है, आमाजीर्ण और ज्वरादि सब रोगोंका नाश हो जाता है । इससे अम्लपित्त, गुह्यरोग, संग्रहणी, कामला, पाण्डु, वली और पलितका ध्वंस होता है। इस औषधिको सेवन करके सब प्रकारके पक्षी और सर्व प्रकारके मांस भोजन किये जा सकते हैं। और जल युक्त भात, दही, शाक और तक्र इच्छानुसार सेवन करे। इमलीके सिवाय और खटाई, अम्लद्रव्य, मद्य, मांस, कांजी, खटाई, उर्द और मूलीभक्षणमे दोष नहीं है । सूखे पत्ते, मधुरद्रव्य और नारियल त्याज्य है ॥ १५९ ॥

आमलाद्यलौहम् ।

आमलापिप्पलीचूर्णं तुलयया सितया सह ।
रक्तपित्तहरो लौहो योगराडिति विश्रुतः ॥
वृष्योऽग्निर्दीपनो बल्यो महाम्लपित्तनाशनः ।
पित्तोत्थान् वातपित्तोत्थान् निहन्ति विविधान् गदान् १६० ॥

भाषा—आमला, पीपल, खांड और लोहा ये द्रव्य बराबर ग्रहण करके रक्खे । तो इसकोही आमलाद्यलौह कहते हैं । यह योगराजके नामसे प्रसिद्ध है । इससे रक्तपित्तका नाश होता है । यह बलजनक, अग्निवर्द्धक और वृष्य है । इससे दारुण अम्लपित्त, पित्तके उठे हुए रोग और वातपित्तसे उत्पन्न हुए विविधरोग ध्वंस होते हैं ॥ १६० ॥

मन्थानभैरवो रसः ।

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् । सैन्धवं गन्धकं तालं कटुकीं चूर्णयेत्समम् ॥ पुनर्नवादेवदारुनिर्गुण्डीतण्डुलीयकैः । तिक्तकोपातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ माषमात्रं लिहेत् क्षौद्रे रसो मंथानभैरवः । कफरोगप्रशान्त्यर्थं निम्बक्वाथं पिबेदनु १६१ ॥

भाषा-मारित पारा, मारित ताम्र, हींग, पुष्करमूल, सेंधा, गंधक, हरिताल, कुटकी इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे। फिर सफेद सांठ, देवदारु, संभालू, चौलाई, चिरायता, तुरई इन सबके रसमें एक दिन भली भांतिसे मर्दन कर ले। इसका नाम मन्थानभैरव है। इसको एक मासा लेकर सहतके साथ मिलाकर चाटनेसे कफरोग दूर होता है। इसको सेवन करे पीछे नीमका क्राथ अनुपान करे ॥ १६१ ॥

श्लेष्मकालानलो रसः ।

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धकाद्विगुणं विषम् । विषात्तु द्विगुणं देयं चूर्णं त्रिकटुसम्भवम् ॥ रसतुल्या प्रदातव्या चाभया सविभीतकी । धात्री पुष्करमूलं च चाजमोदाजगन्धका ॥ विडंगं कट्फलं चव्यं पंचैव लवणानि च । लवङ्गं त्रिवृता दन्ती सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ भावयेत्सप्तधा रौद्रे स्वरसैः सुरसोद्भवैः । हन्ति सर्वं कफोद्भूतं व्याधिं कालानलो रसः ॥ १६२ ॥

भाषा-पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, विष ४ भाग, त्रिकुटाचूर्ण ८ भाग, एक २ भाग हरीतकी, बहेडा, धात्री, कूडा, अजवायन, वनतुलसी, वायविडंग, परवल, चव्य, पांच नमक, लौंग, निसोत, दन्ती इन सबको मिलाकर तुलसीके रसमें धूपके समय ७ भावना दे। इसका नाम कालानल रस है। यह सब कफरोगोंका नाश कर देता है ॥ १६२ ॥

श्लेष्मशैलेन्द्रो रसः ।

पारदं गन्धकं लौहं त्र्यूषणं जीरकद्वयम् । शृंगी शठी यवानी च पौष्करं चार्द्रकं तथा ॥ गैरिकं यावशूकं च कट्फलं गजपिप्पली । जातीकोषाजमोदा च वरायासलवङ्गकम् ॥ कणकारुणबीजानि कट्फलं चव्यकं तथा । प्रत्येकं तोलकं चैषां श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ पाषाणे विमले खल्वे घृष्टं पाषाणमुद्गरैः । बिल्वमूलरसं दत्त्वा चार्कचित्रफलत्रिका ॥ वासा निर्गुण्डी गणिका चन्द्राशनं प्रचोदनी । धत्तूरं कृष्णाजीरं च पारिभद्रक-

१ कोई २ वैद्य सफेद सांठ, देवदारु, सभालू, चौलाई, चिरायता, तुरई इन सबको मिलाकर २ तोले लेवे, आधा सेर जलमे पकावे. जब आध पाव रह जाय तो उतारकर उस जलमे पारदादि चूर्णित द्रव्य मर्दन करके एक २ मासेकी गोलियां बनावे ऐसा कहते है ।

पिप्पली ॥ एतेषां च रसैर्मर्द्यमार्द्रकैश्च विभावयेत् । उष्णतोया-
नुपानेन सर्वव्याधिं विनाशयेत् ॥ विंशतिं श्लैष्मिकान् रोगान्
सन्निपातभवान् गदान् । उदराष्टकदुर्नामसामवातं च दारु-
णम् ॥ पंच पांड्वामयान् दोषान् क्रमिं स्थौल्यमथो नृणाम् ।
यथा शुष्केन्धने वह्निस्तथैवाग्निविवर्द्धनम् ॥ १६३ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोहा, त्रिकुटा, जीरा, काला जीरा, काकडाशृंगी, कचूर, अजवायन, कूडा, अद्रक, गेरू, जवाखार, कायफल, गजपीपल, जावित्री, अजवायन, त्रिफला, जवासा, लौंग, धतूरेके वीज. आकके वीज इन सवको एक २ तोला लेकर पत्थरपर या निर्मल खरलमें पत्थरकी मूसलीसे पीसकर चूर्ण करे । फिर वेलकी जड, आक, चित्रक, विसोंटा, संभालू, अरणी, भंग, कटेरी, धतूरा, काला जीरा, फरहद, गजपीपल इनसे प्रत्येकके रसमे ७ वार भावना दे, पीसकर अद्रकके रसमें ७ वार भावना दे । फिर दो २ रत्तीकी गोली वनाके गरम जलके अनुपानसे सेवन करे । इससे समस्त रोग जाते रहते हैं । इससे २० प्रकारके कफरोग, सान्निपातिकरोग, आठ प्रकारके उदररोग, दुर्नामा, भयंकर वातरोग, पांच प्रकारके पाण्डु, कृमि और स्थूलता नष्ट होती है । इसका नाम श्लेष्मशैलेन्द्र रस है । आगसे जिस प्रकार सूखा काठ भस्म हो जाता है, वैसेही इस औषधिसे रोगराशी दूर होती है ॥

कफचिंतामणिरसः ।

हिङ्गुलेंद्रयवं टङ्कं त्रैलोक्यवीजमेव च । मरिचं च समं सर्वं
त्रिभागं रससिन्दुरम् ॥ आर्द्रकस्य रसेनैव मर्दयेद्यामसात्रकम् ।
चणकाभा वटी कार्या सर्ववातप्रशान्तये ॥ कफरोगं निहन्त्याशु
भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १६४ ॥

भाषा-सिंगरफ, इन्द्रयव, सुहागेकी खील, भंगके वीज और वीज यह सव एक २ भाग, रससिन्दूर ३ भाग इन सवोको मिलाकर अदरखके रसमें एक प्रहर खरल करे । भली भांतिसे खरल हो जानेपर चनेकी वरावर एक २ गोली वनावे । इससे सव प्रकारके वात ध्वंस होते हैं । सूर्यभगवान् जिस प्रकार अन्धकारको दूर करते हैं, वैसेही यह औषधि कफरोगका नाश करती है ॥ १६४ ॥

महाश्लेष्मकालानलो रसः ।

हिंगूलसम्भवं सूतं शिलागंधकटङ्कणम् । ताम्रं वंगं तथाभ्रं च
स्वर्णमाक्षिकतालकम् ॥ धत्तूरं सैन्धवं कुष्टं हिंगु पिप्पली कट-

फलम्। दन्तीबीजं सोमराजी वनराजफलं त्रिवृत् ॥ वज्रक्षीरे च संमर्द्य वटिकां कारयेद्भिषक्। कलायपरिमाणां तु खादेदेकं यथाबलम् ॥ सन्निपातं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा। मत्तसिंहो यथाऽरण्ये मृगाणां कुलनाशनः ॥ तथायं सर्वरोगाणां सद्यो नाशकरो महान् ॥ १६५ ॥

भाषा-सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, मैनशिल, गन्धक, सुहागा, तांबा, रांगा, अभ्रक, सोनामक्खी, हरिताल, धतूरेके बीज, सेंधा, कूडा, हींग, पीपल, कायफल, दन्तीबीज, बावची, अमलतासका गूदा, निसोथ इन सबको बराबर ग्रहण करके थूहरके दूधमें मर्दन करके मटरकी समान गोलियां बनावे। एक २ गोली सेवन करे। जैसे वज्रसे वृक्ष गिरता है, वैसेही इस गोलीसे सान्निपातिकरोग दूर होते हैं। जिस प्रकार वनमें मदमाता सिंह हरिणकुलको निर्मूल कर देता है, वैसेही यह औषधि रोगराशिको उजाड देती है। इसका नाम महाश्लेष्मकालानल रस है ॥ १६५ ॥

कफकेतुरसः।

टंकणं मागधी शंखं वत्सनाभं समं समम्। आर्द्रकस्य रसेनापि भावयेद्दिवसत्रयम् ॥ गुंजामात्रं प्रदातव्यमार्द्रकस्य रसेन वै। पीनसं श्वासकासं च नेत्ररोगं सुदारुणम् ॥ दन्तरोगं कर्णरोगं नेत्ररोगं सुदारुणम्। सन्निपातं निहन्त्याशु कफकेतुरसोत्तमः १६६

भाषा-सुहागेकी खील, पीपल, शंखभस्म और विष ग्रहण करके अदरखके रसमे ३ दिनतक भावना दे एक २ रत्तीकी गोली बनावे। अदरखके रसके साथ इस औषधिको सेवन करे। इसका नाम कफकेतु रस है। यह पीनस, दमा, खांसी, गलरोग, गलग्रह, दन्तरोग, कर्णरोग, नेत्ररोग और दारुण सन्निपातका नाश करता है ॥ १६६ ॥

महालक्ष्मीविलासः।

पलं वज्राभ्रचूर्णस्य तदर्द्धं गन्धकं भवेत्। तदर्द्धं वंगभस्मापि तदर्द्धं पारदं तथा ॥ तत्समं हरितालं च तदर्द्धं ताम्रभस्मकम्। रससाम्यं च कर्पूरं जातीकोषफले तथा॥ वृद्धदारकबीजं च बीजं स्वर्णफलस्य च। प्रत्येकं कार्षिकं भागं मृतस्वर्णं च शाणकम्॥ निष्पिष्य वटिका कार्या द्विगुंजाफलमानतः । निहन्ति

सन्निपातोत्थान् गदान् घोरान् सुदारुणान् ॥ गलोत्थानन्त्रवृद्धिं च तथातीसारमेव च । कुष्ठमेकादशविधं प्रमेहान् विंशतिं तथा ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं चिरजं कुलजं तथा । नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदरोगं भगन्दरम् ॥ कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यरक्तनुत् । आमवातं सर्वरूपं जिह्वास्तम्भं गलग्रहम् ॥ उदरं कर्णनासाक्षिमुखवैजाड्यमेव च । सर्वशूलं शिरःशूलं स्त्रीरोगं च विनाशयेत् ॥ वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् । अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ वारिभक्तं सुरासीधुसेवनात् कामरूपधृक् । वृद्धोऽपि तरुणस्पर्द्धी न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ न च लिंगस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम् । नित्यं गच्छेच्छतं स्त्रीणां मत्तवारणविक्रमः॥ द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकं तथा । प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ रसो लक्ष्मीविलासोऽयं वासुदेवो जगत्पतिः । प्रसादादस्य भगवान् लक्षनारीषु वल्लभः ॥ १६७ ॥

भाषा—अभ्रकचूर्ण १ पल, गन्धक ४ तोले, रांगेकी भस्म २ तोले, पारा १ तोला, हरिताल १ तोला, ताम्रभस्म आधा तोला, कपूर १ तोला और जायफल, जावित्री, विधायरेके बीज ये सब दो दो २ तोले, सुवर्णभस्म अर्द्ध तोला इन सबको एक साथ मर्दन करके दो रत्तीकी गोली बनावे । इस औषधिसे भयंकर सान्निपातिक रोगराशि दूर होती है । यह रस गलेके रोग, आंतकी वृद्धि, अतिसार, श्लीपद, कफवातसे उत्पन्न हुई बहुत कालकी कौलिक पीडा, नाडीव्रण, दारुण गुह्यरोग, भगन्दर, खांसी, पीनस, यक्ष्मा, बवासीर, स्थूलता, दुर्गन्धिता, आमवात, जिह्वास्तम्भ, गलग्रह, उदररोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, जडता, समस्त शूल, शिरदर्द और नारीरोगका नाश होता है । प्रति दिन प्रभातकालमें इसकी एक २ गोली सेवन करे । इसको सेवन करके मांस, पिट्ठी, दूध, दही, जलयुक्त भात व सुरा आदि अनुपान करे । इस औषधिके प्रसादसे रोगी कामदेवकी समान रूपवान् हो जाता है, वृद्ध पुरुषभी तरुणकी नांई होता है । जो पुरुष इसको सेवन करता है, उसका उपस्थ शिथिल नहीं होता, केश नहीं पकते । इसको सेवन करके प्रतिदिन सौ रमणी रमण करनेसेभी मदमाते हाथीकी

समान बल होता है । इसके प्रसादसे दो लाख योजनकी दृष्टि होती है । नारद ऋषिने यह औषधि प्रकाश की है।इसका नाम महा लक्ष्मीविलास है । इस औषधिके बलसेही संसारके स्वामी वासुदेव बहुतसी स्त्रियोंके प्यारे प्राणपति हुए थे ॥१६७॥

बृहदग्निकुमारः ।

सूतगन्धकनागानां चूर्णं हंसांघ्रिवारिणा । दिनं घर्मे विमर्द्याथ गोलकं तस्य योजयेत् ॥ काचकूप्यां च संवेष्ट्य तां त्रिभिर्मृत्पुटैर्दृढम् । मुखं संरुद्ध्य संशुष्कं स्थापयेत् सिकताह्वये ॥ सार्द्धं दिनं क्रमेणाग्निं ज्वालयेत्तदधस्ततः । स्वांगशीतलमुद्धृत्य षडंशेनामृतं क्षिपेत् ॥ मरिचान्यर्द्धभागेन सर्वमेकत्र मर्दयेत् । अयमग्निकुमाराख्यो रसो नामास्य रक्तिका ॥ ताम्बूलीदलसंयुक्ता हन्ति रोगानमूनयम् । वातरोगं क्षयं कासं श्वासं पाण्डुं कफोल्बणम् ॥ अग्निमान्द्यं सन्निपातं पथ्यं शाल्यादिकं लघु । जलयोगप्रयोगोऽपि शस्तस्तापप्रशान्तये ॥ १६८ ॥

भाषा-पारा, गन्धक और सीसा बराबर लेकर हंसपदीके रसमें पीसके धूपमें सुखाय गोला करे । फिर एक कांचकी शीशीके भीतर तीन कपरोटी करके तिसमें इस गोलेको रखके शीशीका मुँह बंद करे । फिर सूख जानेपर वालुकायंत्रमें डेढ दिनतक पाक करे । शीतल हो तब उतारके छठवां अंश विष और अर्द्धांश मिरच मिलाय अच्छी तरहसे मर्दन करे । पानके रसके साथ इस औषधिकी एक रत्ती मात्रा सेवन करे । दाह दूर करनेको जल दे । इस औषधिसे वातरोग, छई, खांसी, दमा, पाण्डु, कफरोग, मन्दाग्नि, सन्निपात आदिका नाश होता है । इसको सेवन करनेके पीछे सट्टीके चावलका भात और लघु पथ्य देने उचित है ॥ १६८ ॥

पंचाननः ।

सूतगन्धौ द्रवैर्धात्र्या मर्दयेद्दारुस्तनीद्रवैः ।
यष्टिखर्जूरसलिलैः दिनं हृद्रोगजिद्रसः ॥
धात्रीचूर्णं सितां चानु पिबेद्रोगापनुत्तये ॥ १६९ ॥

भाषा-पारा और गन्धक बराबर ग्रहण करके आमलेके रसमें मर्दन कर दाखके काथमे, मुलहटीके काथमें और खजूरके रसमें एक दिन खरल करे।इसका नाम पंचानन रस है । इसको सेवन करके आमलेका चूर्ण और खांड अनुपान करे॥१६९॥

हृदयार्णवरसः ।

सूताकौं गंधकं क्वाथे वराया मर्दयेद्दिनम् ।
काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्रां च भक्षयेत् ॥
हृदयार्णवनामायं हृद्रोगदलनो रसः ॥ १७० ॥

भाषा-पारा, तांबा और गन्धक बराबर लेकर त्रिफलाके क्वाथ और मकोयके रसमें एक दिन पीसकर चनेकी समान एक गोली बनावे । यह हृदयार्णव रस हृद्रोगको ध्वंस करता है ॥ १७० ॥

मतान्तरे ।

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्रं तयोः समम् । मर्दयेत्त्रिफलाक्वाथैः काकमाचीद्रवैर्दिनम् ॥ चणमात्रां वटीं खादेद्रसोऽयं हृदयार्णवः । काकमाचीफलं कर्षं त्रिफलाफलसंयुतम् ॥ द्वात्रिंशत्तोलकं तोयं क्वाथमष्टावशेषितम् । अनुपानं पिबेच्चात्र हृद्रोगे च कफोत्थिते ॥

भाषा-शुद्ध पारा और गन्धक बराबर, इन दोनोंकी बराबर मारिततात्रको एकत्र करके त्रिफलाके क्वाथमें एक दिन और मकोयके रसमें एक दिन खरल करके चनेकी बराबर गोलियां बनावे । इसका नाम हृदयार्णव रस है । इस औषधिको सेवन करनेके पीछे २ तोले मकोयके फल और २ तोले त्रिफला ३२ तोले जलमें पकावे । जब आठवां अंश रह जाय तो उतारकर पान करे । कफोत्थित हृद्रोगमें यह औषधि फलदाई है ॥ १७१ ॥

नागार्जुनाभ्रम् ।

सहस्रपुटनैः शुद्धं वज्राभ्रमर्जुनत्वचः । सत्वैर्विमर्दितं सप्तदिनं खल्वे विशोषितम् ॥ छायाशुष्का वटी कार्या नाम्नेदमर्जुनाह्वयम् । हृद्रोगं सर्वशूलार्शौहृल्लासच्छर्द्यरोचकान् ॥ अतीसारमग्निमान्द्यं रक्तपित्तं क्षतक्षयम् । शोथोदराम्लपित्तं च विषमज्वरमेव च ॥ हन्त्यन्यान्यपि रोगाणि बल्यं वृष्यं रसायनम् ॥ १७२ ॥

भाषा-सहस्रपुट, शुद्ध, वज्राभ्र अर्जुनवृक्षके वक्कलके रसके साथ सप्ताहभर खरल करके छायामे सुखावे । फिर गोली बनावे । इस औषधिसे हृद्रोग, शूल, हिचकी, वमन, अरुचि, अतिसार, मन्दाग्नि, रक्तपित्त, क्षतक्षय, शोथ, उदर, अम्लपित्त, विषम ज्वरादिका नाश होता है । यह औषधि बलकारी और रसायन है । इसका नाम नागार्जुनाभ्र है ॥ १७२ ॥

गुंजागर्भो रसः ।

निष्कत्रयं रसस्यास्य गन्धकस्तुर्यभागिकः । गन्धकेन जयाचूर्णं निम्बुबीजं समानकम् ॥ गुंजाबीजं तदर्द्धं स्यात्तदर्द्धं जयपालकम् । निम्बुद्रवेण संमर्द्य काकमाच्या दिनान्तकम् ॥ धतूरकजयन्तीभ्यां गुटिकां कारयेत्सुधीः । गुंजागर्भरसो नाम्ना दातव्यो घृतसंयुतः ॥ हिंगुसैन्धवसंयुक्तं मण्डं पथ्याय दापयेत् ॥ १७३ ॥

भाषा-३ निष्क पारा, पारेसे चौथाई गन्धक, गन्धककी वरावर भांगका चूर्ण, निबौलियोंका चूर्ण, गुंजाबीज गन्धकसे आधा गुंजाबीजसे आधा जमालगोटा इन सबको एकत्र करके नीमके क्वाथमे और मकोयके क्वाथमे एक दिन पीसकर धतूरेके रस और जयंतीके क्वाथमें खरल करे । फिर वटिका बनावे । घीके साथ इस औषधिका सेवन करे । इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमे हींग और सेंधायुक्त मांड पथ्य करे । इसका नाम गुंजागर्भ रस है ॥ १७३ ॥

आनन्दभैरवी वटी ।

तिलापामार्गयोः कांडं कारवेल्या यवस्य च । पलाशकाष्ठसंयुक्तं तुल्यं सर्वं दहेत्पुटे ॥ तं निष्कैकमजामूत्रैर्वटीं चानन्दभैरवीम् ॥ पाययेदश्मरीं हन्ति सप्तरात्रान्न संशयः ॥ १७४ ॥

भाषा-तिलशठ, चिरचिटेके डंठले, करेला और जवके डंठले, ढाकका काठ इन सबको बराबर ग्रहण करके एक हांडीमे रक्खे, वेधुएंकी आगमें दग्ध करे । फिर उस भस्मको एक निष्क अर्थात् तीन मासे लेकर एक २ गोली बनावे । इसका साम आनन्दभैरवी वटी है । इसको सेवन करनेसे सात रात्रिमे पथरीका नाश होता है, इसमे कुछ संदेह नहीं ॥ १७४ ॥

पाषाणवज्रो रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं रसैः श्वेतपुनर्णवैः । मर्दयित्वा दिनं खल्वे रुद्ध्वा तद्भूधरे पचेत् ॥ दिनान्ते तत्समुद्धृत्य मर्दयेद्गुडसंयुतम् । अश्मरीबस्तिशूलं च हन्ति पाषाणवज्रकः ॥ गोरक्षकर्कटीमूलक्काथं कौलत्थकं तथा। अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषबलाबलम् ॥ १७५ ॥

भाषा—पारा एक भाग, गन्धक दो भाग एकत्र करके श्वेतसांठके रसमें एक दिन मर्दन करे। फिर पुटमें बन्द करके भूधरयंत्रमें पाक करे। दिनके अंतमें निकालकर गुडके साथ २ रत्ती सेवन करे। इसको सेवन करके रोगीका बलाबल विचार गोखरू और ककडीकी जडका क्राथ अनुपान करनेको दे। इसका नाम पाषाणवज्र रस है ॥ १७५ ॥

त्रिविक्रमो रसः ।

मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गते द्रवे। तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् ॥ निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकीकृतम्। यामैकं वालुकायन्त्रे पक्त्वा योज्यं द्विगुंजकम् ॥ वीजपूरस्य मूलं च सजलं चानुपाययेत् । रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्करामश्मरीं जयेत् ॥ १७६ ॥

भाषा—वकरीके दूधके साथ ताम्रचूर्ण पाक करे जब गीला अंश सूख जाय तब उसको ग्रहण करके ताम्रके बराबर गन्धक और पारा मिलावे। फिर एक दिन संभालूके रसमें खरल करके गोला बनाय एक प्रहरतक वालुकायंत्रमें पाक करे। फिर दो २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे। इस औषधिको सेवन करके बिजौरानींबूकी छाल और जलका अनुपान करे। इससे शर्करा और पथरीका नाश होता है। इसका नाम त्रिविक्रम रस है ॥ १७६ ॥

पर्पटीरसः ।

इन्द्रवारुणिकामूलं सवचं क्षीरपाचितम् ।
पर्पटीरससंयुक्तं सप्ताहात् अश्मरीप्रणुत् ॥ १७७ ॥

भाषा—वच और ककोडेकी जड बराबर ले दूधकेसाथ पाककरके श्वेतपापडाके रसके सहित सेवन करनेसे पथरीका नाश होता है। इसका नाम पर्पटी रस है १७७

पाषाणभेदी रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं श्वेतपौनर्णवद्रवैः। भावनात्रितयं देयं रुद्ध्वा तं भूधरे पुटेत् ॥ पाषाणभेदीचूर्णं तु समं योज्यं विमर्दयेत् ॥ निष्कमश्मरिकां हन्ति पूर्वोक्तादनुपानतः । योगवाहान् प्रयुञ्जीत रसानश्मरिशान्तये ॥ १७८ ॥

---

१ कहीं ऐसा पाठभी है। इन्द्रवारुणिकामूलं मरिच क्षीरपाचितम् । पर्पटीरससयुक्तं सप्ताहादश्मरीं जयेत् ॥ अर्थात् ककोडेकी जड और मिरच एकत्र दूधके साथ पाक करके श्वेतपापडाके रसमे मिलाकर सेवन करनेसे सप्ताहभरमें पथरीरोगका नाश हो जाता है ॥

भाषा-एक भाग पारा, २ भाग गन्धक इन दोनोंको सफेद सांठके रसमें ३ वार भावना दे थालीसे रुद्ध करके भूधर यंत्रमें पुट दे । फिर शीतल होनेपर औषधिकी बराबर शिलाजीतका चूर्ण मिलाय मर्दन करे । फिर ३ मासेकी एक २ गोली वनाय पहले कहे हुए अनुपानके साथ सेवन करे। पथरीकी शांतिके लिये योगवाही रसका प्रयोग करे । इस औषधिका नाम पाषाणभेदी रस है ॥ १७८ ॥

लोहचूर्णम् ।

भेषजैरश्मरीप्रोक्तैः मूत्रकृच्छ्रमुपाचरेत् ।
अयोरजः श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ॥
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशयः ॥ १७९ ॥

भाषा-अश्मरीरोगाधिकारमें जिन औषधियोंको कहा, मूत्रकृच्छ्ररोगमें उन्हींका प्रयोग करे । ३ दिनतक सहतके साथ लोहभस्म चाटनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ १७९ ॥

त्रिनेत्राख्यो रसः ।

वंगं सूतं गन्धकं भावयित्वा लौहे पात्रे मर्दयेदेकघस्रम् । दूर्वा-यष्टिगोक्षुरैः शाल्मलीभिर्मूषामध्ये भूधरे पाचयित्वा ॥ तत्त-द्द्रावैर्भावयित्वास्य वल्लं दद्यात् शीतं पायसं वक्ष्यमाणम् । दूर्वायष्टीशाल्मलीतोयदुग्धैस्तुल्यैः कुर्यात् पायसं तद्ददीत ॥ प्रातःकाले शीतपानीयपानान्मूत्रे जाते स्यात्सुखी चंक्रमेण॥१८०

भाषा-रांगा, पारा, गन्धक इन सबको बराबर ले दूध, मुलहठी, गोखरू और शेमल इनके क्वाथमें भावना देकर एक दिन खरल करे । फिर घड़ियामें बन्द करके भूधरयंत्रमें पाक करे । ठंडा होनेपर उसको ग्रहण करके फिर पहले कहे हुए क्वाथमें भावना दे । फिर दो २ रत्तीकी गोलियां बनाकर सेवन करे । दूब, मुलहठी, शेमलका क्वाथ और दूधको बराबर ले खीर करे । ठंडी होनेपर इसका अनुपान करे । प्रातःकाल इस औषधिको सेवन करे पीछे शीतल जल पान करनेसे जो मूत्र उतरे तो रोगी स्वास्थ्यका अनुभव करता है । इस औषधिका नाम त्रिनेत्राख्य रस है ॥ १८० ॥

वरुणाद्यं लौहम् ।

द्विपलं वरुणं धात्र्यास्तदर्द्धं धात्रिपुष्पकम् । हरीतक्याः पला-र्द्धं च पृश्निपर्णी तदर्द्धकम् ॥ कर्षमानं च लोहाभ्रं चूर्णमेकत्र

कारयेत् । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय शाणमानं विधानवित् ॥ मूत्राघातं तथा घोरं मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् । अश्मरीं विनिहं- त्याशु प्रमेहं विषमज्वरम् ॥ बलपुष्टिकरं चैव वृष्यमायुष्यमेव च । वरुणाद्यमिदं लौहं चरकेण विनिर्मितम् ॥ १८१ ॥

भाषा—वरनेकी छाल २ पल, धाईफूल एक पल, हरीतकी अर्द्ध पल, पिठवन २ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक २ तोले इन सब चूर्णोंको एकत्र करके प्रातःकाल आधा तोला सेवन करे । यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह और विषमज्वरका नाश करता है । कांति, पुष्टि और परमायु बढती है । चरक इस औषधिके बनानेवाले हैं । इसका नाम वरुणाद्यलौह है ॥ १८१ ॥

मूत्रकृच्छ्रान्तको रसः ।

शतावरीरसैः पिष्ट्वा मृतसूतं च तालकम् । शिखितुत्थं च तु- ल्यांशं दिनैकं मर्द्दयेद्दृढम् ॥ तद्गोलं सार्षपे तैले पाच्यं यामं च चूर्णयेत् । मूत्रकृच्छ्रान्तकश्चास्य क्षौद्रैर्गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ भक्ष- णान्नात्र सन्देहो मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्यलम् । तुलसीं तिलपिण्याकं बिल्वमूलं तुषाम्बुना ॥ कर्षैकं वानुपानेन सुरया वा सुवर्चलैः १८२

भाषा—रससिन्दूर, हरिताल, चित्रक और तूतिया इन सबको बराबर लेकर मूसलीके रसमें एक दिन खरल करे । फिर गोला बनाय सरसोंके तेलमें लिप्त करके एक प्रहरतक पाक करे । फिर चूर्ण करके सहतके साथ ४ रत्ती सेवन करे । इस औषधिसे निश्चय मूत्रकृच्छ्र जाता रहता है । इसको सेवन करके तुलसी, तिलका तेल और बिल्वमूल इन सबको दो तोलेके प्रमाणसे लेकर तिनके क्वाथ अथवा सुराके साथ सौवर्चलनमक पान करे ॥ १८२ ॥

तारकेश्वरो रसः ।

मृतसूताभ्रगन्धं च मर्द्दयेन्मधुना दिनम् । तारकेश्वरनामायं ग- हनानन्दभाषितः ॥ माषमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये । उदुम्बरफलं पक्वं चूर्णितं कर्षमात्रकम् ॥ संलिह्यान्मधुना सा- र्द्धमनुपानं सुखावहम् ॥ १८३ ॥

भाषा—रससिन्दूर, अभ्रक और गन्धक बराबर लेकर सहतके साथ मर्दन करे । इसका नाम तारकेश्वर रस है । गहनानन्दनाथने इस औषधिको प्रकाशित

किया है। एक मासा औषधि सहतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे बहुमूत्ररोग जाता है। इस औषधका सेवन करके २ तोले पके हुए गूलरके फलका चूर्ण सहतके साथ चाटे। इस प्रकार करनेसे रोगी शीघ्र अच्छा होता है॥ १८३॥

लघुलोकेश्वरो रसः।

शुद्धसूतस्य भागैकश्चत्वारः शुद्धगन्धकात्। पिष्ट्वा वराटिका पूर्या रसपादेन टंकणम्॥ क्षीरैः पिष्ट्वा मुखं लिप्त्वा भांडे रुद्ध्वा पुटे पचेत्। स्वाङ्गशीतं विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो मतः॥ चतुर्गुञ्जाप्रमाणं तु मरिचेन तथैव च। जातीमूलफलैर्युक्तमजाक्षीरेण पाययेत्॥ शर्कराभावितं चानु पीत्वा कृच्छ्रहरः परः॥ १८४॥

भाषा-रससिन्दूर एक भाग, गन्धक ४ भाग इन दोनोको एक साथ पीसकर एक कौडीमें भरे। रससिन्दूरसे चौथाई सुहागा दूधके साथ पीसकर तिससे उस कौडीके मुँहको बन्द करे। फिर घडियामे बन्द करके पुटपाक करे। शीतल होनेपर चूर्ण कर ले और इसका चार रत्ती चूर्ण, मिरच, जायफलकी जड और जायफल बकरीके दूधके साथ पान करे। इसका नाम लघुलोकेश्वर रस है। यह मूत्रकृच्छ्ररोगका नाश करता है॥ १८४॥

प्रमेहसेतुः।

एकः सूतो द्विधा वंगः सर्वाद्द्विगुणगन्धकः।
कूपीपक्वो महासेतुर्वङ्गस्थानेऽथ वा विधुः॥ १८५॥

भाषा-एक भाग पारा, २ भाग रांगा, ६ भाग गन्धक एकसाथ शीशीमें पकानेसे प्रमेहसेतु बन जाता है। इससे प्रमेहरोग दूर होता है॥ १८५॥

प्रकारान्तरम्।

सूताभ्रं च वटक्षीरैर्मर्दयेत्प्रहरद्वयम्। विशोष्य पक्वमूषायां सर्वरोगे प्रयोजयेत्॥ विशेषान्मेहरोगेषु त्रिफलामधुसंयुतम्। युञ्जीत वल्लमेकं तु रसेन्द्रस्यास्य वैद्यराट्॥ १८६॥

भाषा-पारा और अभ्रक इन दोनोको एक साथ वडके दूधमें २ प्रहरतक घोटकर घडियामे बन्द करके पुट दे। फिर शीतल होनेपर उसको ग्रहण करके तीन २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे। त्रिफलाके चूर्ण और सहतके साथ इसको सेवन करे। प्रमेहरोगमें यह विशेष फलदाई है। इसका नामभी प्रमेहसेतु है॥१८६॥

हरिशंकरो रसः ।

मृतसूताभ्रकं तुल्यं धात्रीफलनिजद्रवैः । सप्ताहं भावयेत्खल्वे योगोऽयं हरिशंकरः॥मापमात्रां वटीं खादेत् सर्वमेहप्रशान्तये १८७

भाषा–रससिन्दूर और अभ्रक इन दोनोंको धात्री (आमले) के रसमें एक सप्ताहतक भावना दे भली भांति खरल करे । इसका नाम हरिशंकर रस है । एक २ मासेकी गोली बनाकर सेवन करे । इसका सेवन करनेसे सर्व प्रकारके प्रमेह जाते हैं ॥ १८७ ॥

वृहद्धरिशङ्करो रसः ।

रसगन्धकलौहं च स्वर्णं वंगं च माक्षिकम् । समभागं तु संपिष्य वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ सप्ताहमामलाद्रावैर्भावितोऽयं रसेश्वरः । हरिशंकरनामायं गहनानन्दभाषितः ॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति सत्यं सत्यं न संशयः ॥ १८८ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, लौह, सुवर्ण, रांगा, सोनामक्खी इन सबको बराबर लेकर एक साथ पीसके ७ दिनतक अदरखके रसमें भावना दे । फिर रोगीका बल विचार परिमाणका निर्णय करके गोली बनावे । इसको सेवन करनेसे २० प्रकारके प्रमेह जाते रहते हैं ॥ १८८ ॥

इन्द्रवटी ।

मृतं सूतं मृतं वंगमर्जुनस्य त्वचान्वितम् । तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे शाल्मल्या मूलजैर्द्रवैः ॥ दिनान्ते वटिका कार्या माषमात्रा प्रमेहहा । एषा इंद्रवटी नाम्ना मधुमेहप्रशान्तकृत् ॥ १८९ ॥

भाषा–रससिन्दूर, रांगा, अर्जुनकी छाल इन सबको बराबर लेकर एक दिन शेमलकी छालके रसमें मर्दन करके एक २ मासेकी गोलियां बनावे । इसका नाम इन्द्रवटी है । यह मधुमेहका नाश करती है ॥ १८९ ॥

वंगावलेहः ।

वंगभस्म द्विवल्लं च लेहयेन्मधुना सह । ततो गुडसमं गंधं भक्षयेत् कर्षमात्रकम् ॥ गुडूचीसत्वमथवा शर्करासहितं तथा । सर्वमेहहरो ज्ञेयो वंगावलेह उत्तमः ॥ १९० ॥

भाषा–दो रत्ती रांगेकी भस्म सहतके साथ मिलाकर चाटनेसे, गुड और

गन्धक २ तोले या सतगिलोय और खांड सेवन करनेसे समस्त प्रमेह दूर होते हैं। इसका नाम वज्रावलेह है ॥ १९० ॥

विडंगाद्यलौहम्।

विडंगत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च।
जीरकाभ्यां युतं हन्ति प्रमेहानतिदारुणान् ॥
लौहं मूत्रविकारांश्च सर्वानेव विनाशयेत् ॥ १९१ ॥

भाषा-वायविडङ्ग, त्रिफला, मोथा, पीपल, सोंठ, जीरा, काला जीरा और लोहा इन सबको बराबर लेकर सेवन करनेसे सर्व प्रकारके मूत्रविकार और दारुण प्रमेहका नाश होता है ॥ १९१ ॥

आनन्दभैरवो रसः।

वंगभस्म मृतं स्वर्णं रसं क्षौद्रैर्विमर्दयेत्।
द्विगुंजं भक्षयेन्नित्यं हन्ति मेहं चिरोद्भवम् ॥
गुंजामूलं तथा क्षौद्रैरनुपानं प्रशस्यते ॥ १९२ ॥

भाषा-रांगा, सुवर्ण और रससिन्दूर इन सबको बराबर ले एकत्र मधुके साथ मर्दन करके २ रत्ती सेवन करे इससे पुराना मेह ध्वंस होता है। इसको सेवन करके सोंठके साथ चोटलीकी जडका अनुपान करे। इसका नाम आनन्दभैरव रस है ॥ १९२ ॥

विद्यावागीशरसः।

मृतसूताभ्रनागं च स्वर्णं तुल्यं प्रकल्पयेत्। महानिम्बस्य चूर्णं तु चतुर्भिः सममाहरेत् ॥ मधुना लेहयेन्माषं लालामेहप्रशान्तये। सक्षौद्रं रजनीचूर्णं लेह्यं निष्कद्वयं तथा ॥ असाध्यं नाशयेन्मेहं विद्यावागीशको रसः ॥ १९३ ॥

भाषा-रससिन्दूर, अभ्रक, सीसा और सुवर्ण इन सबको बराबर लेकर मिलावे। इस औषधिको सेवन करके २ तोले हलदीका चूर्ण सहतके साथ सेवन करे। इसका नाम विद्यावागीश रस है ॥ १९३ ॥

मेहमुद्गरो रसः।

रसांजनं विडं दारु बिल्वगोक्षुरदाडिमम्। भूनिम्बं पिप्पलीमूलं त्रिकटु त्रिफला त्रिवृत् ॥ प्रत्येकं तोलकं देयं लौहचूर्णं तु तत्समम्। पलैकं गुग्गुलुं दत्त्वा घृतेन वटिकां कुरु॥ माषैका निर्म्मिता

चेयं मेहमुद्गरसंज्ञिनी । श्रीमद्गहननाथेन लोकनिस्तारकारिणा ॥ अनुपानं प्रकर्त्तव्यं छागीदुग्धं जलं च वा । विंशन्मेहं निहन्त्याशु मूत्रकृच्छ्रं हलीमकम् ॥ अश्मरीं कामलां पांडुं मूत्राघातमरोचकम् । अर्शांसि व्रणकुष्ठं च वातरक्तं भगन्दरम्॥१९४॥

भाषा-रसौत, विडनोन, दारुहलदी, वेल, गोखरू, दाडिम, चिरायता, पीपलामूल, त्रिकुटा, त्रिफला, निसोत, लोहचूर्ण इन सबको एक २ तोला ले । गूगल एक पल इन सबको घीके साथ घोटकर एक २ मासेकी गोलियां बनावे । इसका नाम मेहमुद्गर रस है । इसको सेवन करके बकरीका दूध अथवा जलका अनुपान करे । इससे २० प्रकारके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, हलीमक, पथरी, पाण्डु, कामला, मूत्राघात, अरुचि, बवासीर, फोडा, कोढ, वातरक्त और भगन्दरका नाश होता है ॥ १९४ ॥

मेघनादो रसः ।

भस्मसूतं समं कान्तमभ्रकं च शिलाजतु । शुद्धताप्यं शिलाव्योषत्रिफलां कोठजीरकम् ॥ कार्पासबीजं रजनीचूर्णं भाव्यं च वह्निना । विंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥ मासमात्रात् हरेन्मेहं मेघनादरसो महान् ॥ १९५ ॥

भाषा-रससिन्दूर, कान्तलोह, अभ्रक, शिलाजीत, सोनामक्खी, मैनशिल, त्रिकुटा, त्रिफला, अंकोठफल, जीरा, विनौले और हलदी इन सबको बराबर ले चित्रकके रसमें २० वार भावना देकर एक २ मासेकी गोलियां बनावे । इसका नाम मेघनाद रस है । सहदके साथ इस औषधिको चाटना चाहिये । इससे मेहरोगका नाश होता है ॥ १९५ ॥

चन्द्रप्रभावटी ।

मृतसूताभ्रकं लोहं नागं वंगं समं समम् । एलाबीजं लवंगं च जातीकोषफलं तथा ॥ मधुकं मधुयष्टी च धात्री च समशर्करा । कर्पूरं खादिरं सारं शताह्वा कंटकारिका ॥ अम्लवेतसकं तुत्थं दिनैकं लांगलीद्रवैः । भावयेन्मेषदुग्धेन नागवल्या रसैर्दिनम् ॥ वटिका बदरास्थ्याभा कार्या चन्द्रप्रभापरा । भक्षयेद्वटिकामेकां सर्वमेहकुलान्तिकाम् ॥ धात्रीपटोलपत्रं वा कषायां वामृतायुतम् । सक्षौद्रं भक्षयेच्चानु सर्वमेहप्रशान्तये ॥ १९६ ॥

भाषा-रससिन्दूर, अभ्रक, लौह, सीसा, रांगा, इलायची, लौंग, जायफल, मुलहठी, आमला, महुएका सार, खांड.कपूर, खैरसार, सौंफ, कटेरी, अमलवेत इन सबको बराबर लेकर एक दिन कलिहारीके रसमें खरल करे। फिर मेषदुग्ध और पानके रसमें एक दिन भावना देकर बेरकी गुठलीकी बराबर गोलियां बनावे। इसका नाम चन्द्रप्रभावटी है। इसकी एक गोली सेवन करनेसे सर्व प्रकारके मेहरोग जाते रहते हैं। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे आमला और परवलका क्वाथ सतागिलोय और सहद मिलाकर अनुपान करे॥ १९६॥

वंगेश्वरो रसः।

रसभस्मसमायुक्तं वङ्गभस्म प्रकल्पयेत्।
अस्य माषद्वयं हन्ति मेहान् क्षौद्रसमन्वितम्॥ १९७॥

भाषा-रससिन्दूर और वंगभस्म बराबर लेकर दो मासे सहतके साथ सेवन करनेसे मेहरोग ध्वंस होता है। इसका नाम वंगेश्वर रस है॥ १९७॥

प्रकारान्तरम्।

रसेन वंगं द्विगुणं प्रगृह्य विद्राव्य निक्षिप्य समुद्रजे तत्। विमर्दयेदम्लजलेन गोलं कृत्वा सुसंवेष्ट्य पुटेत तीव्रम्॥ ततः क्षिपेत् तज्जलपात्रमध्ये नीरं तु सन्त्यज्य गृहाण सूतम्। तद्वल्लयुग्मं मधुना समेतं ददीत पथ्यं मधुरं समुद्गम्॥ बिल्वोत्थपिण्डं च विपाच्य तक्रे ददीत हिंगु दधि वर्जयेच्च॥ वङ्गं विना रसभस्मेदं लवणस्यात्र विंशतिभागः सर्वरोगोपकारकम्॥१९८॥

भाषा-एक भाग रांगा, दो भाग पारा इन दोनोको गलाकर लवणमे डाले। फिर कांजीसे पीसकर गोला बनावे। फिर उस गोलेको सूखे पात्रमें रखकर लिप्त करता हुआ तीव्र पुट दे फिर जल भरे पात्रमें डालकर जलके भागको निकाल डाले और रस ग्रहण करे। इस औषधिको २ रत्ती लेकर सहतके साथ मिलाय सेवन करे। सहत, मूंग और तक्रमें पका हुआ बेलका मांड इसमें पथ्य है। इस औषधिका सेवन करके हींग और दहीको छोडे। यह रसभस्म वातके सिवाय और सब रोगोंमे दी जा सकती है। औषधिको जो लवणमें डालनेको कहा, वहांपर वीस मासे लवण हो॥ १९८॥

बृहद्वंगेश्वरो रसः।

वङ्गभस्म रसं गंधं रौप्यं कर्पूरमभ्रकम्। कर्षं कर्षं मानमेषां

सूतांघ्रिहेममौक्तिकम् ॥ केशराजरसैर्भाव्यं द्विगुंजाफलमानतः। प्रमेहान् विंशतिं चैव साध्यासाध्यमथापि वा॥ मूत्रकृच्छ्रं तथा पाण्डुं धातुस्थं च ज्वरं जयेत् । हलीमकं रक्तपित्तं वातपित्त-कफोद्भवम् ॥ ग्रहणीमामदोषं च मन्दाग्नित्वमरोचकम्। एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वृक्षमिंद्राशनिर्यथा ॥ बृहद्वंगेश्वरो नाम सोमरोगं निहन्त्यलम् । बहुमूत्रं बहुविधं मूत्रमेहं सुदारुणम् ॥ मूत्रातिसारं कृच्छ्रं च क्षीणानां पुष्टिवर्द्धनः। ओजस्तेजस्करो नित्यं स्त्रीषु सम्यक् वृषायते ॥ बलवर्णकरो रुच्यः शुक्रसंजननः परः। छागं वा यदि वा गव्यं पयो वा दधि निर्मलम् ॥ अनुपानं प्रयोक्तव्यं बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् । दद्याच्च बाले प्रौढे च सेवनार्थं रसायनम् ॥ १९९ ॥

भाषा—वंगभस्म, पारा, गन्धक, चांदी, कपूर, अभ्रक ये सब दो २ तोले, सुवर्ण और मुक्ता दो २ मासे ये समस्त एकत्र मर्दन करके कूकरभांगरेके रसमें ७ भावना दे। फिर दो रत्तीकी एक २ गोली बनाकर सेवन करे। इससे २० प्रकारके साध्यासाध्य प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पाण्डु, धातुगत ज्वर और हलीमक, रक्तपित्त, वातपित्त, संग्रहणी, आमदोष, मन्दाग्नि, अरुचि ये सब रोग दूर होते हैं। वज्र जिस प्रकार वृक्षोको गिराता है, वैसेही यह औषधि सब रोगोंका नाश करती है। इसका नाम बृहद्वंगेश्वर रस है। इससे सोमरोग, अनेक प्रकारके बहुमूत्र, घोरमूत्र, मेह, मूत्रातिसार और मूत्रकृच्छ्रका नाश हो जाता है। इस औषधिसे शीर्ण मनुष्यभी पुष्ट हो जाता है। यह तेजदायी, बलवर्णजनक, रुचिकर और शुक्रकी बढानेवाली ह। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे दोषका बलाबल विचार कर बकरीका वा गायका दूध या दही अनुपान करे। बालक या वृद्ध सबहीके लिये यह औषधि रसायनरूप है॥ १९९ ॥

कस्तूरीमोदकः ।

कस्तूरी वनिता क्षुद्रा त्रिफला जीरकद्वयम् । एलाबीजं त्वचं यष्टिमधुकं मिषिवालकम् ॥ शतपुष्पोत्पलं धात्री मुस्तकं भद्रसंज्ञकम् । कदलीनां फलं पक्कं खर्जूरं कृष्णतिलकम् ॥ कोकिलाख्यस्य बीजं च माषमात्रं समं समम् । यावन्त्येतानि

चूर्णानि द्विगुणा सितशर्करा ॥ धात्रीरसेन पयसा कूष्माण्ड-स्वरसेन च । विपचेत्पाकविद्वैद्यो मंदमंदेन वह्निना ॥ अव-तार्य सुशीते च यथालाभं विनिक्षिपेत् । अक्षमात्रं प्रयुंजीत सर्वमेहप्रशान्तये ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपाति-कम् । सोमरोगं बहुविधं मूत्रातिसारमुल्बणम् ॥ मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु मूत्राघातं तथाश्मरीम् । ग्रहणीं पांडुरोगं च कामलां कुम्भकामलाम् ॥ वृष्यो बलकरो हृद्यः शुक्रवृद्धिकरः परः । कस्तूरीमोदकश्चायं चरकेण च भाषितः ॥ २०० ॥

भाषा-कस्तूरी, प्रियंगु, कटेरी, त्रिफला, जीरा, काला जीरा, इलायची, दालचीनी, सौंफ, सुगन्धिवाला, सोया, कूडा, आमला, भद्रमोथा, पका हुआ केला, खजूर, काले तिल और तालमखाने इन सबको एक २ मासा ले और इन सब द्रव्योंसे दूनी खांड लेकर पाकका जाननेवाला चिकित्सक आमलेका रस, दूध और पेठेके रसके साथ मन्द २ अग्निके तापसे पाक करे । शीतल होनेपर उतार ले । दो तोलेके प्रमाणसे सेवन करे । इसका नाम कस्तूरीमोदक है । चरकजीने इस औष-धिको कहा है । इससे सर्व प्रकारके मेहरोग, वातिक, पैत्तिक, सान्निपातिक, सोमरोग, अनेक प्रकारके मूत्रातिसार, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, संग्रहणी, पाण्डु, कामला और कुम्भकामला दूर होता है । यह वृष्य, बलकारी, हृद्य और शुक्रवर्द्धक है २०० ॥

मेहकेसरी ।

मृतं वंगं सुवर्णं च कान्तलोहं च पारदम् । मुक्ता गुडत्वचं चैव सूक्ष्मैला पत्रकेशरम् ॥ समभागं विचूर्ण्याथ कन्यानीरेण भावयेत् । द्विमाषां वटिकां खादेत् दुग्धान्नं प्रपिबेत्ततः ॥ प्रमेहं नाशयत्याशु केसरी करिणं यथा । शुक्रप्रवाहं शमयेत् त्रिरा-त्रान्नात्र संशयः ॥ चिरजातं प्रवाहं च मधुमेहं च नाशयेत् ॥ २०१ ॥

भाषा-रांगा, सुवर्ण, कान्तलोह, पारा, मुक्ता, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे । फिर घीकारके रसमें भावना देकर दो मासेकी एक २ गोली बनावे । इसकी एक २ गोली सेवन करके दूधभात पथ्य करे । सिंह जिस प्रकार गजराजका नाश करता है, वैसेही यह औषधि प्रमेहरोगका संहार करती है । इस औषधिके प्रसादसे तीन दिनमें शुक्रमेह और बहुत दिनका मधुमेह जाता रहता है । इसका नाम मेहकेसरी है ॥ २०१ ॥

मेहवज्रः ।

भस्मसूतं मृतं कान्तलौहभस्म शिलाजतु । शुद्धताप्यं शिला व्योषं त्रिफला बिल्वजीरकम् ॥ कपित्थं रजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् । त्रिंशद्वारं विशोष्याथ लिह्याच्च मधुना सह ॥ निष्कमात्रं हरेन्मेहान् मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् । महानिम्बस्य वीजं च षण्निष्कं पेषितं च यत् ॥ पलं तंडुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च । एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरोत्थितम् ॥ २०२ ॥

भाषा–रससिन्दूर, कान्तलोह, शिलाजीत, मैनाशिल, सोनामक्खी, त्रिकुटा, त्रिफला, वेल, जीरा, कैथ, हलदी इन सबको बराबर लेकर भांगरेके रसमें ३० बार भावना दे । फिर आधे २ तोलेकी गोलियां बनाय सहतके साथ चाटे । इसका नाम मेहवज्र है । यह प्रमेह और अत्यन्त घोर मूत्रकृच्छ्ररोगका नाश करता है । इसको सेवन करके ३ तोले महानीमके बीज, एक पल चावलोंका जल और २ तोले घृत अनुपान करे । इसके प्रसादसे पुराना मेहरोगभी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ २०२ ॥

योगेश्वरो रसः ।

सूतकं गंधकं लौहं नागं चापि वराटिकाम् । ताम्रकं वंगभस्मापि व्योमकं च समांशिकम् ॥ सूक्ष्मैलापत्रमुस्तं च विडंगं नागकेशरम् । रेणुकामलकं चैव पिप्पलीमूलमेव च ॥ एषां च द्विगुणं भागं मर्दयित्वा प्रयत्नतः । भावना तत्र दातव्या धात्रीफलरसेन च ॥ मात्रा चणकतुल्या च गुटिकेयं प्रकीर्तिता । प्रमेहं बहुमूत्रं च अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ व्रणं हन्ति महाकुष्ठमर्शांसि च भगन्दरम् । योगेश्वरो रसो नाम महादेवेन भाषितः ॥ २०३ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, लोहा, सीसा, कौडी, तांबा, रांगा, अभ्रक ये सब द्रव्य एक २ भाग, छोटी इलायची दो भाग और तेजपात, मोथा, वायविडङ्ग, नागकेशर, रेणुका, आमला, पीपलामूल इन सबको इलायचीकी समान ले । सब द्रव्योंको एकत्र आमलेके रसमे भावना देकर चनेकी बराबर गोली बनावे । इसका नाम योगेश्वर रस है । महादेवजीने इस औषधिको कहा है । यह प्रमेह, पथरी, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, फोडा, कुष्ठ, अर्श और भगन्दरका नाश करता है ॥ २०३ ॥

मेहहरो रसः।

गन्धेन सूतं द्विगुणं प्रगृह्य विमर्दयेद्गोक्षुरनीरयुक्तम्। शुष्कं च कृत्वाथ सुतप्ततामचक्रं च तस्योपरि विन्यसेच्च॥ चक्रे विलग्नं च ततः प्रगृह्य मूषोदरे ध्मापय टंकणेन। संगृह्य चक्रे च विधाय गोलं त्रिःसप्तकालेन विमुक्तिमेति॥ २०४॥

भाषा—एक भाग गन्धक, २ भाग पारा एकत्र करके गोखरूके क्वाथमें पीसकर सुखा ले। फिर इसको अति गरम तांबेकी चकतीके ऊपर रखनेसे औषध चकतीमें लग जायगी। फिर चक्रमें लगी हुई औषधको ग्रहण करके बराबर सुहागेकी खीलके साथ घडियामें भरके पुट दे। इसका नाम मेहहर रस है। इसको सेवन करनेसे ३ सप्ताहमें मेहरोगका नाश होता है॥ २०४॥

रुजादलनवटी।

रसबलिविषवह्नित्रैफलं व्योषयुक्तं समलवमिति सर्वैर्द्विगुणः स्याद्गुडोऽपि। जठरगदसमीरश्लेष्ममेहान् सगुल्मान् हरति झटिति पुंसां वल्लमात्रा वटीयम्॥ २०५॥

भाषा—पारा, गन्धक, विष, चित्रक, त्रिफला, त्रिकुटा इन सबको बराबर ले। सब द्रव्योंसे दूना गुड, एकत्र करके दो रत्तीकी बराबर एक २ गोली बनावे। इसका नाम रुजादलनवटी है। इससे उदररोग, वातिक, श्लेष्मिक मेह और गुल्मरोगका नाश होता है॥ २०५॥

गगनादिलोहम्।

गगनं त्रिफला लौहं कुटजं कटुकत्रयम्। पारदं गंधकं चैव विषटंकणसञ्ज्ञिकाः॥ त्वगेला तेजपत्रं च वंगं जीरकयुग्मकम्। एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ तदर्द्धं चित्रकं चूर्णं कर्षैकं मधुना लिहेत्। अवश्यं विनिहन्त्याशु मूत्रातीसारसोमकम्॥ २०६॥

भाषा—अभ्रक, त्रिफला, लोह, कुटज, त्रिकुटा, पारा, गन्धक, विष, सुहागेकी खील, सज्जीखार, दालचीनी, इलायची, तेजपात, रांगा, जीरा, काला जीरा इन सबको बराबर ग्रहण करके चूर्ण करे। सब चूर्णसे आधा चीताचूर्ण मिलावे। इस चूर्णको २ तोले सहदके साथ लेहन करे। इस औषधिका नाम गगनादि लौह है। इससे सोमरोग और मूत्रातिसारका नाश होता है॥ २०६॥

सोमेश्वरो रसः ।

शालार्जुनं लोध्रकं च कदम्बागुरुचंदनम् । अग्निमन्थं निशायुग्मं धात्री दाडिमगोक्षुरम् ॥ जम्बुवीरणमूलं च भागमेषां पलार्द्धकम् । रसगन्धकधान्याब्दमेलापत्रं तथाभ्रकम् ॥ लौहं रसांजनं पाठा विडंगं टङ्कजीरकम् । प्रत्येकं पलिकं भागं पलार्द्धं गुग्गुलोरपि ॥ घृतेन वटिकां कृत्वा खादेत् षोडशरक्तिकाम् । गहनानन्दनाथेन रसो यत्नेन निर्मितः ॥ सोमेश्वरो महातेजा सोमरोगं निहंत्यलम् । एकजं द्वन्द्वजं चैव सन्निपातसमुद्भवम् ॥ मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं कामलां च हलीमकम् । भगन्दरोपदंशौ च विविधान् पिडिकान् व्रणान् ॥ विस्फोटार्बुदकंडुं च सर्वमेहं विनाशयेत् ॥ २०७ ॥

भाषा—सालका काठ, अर्ज्जुनकी छाल, लोध, कदम्ब, अगर, चन्दन, गनियारी, हलदी, दारुहलदी, आमला, दाडिम, गोखरू, जामन, खश इन सबको आधा २ पल ले । पारा, गन्धक, धनिया, मोथा, इलायची, तेजपात, अभ्रक, लौह, रसौत, आकनादि, वायविडङ्ग, सुहागा, जीरा ये सब आठ २ तोले ले । गूगल ४ तोले ले इन सब द्रव्योंको घीके साथ घोटकर १६ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इस औषधिका नाम सोमेश्वर रस है । गहनानन्दनाथने यत्नसहित इस औषधिको रचा है । इस महावीर्यवान् औषधिसे सोमरोग जाता रहता है । एकज, द्वन्द्वज, सान्निपातिक, मूत्रकृच्छ्र, कामला, हलीमक, भगन्दर, पीडिका, विस्फोटक, अर्बुद, कण्डु और मेहादिरोग इस औषधिसे ध्वंसित होते हैं ॥ २०७ ॥

सोमनाथरसः ।

कर्षं जारितलौहं च तदर्द्धं रसगंधकम् । एलापत्रं निशायुग्मं जम्बुवीरणगोक्षुरम् ॥ विडंगं जीरकं पाठा धात्री दाडिमटंकणम् । चन्दनं गुग्गुलुर्लोध्रशालार्जुनरसांजनम् ॥ छागीदुग्धेन वटिकां कारयेत् दशरक्तिकाम् । निर्मितो नित्यनाथेन सोमनाथरसोऽप्ययम् ॥ योनिशूलं मेढ्रशूलं सर्वजं चिरकालजम् । बहुमूत्रं विशेषेण दुर्जयं हन्त्यसंशयः ॥ २०८ ॥

भाषा—लोहा २ तोले, पारा, गन्धक, इलायची, तेजपात, हलदी, दारुहलदी,

जामन, खस, गोखरू, वायविडङ्ग, जीरा, आकनादि, आमला, दाडिम, सुहागेकी खील, चन्दन, गूगल, लोध, शाल, अर्जुन और रसौत ये सब एक १ तोला ले सब द्रव्यको एकत्र करके बकरीके दूधमें पीसकर १० रत्तीकी एक २ गोली बनावे। इसका नाम सोमनाथ रस है। नित्यनाथने इस औषधिको रचा। इससे अनेक प्रकारके सोमरोग, प्रदर, योनिशूल, मेढ्रशूल और बहुमूत्र आरोग्य होता है इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ २०८ ॥

बृहत्सोमनाथरसः।

हिंगूलसंभवं सूतं पालिधारसमर्दितम्। रंगाशोधितगंधं च तेनैव कज्जलीकृतम्॥ तद्द्वयोर्द्विगुणं लोहं कन्यारसविमर्दितम्। अभ्रकं वंगकं रौप्यं खर्परं माक्षिकं तथा॥ सुवर्णं च समं सर्वं प्रत्येकं च रसार्द्धकम्। तत्सर्वं कन्यकाद्रावैर्मर्दयेद्भावयेत्ततः॥ भेकपर्णीरसेनैव गुंजाद्वयवटीं ततः। मधुना भक्षयेच्चापि सोमरोगनिवृत्तये॥ प्रमेहान् विंशतिं हन्ति बहुमूत्रं च सोमकम्। मूत्रातिसारं कृच्छ्रं च मूत्राघातं सुदारुणम्॥ बहुदोषं बहुविधं प्रमेहं मधुसंज्ञकम्। हन्ति मेहमिक्षुमेहं लालामेहं विनाशयेत्॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सोमसंज्ञकम्। नाशयेद्बहुमूत्रं च प्रमेहमविकल्पतः॥ २०९॥

भाषा-पहले सिंगरफसे उत्पन्न हुए पारेको फरहदके रसमें और मूषाकर्णीके रसमें शोधकर उस पारे और गन्धकको बराबर ग्रहण करना चाहिये। इसकी कज्जली बनावे। फिर उस कज्जलीसे दूना लौह, पारेसे आधा अभ्रक, रांगा, चादी, खपरिया, सोनामक्खी और सुवर्ण यह समस्त द्रव्य ले। फिर कज्जली और लौह दोनोंको घीकारके रसमें मर्दन करके तिसके साथ अभ्रक मिलावे। फिर घीकारके रसमें मर्दन करके मूषाकर्णीके रसमे भावना दे। फिर दो २ रत्तीकी गोलिया बनाय सोमरोगका नाश करनेके लिये मधुके साथ प्रयोग करे। इसका नाम बृहत्सोमनाथ रस है। इस औषधिसे२०प्रकारके प्रमेह, बहुमूत्र, सोमरोग, मूत्रातिसार, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, बहु दोषयुक्त अनेक प्रकारके मधुमेह, इक्षुमेह, लालामेह और वातजनित, पित्तजनित और कफजनित सोमरोग और बहुमूत्रका नाश हो जाता है ॥ २०९॥

तालकेश्वरो रसः।

तालं सूतं समं गंधं मृतलोहाभ्रवंगकम्। मर्दयेन्मधुना चैव

रसोऽयं तालकेश्वरः॥ मासमात्रं भजेत् क्षौद्रैर्बहुमूत्रप्रशान्तये। उदुम्बरफलं पक्कं चूर्णितं कर्षमानतः ॥ संलेह्यं मधुना सार्द्ध-मनुपानं सुखावहम् ॥ २१० ॥

भाषा—हरिताल, पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक और रांगा इन सबको बराबर ग्रहण करके एक साथ सहतमें पीसे इसका नाम तालकेश्वर रस है । बहुमूत्र रोगका नाश करनेके लिये इस औषधिको सेवन करके पके गूलरोंका चूर्ण २ तोले सहतके साथ चाटे । इस प्रकारके अनुपानसे रोगी चंगा होता है ॥ २१० ॥

अगस्तिरसः ।

रसोंऽशुमाली जयपाललोहः शिला हरिद्रा वलयं समांशाः । व्योषाग्निभूपार्द्रकनिम्बनीरैर्निशुण्डिकारग्वधमूलकाभिः ॥ पृथग्विमर्द्योदरनाशनोऽयमगस्तिसूतः स शिवागुडोऽयम् । संपाचनादिक्रमशुद्धदेहे वल्लद्वयोऽथ कम्पसंयुतो वा ॥ कम्पिल्ल-चूर्णेन समं च दत्त्वा जलोदरादीन् जयतीह रोगान् ॥ २११ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, जमालगोटा, लोह, मैनशिल, हलदी, तांबा इन सबको बराबर ले त्रिकुटाके क्वाथमें एक वार, चित्रकके रसमें एक वार, भांगरेके रसमें एक वार, अदरकके रसमे एक वार, नीमके रसमें एक वार, संभालूके रसमें एक वार और अमलतासकी छालके रसमें एकवार मर्दन करके दो वल्लकी एक २ गोली बनावे । इसका नाम अगस्ति रस है । पाचनादिसे रोगीकी देह शुद्ध होवे तो यह औषधि हरीतकीचूर्ण और गुडके साथ अथवा कबीलेके साथ सेवन करनेको दे । इसके प्रसादसे जलोदररोग निःसन्देह नाशको प्राप्त होता है ॥ २११ ॥

वैश्वानरो रसः ।

रसकं गंधकं चाभ्रं शिलाजित् कान्तलोहकम् । त्रिकटुश्चित्रकं कुष्ठं निर्गुण्डी मूषली विषम् ॥ अजमोदा च सर्वेषां द्वौ द्वौ भागौ प्रकल्पयेत् । चूर्णीकृत्य ततः सर्वं निम्बक्काथेन भावयेत् ॥ भावयेत् एकविंशञ्च भृंगराजेन सप्तधा । मधुना गुटिकां शुष्कां रजन्यां तां प्रदापयेत् ॥ वैश्वानराभिधो योगो जलोदरविशोषणः ॥ २१२ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, अभ्रक, शिलाजीत, कान्तलोह, त्रिकुटा, चीता, कूडा,

संभालू, मूसली, विष और अजवायन इन सबको दो २ भाग ले, सबका चूर्ण करके नींबूके काथमें २१ बार और भांगरेके रसमें ७ भावना देकर गोली बनावे। रात्रिकालमें सहतके साथ मिलाय इस औषधिका सेवन करे। इसका नाम वैश्वानर रस है। इससे जलोदर रोगका नाश होता है॥ २१२॥

त्रैलोक्यसुन्दरो रसः।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं ताम्राभ्रं सैन्धवं विषम्। कृष्णजीरं विडंगं च गुडूचीसत्वचित्रकम्॥ उग्रगंधां यवक्षारं प्रत्येकं कर्षमात्रकम्। निर्गुण्डिकाद्रवैरग्निबीजपूरद्रवैर्दिनम्॥ मर्दयेत् शोधयेत् सोऽयं रसस्त्रैलोक्यसुन्दरः। गुंजाद्वयं घृतैर्लेह्यं वातोदरकुलान्तकम्॥ वह्निचूर्णं यवक्षारं प्रत्येकं च पलद्वयम्। घृतप्रस्थं विपक्तव्यं गोमूत्रैश्च चतुर्गुणैः॥ घृतावशेषं कर्त्तव्यं कर्षमात्रं पिबेदनु॥ २१३॥

भाषा-पारा एक तोला, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, सेंधा, विष, काला जीरा, वायविडङ्ग, सतगिलोय, चित्रक, वच और जवाखार ये सर्व दो २ तोले ले। समस्त द्रव्य एकत्र करके संभालू, चित्रक और बिजौरा नींबूके रसमें एक २ दिन मर्दन करके दो रत्तीकी बराबर एक २ गोली बनावे। इसका नाम त्रैलोक्यसुन्दर रस है। घीके साथ इस औषधिको चाटनेसे वातोदरका नाश होता है। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे चित्रक दो पल, जवाखार २ पल, घी ४ सेर और जल १६ सेर एकत्र पाक करके जब केवल घी रह जाय तब उतारकर उसका २ तोले अनुपान करे॥ २१३॥

वैश्वानरी वटी।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं मृताकायः शिलाजतु। रसमानं प्रदातव्यं रसस्य द्वैगुणं विषम्॥ त्रिकटु चित्रकं वीरा निर्गुण्डी मूषलीरजः। अजमोदा विषांशेन प्रत्येकं च नियोजयेत्॥ निम्बपंचांगुलकाथैर्भावना चैकविंशतिः। भृंगराजरसैः सप्त दत्त्वा क्षौद्रैर्विलोडयेत्॥ भक्षयेद्बदरास्थ्याभां वटिकां तां दिवानिशि। श्लेष्मोदरं निहन्त्याशु नाम्ना वैश्वानरी वटी॥ देवदारुवह्निमूलकल्कं क्षीरेण पाययेत्। भोजनं मेषदुग्धेन कुलत्थानां रसेन तु॥ २१४॥

भाषा-पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, एक २ भाग तांबा, लोहा, शिलाजीत, त्रिकुटा, चीता, काकोली, संभालू, तालमूलचूर्ण, अजवायन और विष दो भाग-इन सबको एकत्र करके नीमके रसमें और अण्डीके मूलके रसमें २१ भावना देकर भांगरेके रसमें ७ भावना दे। फिर सहतके साथ मिलाकर वेरकी गुठलीकी समान एक २ गोली बांधे। यह गोली दिनके समय और रात्रिके समय सहतके साथ चाटे। इसका नाम वैश्वानरी वटी है। इससे कफजनित उदररोगका नाश हो जाता है। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे देवदारु और चित्रकके जडकी छाल बराबर मर्दन करके दूधके साथ अनुपान करे। फिर भैंसका दूध और कुलथीके दाने पथ्य करे॥ २१४॥

जलोदरारी रसः ।

पिप्पली मरिचं ताम्रं रजनीचूर्णसंयुतम्। स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम्॥ निष्कं खादेद्द्विरेकं स्यात् सद्यो हन्ति जलोदरम्। रेचनान्ते च सर्वेषां दध्यन्नं स्तम्भने हितम्॥ दिनान्ते च प्रदातव्यमन्नं वा मुद्गयूपकम्॥ २१५॥

भाषा-पीपल, मिरच, तांबा, हलदी इनको बराबर लेकर एकत्र करके थूहरके दूधमें मर्दन करे। फिर एक भाग जमालगोटेका चूर्ण मिलाय एक २ निष्क (४ भाग) की बराबर गोली बनावे। इसको सेवन करनेसे विरेचन होकर शीघ्र जलोदर रोगका नाश होता है। समस्त जुलावोंमे दहीभात सेवन करनेसे जुलावका स्तंभन हो जाता है। इस औषधिका सेवन करके दिनके समय मूंगका जूस और भात खाय। इसका नाम जलोदरारि रस है॥ २१५॥

महावह्निरसः ।

सूतस्य गन्धकस्याष्टौ रजनी त्रिफला शिलाः[1]। प्रत्येकं च द्विभागं स्यात् त्रिवृज्जैपालचित्रकम्॥ प्रत्येकं च त्रिभागं च व्योपं दन्तिकजीरकम्। प्रत्येकं सप्तभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत्॥ जयन्तीस्नुकपयोभृंगवह्निवातारितैलकैः। प्रत्येकेन क्रमाद्द्राव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक्॥ महावह्निरसो नाम्ना निष्कमुष्णजलैः पिबेत्। विरेचनं भवेत्तेन तक्रं भुक्तं ससैन्धवम्॥

१ चतु सूतस्य गन्धाष्टौ इति पाठान्तरम्। अर्थात् कोई २ चिकित्सक ४ भाग पारा और ८ भाग गन्धक ग्रहण करते है।

दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम्। सर्वोदरहरः प्रोक्तः श्लेष्मवातहरः परः ॥ २१६ ॥

भाषा-८ भाग पारा, ८ भाग गन्धक, दो २ भाग हलदी, त्रिफला, मैनशिल और तीन २ भाग निसोत, जमालगोटा और चित्रक, सात २ भाग करके त्रिकुटा, दन्ती और जीरा इन समस्त द्रव्योंका एकत्र चूर्ण करे। फिर जयंतीके रसमें ७ वार, थूहरके दूधमें ७ वार, भांगरेके रसमे ७ वार, चित्रकके रसमें ७ वार और अरण्डीके तेलमें सात वार भावना दे। इसका नाम महावह्नि रस है। इस औषधिको दो रत्ती लेकर गरम जलके साथ सेवन करे। इस औषधिको सेवन करनेके पीछे विरेचन हो तो सेंधायुक्त तक्र पान करे। सन्ध्याके समय पथ्य करे। इस औषधिको सेवन करके ठंडा पानी न पिये। इसके प्रभावसे सर्व प्रकारके उदररोग और वातश्लेष्मरोगोंका नाश हो जाता है॥ २१६ ॥

विद्याधरो रसः।

गंधकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिला। शुद्धसूतं च तुल्यांशं मर्द्दयेद्भावयेद्दिनम् ॥ पिप्पल्याः सुकषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत्। निष्कार्द्धं भक्षयेत् क्षौद्रैर्गुल्मं प्लीहादिकं जयेत् ॥ रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥ २१७ ॥

भाषा-गन्धक, हरिताल, रौप्य, मृतक ताम्र, मैनशिल और शुद्ध पारा इन सबको बराबर लेकर पिप्पलीके क्वाथमें और थूहरके दूधमें एक दिन भावना दे। इसका नाम विद्याधर रस है। इस औषधिको २ मासे लेकर सहतके साथ मिलाय सेवन करनेसे गोला और तिल्ली आदि रोग दूर होते हैं। इस औषधिको सेवन करे पीछे गायका दूध अनुपान करे॥ २१७॥

त्रैलोक्योडुम्बररसः।

द्वौ भागौ शिवबीजस्य गंधकस्य चतुष्टयम्। अभ्रवह्निविडंगानां गुडूचीसत्वनागयोः॥ कृष्णजीरकटूनां च लवणक्षीरयोरपि। प्रत्येकं भागमादाय मर्द्दयेत् सुरसाद्रवैः॥ बीजपूररसैर्भूयो मर्द्दयित्वा विशोधयेत्। त्रैलोक्योडुम्बरो नाम वातोदरकुलान्तकः॥ गुंजाद्वयं ततश्चास्य दद्रीत घृतसंयुतम्। भोजयेत् स्निग्धमुष्णं च पायसं च विवर्जयेत्॥ २१८ ॥

भाषा-पारा २ भाग, गन्धक ४ भाग और एक २ भाग अभ्रक, चित्रक, वायविडङ्ग, सतगिलोय, सीसा, काला जीरा, त्रिकुटा, सेंधा और जवाखार इन सबको संभालूके रसमें मर्दन करे । फिर नींबूके रसमें भावना देकर शुद्ध करे इसका नाम त्रैलोक्योडुम्बर रस है । इससे वातोदररोगका नाश होता है । घृतके साथ इस औषधिको २ रत्ती सेवन करना चाहिये । इसको सेवन करनेके पीछे चिकने व गरम द्रव्य छोड दे ॥ २१८ ॥

चक्रधरो रसः ।

ताम्रचक्रे रसं वंगं तुल्यं गंधं विषं क्षिपेत् । मर्दयेद्वह्निघनजै-गुडूचीं सुरसाद्रवैः ॥ पिप्पलीजीरतोयैश्च त्रिक्षारं पटुपंचकम् । सूततुल्यं पृथग्योज्यं रम्भाम्भोमर्दितं क्षणम् ॥ ततो लोहस्य पात्रेऽग्निरसैः संस्वेदितः क्षणम् । गुजाद्वयं ददीतास्य शुंठ्या-ज्येनार्द्रकेण वा ॥ २२९ ॥

भाषा-पारा, वंग, गन्धक और विष बराबर लेकर ताम्रके पात्रमें डाल चित्रक, मोथा, गिलोय, संभालू, पीपल और जीरेके क्काथमें मर्दन करे । फिर पंचलवण, त्रिक्षार (जवाखार, सज्जीखार और सुहागा) प्रत्येकको पारेकी बराबर ले उसके साथ मिलाय कुछ देरतक केलेके रसमें खरल करे । फिर चित्रकके रसके साथ लोहपात्रमें डालकर तपावे । रस सूख जानेपर २ रत्ती सोंठका चूर्ण और घी अथवा अदरखके रससे सेवन करे । इसका नाम चक्रधर रस है ॥ २२९ ॥

वंगेश्वरो रसः ।

रसवंगकयोरेकश्चत्वारस्ताम्रगंधयोः । अर्कक्षीरेण संमर्द्य पुटये-न्मृदुवह्निना ॥ एष वंगेश्वरो नाम गुल्मप्लीहनिकृन्तनः। गुंजाद्व-यं ददीतानु वसुचूर्णं घृताप्लुतम् ॥ २२० ॥

भाषा-एक भाग पारा, एक भाग रांगा, ४ भाग तांबा, ४ भाग गन्धक इसको आकके दूधके साथ खरल करके मन्द २ अग्निमें पुट दे । इसका नाम वंगेश्वर रस है । इसको सेवन करके घृतयुक्त आकका दूध पान करे । इससे उदररोग, गुल्म और तिल्लीका नाश होता है ॥ २२० ॥

पिप्पल्याद्यं लौहम् ।

**पिप्पलीमूलचित्राभ्रत्रिकत्रयेन्दुसैन्धवम् ।
सर्वचूर्णसमं लौहं हन्ति सर्वोदरामयम् ॥ २२१ ॥**

भाषा-पीपलामूल, चित्रक, अभ्रक, त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिजात, सेंधा इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे। सर्व चूर्णकी बराबर लौहचूर्ण मिलावे। इस औषधिका नाम पिप्पल्याद्य लौह है। इससे सर्व प्रकारके उदररोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २२१ ॥

उदरारिरसः।

पारदं शुक्तितुत्थं[1] च जैपालं पिप्पलीसमम्। आरग्वधफलान्मज्जा वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ॥ माषमात्रां वटीं खादेत् स्त्रीणां जलोदरं जयेत्। चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ जलोदरहरं चैव तीव्रेण रेचनेन[2] च ॥ २२२ ॥

भाषा-पारा, सीपीकी भस्म, तूतिया, जमालगोटा, पीपल इन सबको बराबर लेकर अमलतासका गूदा व थूहरके दूधके साथ घोटकर मासे २ भरकी गोलियां बनावे। इसका नाम उदरारि रस है। इसके सेवन करनेसे स्त्रियोंका उदररोग जाता रहता है। इसको सेवन करनेके पीछे इमलीका रस और दहीभात पथ्य करे। इसको सेवन करे पीछे विरेचन होकर जलोदरका नाश होता है ॥ २२२ ॥

रोहितकाद्यलौहम्।

रोहितकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृत् हन्ति च दारुणम् ॥ २२३ ॥

भाषा-एक २ तोला रुहेडा, त्रिफला, त्रिकुटा, मोथा, चित्रक और वायविडङ्ग सबकी बराबर लोहा एकत्र करके पीसे। इसका नाम रोहितकाद्य लौह है। इस औषधिका सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमांस और कठिन यकृद्रोग दूर होता है॥२२३

नाराचो रसः।

सूतं टंकणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम्। गंधकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजानि निस्तुषाणि च। द्विगुंजं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ गुल्मं प्लीहोदरं हन्ति पिबेत्तु चोष्णवारिणा ॥ २२४ ॥

भाषा-एक २ भाग पारा, सुहागेकी खील और मिरच, दो दो भाग गन्धक,

---

१ पारद शिखितुत्थ च। इति पाठान्तरम्। इस प्रकारके पाठको मानकर कोई २ चिकित्सक सीपीभस्मके बदले चित्रकका व्यवहार करते हैं।

२ रक्तोदरहर चैव कठिनमुदर तथा। इति पाठान्तरम्। अर्थात् इससे रक्तोदर और कठिन रोग उदरके ध्वंस हो जाते हैं।

पीपल और सोंठ इन सबको एक साथ चूर्ण करके सब द्रव्योंके बराबर बेछिलकेके जमालगोटे मिलावे । इसका नाम नाराच रस है । इस औषधिको दो चोटलीभर सेवन करनेसे रेचन होकर गोला, तिल्ली व उदररोगका नाश होता है । गरम जलके साथ इसको सेवन करे ॥ २२४ ॥

ताम्रप्रयोगः ।

केवलं जारितं ताम्रं शृंगवेररसैः सह ।
द्विगुंजं भक्षयेत्प्रातः सर्वोदरविनाशनम् ॥ २२५ ॥

भाषा–जारित ताम्रको अदरखके रसके साथ मिलाकर प्रभातको २ रत्ती सेवन करनेसे सर्व प्रकारके उदररोग नष्ट होते हैं ॥ २२५ ॥

बृहद्वंगेश्वरो रसः ।

सूतभस्म वंगभस्म भागैकं संप्रकल्पयेत् । गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च चतुःपलम् ॥ अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् । रुद्ध्वा तद्भूधरे पक्त्वा पुटकेन समुद्धरेत् ॥ बृहद्वंगेश्वरो नाम पीतो गुल्मोदरं जयेत् । घृतैर्गुञ्जाद्वयं लेह्यं निष्कां श्वेतपुनर्णवाम् ॥ गवां मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीभ्यां गवां जलैः२२६॥

भाषा–रससिन्दूर एक पल, रांगा एक पल, गन्धक और तावा चार पल इन सबको एक दिनतक थूहरके दूधमें घोटकर गोला बनावे । फिर इस गोलेको पुटमें बन्द करके भूधरयंत्रमें पाक करे । शीतल होनेपर ग्रहण करे । इसका नाम बृहद्वंगेश्वर रस है । इससे उदर और गुल्मरोगका नाश हो जाता है । २ रत्ती इस औषधिको लेकर घीके साथ मिलाकर चाटे । इसको सेवन करके आधा तोला सफेद सांठ या आधा तोला हलदी गोमूत्रके साथ मिलाकर अनुपान करे ॥२२६॥

इच्छाभेदी रसः ।

सूतं गंधं च मरिचं टंकणं नागराभये । जैपालबीजसंयुक्तं क्रमोत्तरगुणं भवेत् ॥ सर्वगुल्मोदरे देय इच्छाभेदी स्वयं रसः । द्वित्रिगुंजां वटीं भुक्त्वा तप्ततोयं पिबेदनु ॥ २२७ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, मिरच, सुहागेकी खील, सांठ, हर्रं और जमालगोटा-ये सब एक २ भाग अधिक ले । अर्थात् एक भाग पारा, २ भाग गन्धक, ३ भाग मिरच, ४ भाग सुहागेकी खील, पाच भाग सोंठ, छः भाग हर्रं और ७ भाग जमालगोटा इन सबको एकत्र मर्दन कर ले । इसका नाम इच्छाभेदी रस है ।

२ या तीन रत्तीकी गोलियां बनाय एक २ गोली सेवन करके गरम जलका अनुपान करे । इससे सर्व प्रकारके गुल्मोदर नष्ट होते हैं ॥ २२७ ॥

मतान्तरे इच्छाभेदी रसः ।

शुंठीमरिचसंयुक्तं रसगंधकटंकणम् । जैपालो द्विगुणं प्रोक्तं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ इच्छाभेदी द्विगुंजः स्यात् सितया सह दापयेत् । पिबेत्तु चुल्लुकान् यावत्तावद्वारान् विरेचयेत् ॥ तक्रोदनं खादितव्यं इच्छाभेदी यथेच्छया । बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणामयार्दिताः ॥ श्रान्तस्तृषार्त्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी । नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ॥ शूलार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ २२८ ॥

भाषा-सोंठ, मिरच, पारा, गन्धक, सुहागेकी खील इन सबको एक २ भाग ले जमालगोटा २ भाग । सबको एक साथ चूर्ण करे । २ रत्ती लेकर खांडके साथ खाय । इसको सेवन करके जितने वार जल पिये उतने वार विरेचन हो । इसका नाम इच्छाभेदी रस है । इस औषधिको सेवन करके विरेचन होनेपर फिर इच्छानुसार मठा भात खाय । बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, परिश्रान्त, तृष्णार्त्त, स्थूलकाय, गर्भवती, नवज्वरी, नवप्रसूता नारी, मन्दाग्निवाला, मदात्ययरोगी और शूलरोगीको इसका सेवन नहीं करना चाहिये । उनके लिये विरेचन औषधि वर्जित है ॥२२८॥

भेदिनी वटी ।

त्रिकंटकं च पयसा पिप्पल्या वटिका कृता ।
भेदिनीयं सिद्धिमती महागदनिषूदनी ॥ २२९ ॥

भाषा-पीपलके काथके साथ थूहरका दूध पीसकर गोली बनावे । इसका नाम भेदिनी वटी है । इस सिद्धिमती वटिकाको सेवन करनेसे विरेचन होकर महारोग ध्वंस होते हैं ॥ २२९ ॥

नित्यानन्दरसः ।

हिंगूलसंभवं सूतं गंधकं मृतताम्रकम् । वंगं नालं च तुत्थं च शंखं कांस्यं वराटिकाम् ॥ त्रिकटु त्रिफला लौहं विडंगं पटुपंचकम् । चविका पिप्पलीमूलं हवुषा च वचा तथा ॥ शठी पाठा देवदारु एला च वृद्धदारकम् । एतानि समभागानि वटिकां

कुरु यत्नतः ॥ हरीतकीरसं दत्त्वा पंचगुंजामितां शुभाम् । एकैकां भक्षयेन्नित्यं शीतं वारि पिबेदनु ॥ श्लीपदं कफवातोत्थं रक्तमांसगतं च यत् । मेदोगतं धातुगतं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बिल्वसंपदे । नित्यानन्दकरश्चायं यत्नतः श्लीपदे गदे ॥ २३० ॥

भाषा—सिंगरफसे निकाला हुआ पारा, गन्धक, ताम्र, वंग, हरिताल, तूतिया, शंख, कांसी, कौडी, त्रिकुटा, त्रिफला, लोहा, वायविडङ्ग, पांचों नमक, चव, पीपलामूल, हाऊबेर, वच, गन्धपलाशी, आकनादि, देवदारु, इलायची और विधायरा इन सबको बराबर लेकर एक साथ हरीतकीके रसमें मर्दन करके पांच २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । प्रतिदिन एक २ गोली सेवन करके शीतल जलका अनुपान करे । इसका नाम नित्यानन्द रस है । श्रीमान् गहनानन्दनाथने संसारके हित करनेकी कामनासे इस औषधिको प्रकट किया है । इससे कफवातजनित, रक्तमांसगत, मेदोगत और धातुगत श्लीपद रोगका नाश होता है। सब श्लीपदोंमें इस औषधिको यत्नके साथ प्रयोग करे ॥ २३० ॥

कणादिवटी ।

कणावचादारुपुनर्णवानां चूर्णं सबिल्वं समवृद्धदारकम् ।
संमर्द्य चैतस्य निहन्ति वल्लः सकांजिकः श्लीपदमुग्रवेगम् ॥ २३१ ॥

भाषा—पीपल, वच, देवदारु, सांठ और बेल इनको बराबर ले सबकी समान विधायरा मिलावे । फिर एक साथ भली भांतिसे मर्दन करके ३ रत्तीकी गोलियां बनावे । इसका नाम कणादि वटी है । कांजीके साथ इस औषधिको सेवन करनेसे श्लीपदका नाश होता है ॥ २३१ ॥

प्रख्यातं सर्वरोगेषु सूतभस्म च केवलम् । योजयेत् योगवाहं वा श्लीपदस्य निवृत्तये ॥ अन्त्रवृद्धौ योगवाहान् रसांश्च पर्पटीमपि । योजयेत् परिशुद्धस्य माषमेरण्डतैलतः ॥ शोथहा लोहप्रयोगोऽप्यत्र योज्यः ॥ २३२ ॥

भाषा—शुद्ध पारदभस्मसेही सब रोग दूर हो जाते हैं । श्लीपदादि रोकनेके लिये योगवाही पारदभस्म देनी चाहिये । अंत्रवृद्धिपीडामें योगवाही रस और पर्पटीरस अरण्डके तेलके साथ एक मासा प्रयोग करे । शोथनाशक लोह इस रोगमें देना चाहिये ॥ २३२ ॥

रौद्रो रसः ।

शुद्धं सूतं समं गंधं मर्द्यं यामचतुष्टयम् । नागवल्लीरसैर्युक्तं मेघनादपुनर्णवैः ॥ गोमूत्रपिप्पलीयुक्तं मर्द्यं रुद्ध्वा पुटेल्लघु । लिह्यात्क्षौद्रे रसो रौद्रो गुंजामात्रोऽर्बुदं जयेत् ॥ २३३ ॥

भाषा-पारा और गन्धकको बरावर लेकर एकत्र ४ प्रहरतक मर्दन करके पानके रसमें ७ वार, चौलाईके रसमे ७ वार, सांठके रसमें ७ वार, गोमूत्रमें ७ वार और पीपलके क्वाथमें ७ वार भावना दे फिर पुटमें बन्द करके लघुतापसे पाक करो । एक रत्ती औषधिको लेकर सहतके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अर्बुदरोगका नाश हो जाता है । इसका नाम रौद्ररस है ॥ २३३ ॥

तुल्यं जैपालबीजं च निम्बुतोयेन मर्द्दयेत् ।
तल्लेपादधिमांसानि विशीर्यन्ति न संशयः ॥
केवलतोयेनापि तुल्यादिप्रलेपः ॥ २३४ ॥

भाषा-जमालगोटा वरावर नींबूके रसमें पीसकर तिसका लेप करनेसे अर्बुद मांसका नाश हो जाता है । केवल जलके साथभी यह लेप दिया जा सकता है ॥

सर्वरोगादितं सर्वं योगवाहं च योजयेत् ।
विद्रधौ व्रणवत् सर्वं कर्म कुर्यात् भिषग्वरः ॥ २३५ ॥

भाषा-विद्रधिरोगमें और सब रोगोंमे सव प्रकारके योग प्रयोग करने चाहिये और व्रणकी समान सर्व प्रकारके कार्य करना चिकित्सकको उचित है ॥ २३५ ॥

कटुकाद्यं लौहम् ।

कटुकी त्र्यूषणं दन्ती विडंगं त्रिफला तथा । चित्रको देवकाष्ठं च त्रिवृद्धारणपिप्पली ॥ तुल्यान्येतानि चूर्णानि द्विगुणं स्यादयोरजः । क्षीरेण पीतमेतत्तु श्रेष्ठं श्वयथुनाशनम् ॥ २३६ ॥

भाषा-कुटकी, त्रिकुटा, दन्ती, विडङ्ग, त्रिफला, चित्रक, देवदारु, निसोत, गजपीपल इन सबको बरावर ग्रहण करके सबसे दूना लौहचूर्ण मिलावे । इसका नाम कटुकाद्य लौह है । इसको दूधके साथ पान करनेसे शोथ रोग जाता रहता है ॥ २३६ ॥

त्र्यूषणाद्यं लौहम् ।

अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकं चूर्णं च पीतं त्रिफलारसेन । शोथं निहन्यात् सहसा नरस्य यथाशनिर्वृक्षमुदीर्णवेगः ॥ २३७ ॥

भाषा-त्रिकुटा और जवाखार बराबर ले चूर्ण करके तिन सबके साथ लोह-चूर्ण मिलावे। फिर त्रिफलाके रसके साथ सेवन करे। इसका नाम त्र्यूषणाद्यलोह है। वज्र जिस प्रकार वृक्षको ढलाता है वैसेही यह औषधि शोथरोगका नाश करती है ॥

सुवर्चलाद्यं लोहम् ।

सुवर्च्चलं व्याघ्रनखं चित्रकं कटुरोहिणी ।
चव्यं च देवकाष्ठं च दीप्यकं लौहमेव च ॥
शोथं पांडुं तथा कासमुदराणि निहन्ति च ॥ २३८ ॥

भाषा-विरिया संचरनोन, नखी, चित्रक, कुटकी, चव, देवदारु, अजवायन इन सबको बराबर चूर्ण करके, सबकी बराबर लोहचूर्ण मिलावे। इसका नाम सुवर्चलाद्य लोह है इससे शोथ, पाण्डु और उदररोगका नाश होता है ॥ २३८ ॥

क्षारगुटिका ।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि पंच अयश्चतुष्कं त्रिफला च व्योषम् । सपिप्पलीमूलविडंगसारं मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ॥ कलिंकांगकाश्चित्रकमूलपाठा यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलांशम् । सहिंगु कर्षं त्वतिसूक्ष्मचूर्णं द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम् ॥ स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेन सार्धमालोड्य यावद्घनमप्यदग्धम् । स्त्यानं ततः कोलसमां च मात्रां कृत्वा तु शुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात् ॥ प्लीहोदरं श्वित्रहलीमकार्शःपांड्वामयारोचकशोथशोषान् । विषूचिकागुल्मगराश्मरीं च सश्वासकासान् प्रणुदेत् सकुष्ठान् ॥ सौवर्च्चलं सैन्धवं च बिडमौद्भिदमेव च । सामुद्रं लवणं चात्र जलमष्टगुणं भवेत् ॥ २३९ ॥

भाषा-क्षार दो, पंच लवण, चार प्रकारका लोह, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायविडङ्ग, मोथा, अजवायन, देवदारु, बेल, इन्द्रजौ, चित्रककी जड, आकनादि, मुलहटी, अतीस, पलाशबीज और हींग इन सबको दो २ तोले लेकर और मूलकशुण्ठीकी भस्म ३२ सेर ग्रहण करे। सबसे प्रथम क्षारादिका चूर्ण करे। फिर इस ३२ सेर भस्मको उचित जलमें पाक करके जब वह जल गाढा हो जाय तब उसमें यह चूर्ण डाल दे। फिर दो २ तोलेकी गोलियां बनाकर सेवन करे। इसका नाम क्षारगुटिका है। इससे तिल्ली, उदरी, श्वित्र, हलीमक, बवासीर, पाण्डु,

अरुचि, शोथ, विषूचिका, गुल्म, पथरी, दमा, खांसी और कुष्ठ दूर होता है । विरियासंचर, सेंधा, कचियानोन, समुद्रनोन, काला नोन इनका नाम पंचलवण है । ८ गुण जलमें इस औषधिका पाक करना चाहिये ॥ २३९ ॥

वङ्गेश्वरः ।

सूतभस्म वंगभस्म भागैकैकं प्रकल्पयेत् । गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं च चतुर्गुणम् ॥ अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं सर्वं तद्गोलकीकृतम् । रुद्ध्वा तु भूधरे पक्त्वा पुटकेन समुद्धरेत् ॥ एष वंगेश्वरो नाम्ना प्लीहपाण्डूदरान् जयेत् । घृतैर्गुंजाद्वयं लिह्यान्निष्कां श्वेतपुनर्णवाम् ॥ गव्यं मूत्रैः पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ॥२४०॥

भाषा-रससिन्दूर और वङ्गभस्म एक २ भाग, गन्धक और तांबा चार २ भाग, समस्त द्रव्य एकत्र कर एक दिन आकके दूधमें मर्दन करके गोला बनावे । फिर भूधरयंत्रमें पुट देकर दो रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इसका नाम वङ्गेश्वर है । इससे तिल्ली, गोला, उदररोग और शोथका नाश होता है । घीके साथ इस औषधिको चाट करके सफेद सांठ और गोमूत्रका अनुपान करे ॥ २४० ॥

व्योषाद्यं लौहम् ।

व्योषं त्रिवृत्तिक्तकरोहिणी च सायोरजस्तु त्रिफलारसेन ।
पीतं कफोत्थं शमयेत्तु शोथं गव्येन मूत्रेण हरीतकी च ॥२४१॥

भाषा-बराबर २ त्रिकुटा, निसोतकी जड, वायविडङ्ग, कुटकी और लौहभस्म ग्रहण करके चूर्ण बनाय त्रिफलाके साथ सेवन करे । इसका नाम व्योषाद्यलौह है । इसको सेवन करनेके अन्तमें गोमूत्रके साथमें हरीतकीचूर्णका अनुपान करे । इस औषधिसे कफजात शोथरोग नष्ट होता है ॥ २४१ ॥

त्रिकट्वाद्यं लौहम् ।

त्रिकटु त्रिफला दन्ती नागत्रिमदशुंठकैः ।
पुनर्णवासमायुक्तैर्युक्तो हन्ति सुदुर्जयम् ॥
लौहः शोथोदरं स्थौल्यं मेदोगदमसंशयः ॥ २४२ ॥

भाषा-त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चिरचिटेके बीज, त्रिमद (मोथा, चीता, वायविडङ्ग), शुण्ठक (सूखी हुई मूलीका चूर्ण) और लोहभस्म इन सबको बराबर लेकर एक साथ मिलाय सेवन करनेसे दारुण शोथ, उदररोग, स्थूलता और मेदोरोग निःसन्देह दूर होते हैं । इसका नाम त्रिकट्वाद्य लौह है ॥ २४२ ॥

त्र्यूषणाद्यलोहम् ।

त्र्यूषणं[1] विजया चव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्। वाकूची सैन्धवं चैव सौवर्चलसमन्वितम् ॥ अयश्चूर्णेन संयुक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा । स्थौल्यापकर्षणं श्रेष्ठं बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ मेहघ्नं कुष्ठशमनं सर्वव्याधिहरं परम् । नाहारे यन्त्रणा कार्या न विहारे तथैव च ॥ त्र्यूषणाद्यमिदं लौहं रसायनरसोत्तमम् ॥ २४३ ॥

भाषा-त्रिकुटा, भङ्ग, चव, चित्रक, विडनोन, पांशुनोन, वावची, सेंधा, विरियासंचर इन सबको बराबर ले चूर्ण करके सब चूर्णकी बराबर लोहचूर्ण मिलावे । इसका नाम त्र्यूषणाद्यलोह है । यह चूर्ण घी और सहदके साथ सेवन करना चाहिये । इससे स्थूलताका नाश हो जाता है, बलवर्णके साथ रोगीकी अग्नि बढती है । इसके प्रभावसे मेढ्र व कोढ आदि रोगोंका नाश हो जाता है । इस औषधिका सेवन करके आहार विहारमें किसी प्रकारका विचार न करे । रसायनको यह सर्व प्रकारसे श्रेष्ठ है ॥ २४३ ॥

वडवाग्निरसः ।

शुद्धसूतं समं गन्धं ताम्रं तालं समं समम् ।
अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं क्षौद्रैर्लेह्यं त्रिगुंजकम् ॥
वडवाग्निरसो नाम्ना स्थौल्यमाशु नियच्छति ॥ २४४ ॥

भाषा-शुद्ध पारा, गन्धक, ताम्र और हरिताल इनको बराबर लेकर एक दिन आकके दूधमे घोटे, इसका नाम वडवाग्निरस है । सहतके साथ इसको चाटना चाहिये । स्थूलताका रोग इससे शीघ्र जाता रहता है ॥ २४४ ॥

वडवाग्निलोहम् ।

सूतभस्म सतालं च लोहं ताम्रं समं समम् । मर्दयेत् सूर्यपत्रेण चास्य वल्लं प्रयोजयेत् ॥ मधुना स्थूलरोगे च शोथे शूले तथैव च । मध्वाज्यमनुपानं च देयं चापि कफोल्बणे ॥ २४५ ॥

भाषा-रससिन्दूर, हरिताल, लोह और तांबा इन सबको बराबर लेकर आकके पत्रोंके रसमे भली भांति मर्दन करे । इस औषधिका कल्क एक वल्लभर प्रयोग करना चाहिये । मधुके साथ सेवन करे । इसका नाम वडवाग्नि रस है । इसको

[1] "त्र्यूषण त्रिफला चव्य चित्रक विडमौद्भिदम् । कोई २ ऐसा पाठ करके भंगके बदले त्रिफला काममे लाते हैं ।

सेवन करके सहत और घीका अनुपान करे । इसे स्थूलता, शोथ, शूल और कफोल्बणमें दे ॥ २४५ ॥

भगन्दरहरलौहः ।

सूतस्य द्विगुणेन शुद्धबलिना कन्यापयोभिस्त्र्यहं
शुद्धं ताम्रमयः समस्ततुलितं पात्रं निधायोपरि ।
स्वेद्यं यामयुगं च भस्मपिठरे निम्बूजलैः सप्तधा
पाकं तत् पुटयेद्भगन्दरहरो गुंजोन्मितः स्यादिति ॥ २४६ ॥

भाषा-पारा एक भाग, गन्धक २ भाग एकसाथ घीक्वारके रसमें ३ दिन घोटकर सबकी बराबर लोह और ताम्र मिलावे । फिर उसको किसी पात्रके ऊपर रखके दो प्रहरतक स्वेद दे । फिर इस भस्मको कागजी नींबूके रसमें ७ वार भावना देकर पुटपाक करे । इसका नाम भगन्दरहर रस है । इसकी एक रत्ती मात्रा सेवन करे । इससे भगन्दररोग दूर होता है ॥ २४६ ॥

वारितावडवो रसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गंधं कुमारीरसमर्दितम् । त्र्यहान्ते गोलकं कृत्वा ततस्तेन प्रलेपयेत् ॥ द्वयोः समं ताम्रपत्रं हण्डिकान्तर्निवेशयेत् । तद्भाण्डं भस्मनापूर्य चुल्ल्यां तीव्राग्निना पचेत् ॥ द्वियामान्ते समुद्धृत्य चूर्णयेत् स्वांगशीतलम् । जम्बीरस्य रसैः पिष्ट्वा रुद्ध्वा सप्तपुटे पचेत् ॥ गुंजैकं मधुनाज्येन लेपाद्धन्ति भगन्दरम् । मुषली लवणं चानु आरनालयुतं पिबेत् ॥ भुंजीत मधुराहारं दिवा स्वप्नं च मैथुनम् । वर्जयेच्छीतलाहारं रसेऽस्मिन् वारिताण्डवे ॥ २४७ ॥

भाषा-पारा एक भाग, गन्धक २ भाग एक साथ ३ दिन घीक्वारके रसमें घोटकर गोला बनावे । फिर उससे दोनोंकी बराबर ताम्रपत्रको लेप करे । फिर उसको एक हांडीके भीतर रखके ऊपर सरैया ढके । जोडके स्थानको लेपकर उस हांडीके ऊपर राख डाले । फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढाय तीव्र अग्निपर पाक करे । २ प्रहर पाक करके भस्म होनेपर उतार ले । फिर शीतल होनेपर उसका चूर्ण करके कागजी नींबूके रसमें ७ भावना दे । फिर और पुट दे । इस औषधिका नाम वारिताण्डव रस है । एक रत्ती यह औषधि घी और सहतके साथ चाटनेसे भगन्द-

रका नाश हो जाता है । इसको सेवन करके मूसली और पंच लवणका कांजीके साथ अनुपान करे । मधुर द्रव्य खाय ॥ २४७ ॥

उपदंशहरो रसः ।

योगवाहिरसान् सर्वान् सर्वरोगोदितानपि ।
उपदंशे प्रयुंजीत ध्वजमध्ये शिराव्यधः ॥ २४८ ॥

भाषा—ध्वजमें शिरावेध करके सर्व रोगोंमें कहे हुए योगराज रसोंका प्रयोग करे ॥ २४८ ॥

महातालेश्वरो रसः ।

तालताप्यं शिला सूतं शुष्कं सैन्धवटंकणम् । समं संचूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगंधकम् ॥ गंधतुल्यं मृतं ताम्रं लौहभस्म चतुःपलम् । जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु ॥ त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् । माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥ मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु । सर्वान् कुष्ठान् निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ २४९ ॥

भाषा—एक २ भाग हरताल, सोनामक्खी, मैनशिल, पारा, ताम्र, ४ भाग लोह इन सबको एकत्र करके जंबीरीके रसमें एक दिन खरल करके भली भांतिसे मर्दन करे । फिर लघुपुटसे पाक कर शीतल होनेपर तिसके साथ सब चीजसे तिहाई विष मिलावे । फिर उसको चूर्ण करके दो मासा लेकर भैंसके घीके साथ सेवन करे । इस औषधिको सेवन करके घी और सहतके साथ २ तोले बावचीका चूर्ण चाटे । इसका नाम महातालेश्वर रस है । इससे सब कोढ दूर होते हैं ॥ २४९ ॥

कुष्ठकुठारो रसः ।

भस्मसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः । त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥ इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं भाग-

---

१ कन्याकोटिप्रदानेन गङ्गायां पितृतर्पणे । विश्वेश्वरपुरीवासे तत्फलं कुष्ठनाशने ॥ गवां कोटिप्रदानेन चाश्वमेधशतेन च । वृषोत्सर्गे च यत्पुण्यं तत्पुण्यं कुष्ठनाशने ॥

कोटि कन्या दान करनेसे जो फल होता है । गंगाजीके जलसे पितृतर्पण करनेसे जो फल होता है और काशीजीमें वास करनेसे जो पुण्य होता है, कुष्ठरोगका नाश करनेसेभी वैसाही फल प्राप्त होता है । करोडों गोदान करनेसे, सौ अश्वमेधयज्ञका अनुष्ठान करनेसे और वृषोत्सर्ग करनेसे जो पुण्य होता है, कुष्ठरोगका नाश करनेसेभी वैसाही पुण्य होता है ।

षोडश । चतुःषष्टिकरंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ चतुःषष्टिमृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् । स्निग्धभाण्डे स्थितं खादेत् द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ॥ रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठविनाशनः ॥ २५० ॥

भाषा-रससिन्दूर, गन्धक, लोह, ताम्र, गूगल, त्रिफला, महानीम, चित्रक, शिलाजित इनका चूर्ण सोलह २ तोले ले । डहरकरंजके बीजोंका चूर्ण और अभ्रकका चूर्ण प्रत्येक चौंसठ २ भाग ले । इन सबका चूर्ण करके घी और सहतके साथ मिलाय चिकने पात्रमें स्थापन करे । इसकी मात्रा आधा तोला है । इसका नाम कुष्ठकुठार रस है । इससे गलत्कुष्ठका नाश होता है ॥ २५० ॥

श्वित्रलेपः ।

गुंजाफलाग्निचूर्णं च लेपितं श्वेतकुष्ठनुत् ।
शिलापामार्गभस्मापि पिष्ट्वा श्वित्रं प्रलेपयेत् ॥ २५१ ॥

भाषा-चोटली और चित्रककी छाल एकत्र मर्दन करके लेप करे तो श्वेत कुष्ठका नाश हो जाता है । मैनाशिल और चिरचिटेकी भस्म एक साथ पीसकर श्वेत दागपर लगावे तो दाग दूर हो ॥ २५१ ॥

सवर्णकरणो लेपः ।

वाकुचीमूलसंपिष्टा हरितालाच्चतुर्गुणा ।
सवर्णकरणो लेपः श्वित्रादौ नास्त्यतः परः ॥ २५२ ॥

भाषा-एक भाग हरितालके साथ चौगुने बावचीके बीज मिलाय गोमूत्रके साथ पीसे । इससे लेप करे तो सफेद कोढ जाय । शरीरका रङ्ग पहलेकी नाई हो ॥२५२

क्षीरगन्धकः ।

गन्धकार्द्धपलं शुद्धं पीतं दुग्धेन सप्तकम् ।
दुग्धान्नभोजिनो हन्ति कण्डुपामाविचर्चिकाः ॥ २५३ ॥

भाषा-आधा पल शुद्ध गन्धक दूधके साथ ७ दिन सेवन करनेसे और दूधभात भोजन करनेसे दाद, पामा और खुजलीकी बीमारीका नाश होता है॥२५३

कुष्ठदलनरसः ।

गंधं रसं वाकुचिकोत्थबीजं पलाशबीजं च कृशानुशुण्ठी । श्लक्ष्णानि मध्वाज्ययुतानि कृत्वा सेवेत कुष्ठी च हिताशनस्तु ॥२५४

भाषा-पारा, गन्धक, बावची, पलाशवीज, चित्रक और शुण्ठ इन सबको [ब]राबर ले चूर्ण करे शहत और घीके साथ मिलाय सेवन करे। इसका नाम [कु]ष्ठदलन रस है । इसको सेवन करके हितकारी पथ्य करे॥ २५४ ॥

चन्द्राननो रसः ।

सूतव्योमाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागा गंधकस्य[1] च। काकोडुम्बरिकाक्षीरैः सर्वमेकत्र मर्द्दयेत्॥ माषमात्रां गुटीं कृत्वा कुष्टरोगे प्रयोजयेत् । देहशुद्धिं पुरा कृत्वा सर्वकुष्टानि नाशयेत् ॥ एवं चंद्राननो नाम साक्षात् श्रीभैरवोदितः । हन्ति कुष्टं क्षयं श्वासं पांडुरोगं हलीमकम्॥ अस्पर्शाजीर्णशूलानि सन्निपातं सुदारुणम्॥ २५५ ॥

भाषा-पारा, अभ्रक और चित्रक एक २ भाग, ३ भाग गन्धक इन सबको लेकर कठूमरके रसमे मर्दन करके मासे २ भरकी गोलियां बनावे । इसका नाम चन्द्रानन रस है । पहले देहशुद्धि करके इस औषधिको सेवन करे । इससे कोढ, क्षयी, पाण्डु, हलीमक, छुआछूतके दोष, अजीर्ण, शूल और दारुण सन्निपातका नाश हो जाता है । श्रीभैरवनाथने इस औषधिको कहा है ॥ २५५ ॥

तालकेश्वरः ।

नागस्य भस्म शाणैकं तोलकं गन्धकस्य च । द्विनिष्कं शुद्धतालस्य समुद्भूतं गवां जलैः ॥ विपचेत् षोडशगुणैः पात्रे ताम्रमये शनैः । घर्म्मे द्विवस्रं जम्बीरकुमारीवज्रकन्दजैः ॥ रसैर्भृङ्गस्य चाम्भोभिर्युतं वल्लद्वयं भजेत् । कुष्टे चास्थिगते चापि शाखानासाविभ्रंशके ॥ उडुम्बरं हन्ति शिवामधुभ्यां कृच्छ्रं च कुष्टं त्रिफलाजलेन । गुडार्द्रकाभ्यां गजचर्म सिध्म विचर्चिकास्फोटविसर्पकण्डूम्॥ निहन्ति पांडुं विविधां विपादीं सरक्तपित्तं कटुकासिताभ्याम् । खादेत् द्वितीयं त्वमृतायुतं च समुद्गयूषं सघृतं च दद्यात् ॥ रोहितकजटाक्वाथमनुपानं प्रयच्छति । चतुर्दशदिनस्यान्ते कुष्टं शुष्यति यत्नतः ॥ क्षुद्रोधो

[1] सूतव्योपाग्नयस्तुल्यास्त्रिभागा गन्धकस्य च । इति पाठान्तरम् । कोई २ वैद्य ऐसा पाठ करके अभ्रकके बदले त्रिकुटाको काममे लाते है ।

जायतेत्यर्थमत्यर्थं सुभगं वपुः । वर्जयेत्सततं कुष्ठी मत्स्यमांसादिभोजनम् ॥ २५६ ॥

भाषा-सीसा आधा तोला, गन्धक १ तोला, हरिताल १ तोला इन सबको एकत्र करके १६ गुण जलमें पाक करे । फिर इसको तांबेके पात्रमें रखके जंबीरीके रसमें, घीक्वारके रसमें, थूहरकी जडके रसमे और भांगरेके रसमें २ दिनतक भावना दे । फिर छः छः रत्तीकी एक एक गोली बनावे । इसका नाम तालकेश्वर है । कोढ, नासाभंग, क्षतक्षीण और मंडलरोगमें यह औषधि देनी चाहिये । सहत और हरीतकीचूर्णके साथ इस औषधिको सेवन करनेसे कृच्छ्र-कुष्ठको आराम होता है । गुड और अदरखके साथ सेवन करनेसे गजचर्म, सिध्म, खुजली, विस्फोटकको आराम होता है । कुटकी और खांडके साथ सेवन करनेसे पाण्डु, विपादिका और रक्तपित्तका नाश होता है । इसको सेवन करके जीरा व काला जीरेसे युक्त घीसहित मूंगके जूषको पथ्य करे और रुहेडे वृक्षकी जडका काढा अनुपान करे । इस प्रकार करनेसे १४ दिनके पीछे कोढके घाव सूख जाते हैं, रोगीको क्षुधा अत्यन्त लगती है । इसके प्रसादसे रोगी दिव्यदेह धारण करता है । कुष्ठरोगीको मत्स्य व मांस नहीं खाना चाहिये ॥ २५६ ॥

तालेश्वरो रसः ।

सम्यक्पत्रीकृतं तालं कूष्माण्डसलिले शनैः । चूर्णोदके पृथक्तैले दोलायन्त्रे दिनं दिनम् ॥ शोधयित्वा तदाम्लेन दध्नालोड्य विमर्दयेत् । खल्वे लौहमये वापि गाढं यामद्वयं पुनः ॥ पुनर्णवाया क्षारेण संयोज्य घनतां नयेत् । दधि किंचित् पुनर्दत्त्वा घनीभूतं निवेशयेत् ॥ स्थाल्यां दृढतरायां च क्षारे पौनर्णवे पुनः । रोटिकां सदृशं कृत्वा शरावेण पिधापयेत् ॥ पचेत्तावत् भवेत्क्षारं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् । स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पुनरग्नौ परीक्षयेत् ॥ क्षिप्तमग्नौ च निर्धूमं दृश्यते नलिनेन च । तदा सिद्धिं विजानीयात् योजयेत् सर्वकर्मसु ॥ एवं सिद्धेन तालेन गन्धतुल्येन मेलयेत् । द्वयोस्तुल्यं जीर्णताम्रं वालुकायंत्रपाचितम् ॥ अयं तालेश्वरो नाम रसः परमदुर्लभः । हन्यात् कुष्ठान्यशेषाणि वातशोणितनाशनः ॥ वातमण्डलमत्युग्रं

स्फुटितं गलितं तथा । कुष्ठरोगं सर्वजातं नाशयेदविकल्पतः ॥ दुष्टव्रणं च वीसर्पं त्वग्दोषानाशु नाशयेत् । वातमण्डलकुष्ठानामौषधं नास्त्यतः परम् ॥ दृष्टयोगशतासाध्यरोगवारणकेसरी ॥ २५७ ॥

भाषा-पहले वंशपत्र नामक हरितालको एक दिन पेठेके रससे दोलायंत्रमें पाक करके फिर चूनेके पानीमें एक दिन और तेलसे एक दिन दोलायंत्रमें गलाय सुखा ले । फिर खट्टे दहीके साथ मिलाकर लोहेकी कढाईमें रखके दो प्रहरतक सांठके क्षारके साथ घोटे । जब घना हो जाय तो फिर कुछ दही डाले और फिर सांठके क्षारमें घनीभूत अर्थात् घोटकर गाढा करे। फिर उसको रोटीकी समान करके पात्रके भीतर रक्खे उस पात्रका मुँह बन्द करे । जबतक सफेद रंग न हो तबतक पाक करे । पाक समाप्त होनेके पीछे शीतल होनेपर अग्निमें परीक्षा करे अर्थात् इसको अग्निमें डालोगे तो धुँआ नहीं निकलेगा । इस प्रकार पाक समाप्त होनेपर वह हरिताल औषधिमें व्यवहार करनेके योग्य होता है। फिर इस हरिताल और गन्धकको बराबर ग्रहण करके दोनोकी बराबर जारित ताम्र इनमें मिलावे । फिर वालुकायंत्रमें पाक करनेसे औषधि बन जाती है । इसका नाम तालेश्वर रस है । यह औषधि अत्यन्त दुर्लभ है । इससे अगणित प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, कठोर दाद, गलित और स्फुटित कुष्ठ, दुष्ट व्रण, वीसर्प, त्वग्दोष (फुनसी आदिका निकलना) आदि शीघ्र नाश हो जाते हैं । दादोंका नाश करनेवाली इसकी समान दूसरी औषधि नहीं है । सैकडों योगोसे जो रोग आराम नहीं होता, यह रस उस रोगरूप हाथीके लिये सिंहरूप है ॥ २५७ ॥

कुष्ठकालानलो रसः ।

गंधं रसं टङ्कणताम्रलौहं भस्मीकृतं मागधिकासमेतम् । पंचांगनिम्बेन फलत्रिकेन विभावितं राजतरोस्तथैव ॥ नियोजयेद्वल्लयुग्ममानं कुष्ठेषु सर्वेषु च रोगसंघे ॥ २५८ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, सुहागा, ताम्र, लौह और पीपल इन सबको बराबर लेकर एक साथ पीसे । फिर नीमके पत्ते, फल, फूल, छाल और मूलके रसमें ७ वार भावना देकर त्रिफलाके क्काथमें ७ वार और अमलतासके रसमें सात वार भावना दे । छः रत्तीकी बराबर एक २ गोली करे । इसका नाम कुष्ठकालानल रस है । इससे सब प्रकारके कुष्ठोंका नाश हो जाता है ॥ २५८ ॥

सर्वेश्वरो रसः ।

मृतताम्राभ्रलौहानां हिंगुलं च पलं पलम् । जम्बीरोन्मत्तकाशाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ॥ मर्द्यं हयारिजद्रावैः प्रत्येकं च दिनं दिनम् । एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ॥ वालुकायन्त्रसंस्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना । आदाय चूर्णयेत् सर्वं पलैकं योजयेद्विषम् ॥ द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः । द्विगुंजं लेहयेत् क्षौद्रैः श्वित्रमंडलकुष्ठजित् ॥ बाकुचीं देवदारुं च कर्षमात्रं विचूर्णयेत् । लिहेदेरंडतैलेन चानुपानं सुखावहम् ॥ २५९ ॥

भाषा–एक २ पल मारितताम्र, अभ्रक, लौह और सिंगरफ लेकर एक साथ जम्बीरीके रसमें एक दिन, धिसोटेके क्वाथमें एक दिन, थूहरके क्षारमें एक दिन, आकके क्षारमें एक दिन, कुचलेके क्वाथमें एक दिन और कनेरके क्वाथमें एकदिन पीसकर गोला बनावे । फिर उस गोलेको कपडेमें लपेटकर वालुकायन्त्रमें मन्द २ आंचसे तीन दिन पाक करे । पाक समाप्त होनेके उपरान्त शीतल होनेपर उसके साथ एक पल विष और २ पल पीपलका चूर्ण मिला ले । इसका नाम सर्वेश्वर रस है । इसको २ रत्ती लेकर सहतके साथ मिलाय चाटे । इससे श्वेत कुष्ठ और दादोंका नाश होता है । इसको सेवन करे पीछे कर्षभर बावचीचूर्ण और देवदारु चूर्ण अरण्डके तेलमें मिलाकर कुछ २ चाटे ॥ २५९ ॥

उदयभास्करः ।

दग्धकेन मृतं ताम्रं दशभागं समुद्धरेत् । ऊषणं पंचभागं स्यादमृतं च द्विभागिकम् ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वं रक्तिकैकप्रमाणतः । दातव्यं कुष्ठिने सम्यगनुपानस्य योगतः ॥ गलिते स्फुटिते चैव विषूच्यां मण्डले तथा । विचर्चिकादद्रुपामाकुष्ठरोगप्रशान्तये ॥ २६० ॥

भाषा–गन्धकसे मारा हुआ तांबा १० भाग, ५ भाग मिरच, २ भाग विष इन सबका महीन चूर्ण कर एक साथ मिलाय एक २ रत्ती कुष्ठरोगीको दे । इसका नाम उदयभास्कर है । इससे गलितकोढ, विषूचिका, मण्डल, खुजली, दाद और पामारोगका नाश होता है ॥ २६० ॥

ब्रह्मरसः ।

भागैकं मूर्च्छितं सूतं गंधकात्त्वग्निबाकुची । चूर्णं तु ब्रह्मबीजानां प्रतिद्वादशभागिकः ॥ त्रिंशद्भागं गुडस्यापि क्षौद्रेण गुटिका कृता । अयं ब्रह्मरसो नाम्ना ब्रह्महत्याविनाशनः ॥ द्विनिष्कभक्षणाद्धन्ति प्रसुप्तिकूर्चमंडलम् । पातालगरुडीमूलं जलैः पिष्ट्वा पिबेदनु ॥ २६१ ॥

भाषा—मूर्छित पारा १ भाग, गन्धक, चित्रक, बावची, भारंगीके बीज इन सबको बारह २ भाग और गुड ३० भाग इन सबको सहतके साथ घोटकर दो २ तोलेकी गोली बनावे । इसका नाम ब्रह्मरस है । इससे कोढ और मण्डलरोगका नाश होता है । इसको सेवन करके कडवी तूंबीको जलके साथ पीसकर अनुपान करे ॥ २६१ ॥

पारिभद्ररसः ।

मूर्च्छितं सूतकं धात्रीफलं निम्बस्य चाहरेत् ।
तुल्यांशं खदिरक्वाथैर्दिनं मर्द्यं च भक्षयेत् ॥
निष्कैकं दद्रुकुष्टघ्नं पारिभद्राह्वयो रसः ॥ २६२ ॥

भाषा—मूर्छित पारा, आंवले और निबौली इनको बराबर लेकर खैरके क्वाथमें एक दिन खरल करके एक निष्क सेवन करे तो दाद व कोढ जाय । इसका नाम पारिभद्र रस है ॥ २६२ ॥

योगः ।

गंधकं मूलकक्षारमार्द्रकस्य रसैर्दिनम् ।
मर्दितं हन्ति लेपेन सिध्मं तु दिनमेकतः ॥ २६३ ॥

भाषा—गन्धक और मूलीका क्षार अदरखके रसमें एक दिन खरल करके लेप करे तो सिध्मकुष्ठका नाश होता है ॥ २६३ ॥

कृष्णधत्तूरजं मूलं गंधतुल्यं विचूर्णयेत् ।
मर्द्यं जम्बीरनीरेण लेपनात् सिध्मनाशनम् ॥ २६४ ॥

भाषा—काले धतूरेकी जड और गन्धक बराबर लेकर चूर्ण करे । फिर जंबीरीके रसमें मर्दन करके तिससे लेप करे तो सिध्मकुष्ठ नष्ट हो ॥ २६४ ॥

अपामार्गस्य पंचाङ्गं कदलीद्रवसंयुतम् ।
पुटदग्धं च गोमूत्रैर्लेपनं दद्रुनाशनम् ॥ २६५ ॥

भाषा-चिरचिटेके पत्ते, फूल, फल, जड और वल लेकर केलेके रसमें मर्दन करे, पुटपाकसे दग्ध करे। फिर गोमूत्रके साथ पीसे। इसे लेप करे तो दादका नाश होता है॥ २६५॥

चक्रमर्दस्य बीजं च दुग्धे पिष्ट्वा विमर्दयेत्।
गंधर्वतैलसंयुक्तं मर्दनात् सर्वकुष्ठजित्॥ २६६॥

भाषा-चकवडके बीज दूधके साथ मर्दन करके एरंडके तेलमे मिलाय ले। करे तो कुष्ठका नाश हो॥ २६६॥

श्वेतारिः।

शुद्धसूतं समं गंधं त्रिफला भृंगबाकुची। भल्लातकी तिलः कृष्णो निम्बबीजं समं समम्॥ मर्दयेत् भृंगजद्रावैः शोष्यं पेष्यं पुनः पुनः। इत्थं कुर्यात् त्रिसप्ताहं रसः श्वेतारिको भवेत्॥ मध्वाज्यैर्निष्कमात्रं तु खादेत् श्वित्रं विनाशयेत्॥ २६७॥

भाषा-शुद्ध पारा, बराबर गन्धक, त्रिफला, भांगरा, बावची, भिलावा, काले तिल और निम्बौली ग्रहण करके एक साथ भांगरेके रसमें वारंवार मर्दन करे और सुखावे। ३ सप्ताह इस प्रकार करनेसे श्वेतारि बनता है। इस औषधिको निष्कभर लेकर सहद और घीके साथ सेवन करनेसे श्वित्ररोगका नाश होता है॥ २६७॥

शशिलेखावटी।

शुद्धसूतं समं गंधं तुल्यं च मृतताम्रकम्। मर्दितं बाकुचीक्वाथैर्दिनैकं वटिका कृता॥ निष्कमेकं सदा खादेत् श्वेतघ्नी शशिलेखिका। बाकुचीतैलकर्षैकं सक्षौद्रमनुपानयेत्॥ २६८॥

भाषा-पारा, गन्धक और मारित ताम्र बराबर ले बावचीके क्वाथमें एक दिन पीसकर निष्क २ भरकी गोली बनावे। इसका नाम शशिलेखावटी है। इससे श्वेतकुष्ठका नाश होता है। एक कर्षभर बावचीतेलके साथ सहत मिलाय अनुपान करे॥ २६८॥

कालाग्निरुद्रो रसः।

सूतकान्ताभ्रतीक्ष्णानां भस्ममाक्षिकगंधकम्। सन्ध्याककोंटकीकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः॥ भूधराख्ये पुटे पच्याद्दिनैकं तद्विचूर्णयेत्। दशमांशं विषं योज्यं माषमात्रं तु भक्ष-

येत् ॥ रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् । पिप्पलीम-
धुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ २६९ ॥

भाषा-पारा, कान्तलौह, अभ्रक, तीक्ष्णलोह, सोनामक्खी और गन्धक इन सबको बराबर ले कडवी ककडीके रसमें एक दिन पीसकर कर्कटीकन्दमें भरे। फिर मिट्टीसे लेप करके एक दिन भूधरयंत्रमें पाक करे । दशमांश विष मिलावे । फिर चूर्ण करके एक मासाभर प्रयोग करे । इसका नाम कालाग्निरुद्र रस है । इससे दश दिनमें विसर्परोग जाता रहता है । पीपलचूर्णके साथ सहत मिलाय इसका अनुपान करे ॥ २६९ ॥

गलत्कुष्ठारिरसः ।

रसो वलिस्ताम्रमयः पुरोग्निशिलाजतुः स्याद्विषमिन्दुकोऽग्रे ।
सर्वं च तुल्यं गगनं करञ्जबीजं तथा भागचतुष्टयं च ॥ संम-
र्द्य गाढं मधुना घृतेन वल्लद्वयं चास्य निहन्त्यवश्यम् । कुष्ठं कि-
लासमपि वातरक्तं जलोदरं वाथ विबद्धमूलम् ॥ विशीर्णकर्णा-
ङ्गुलनासिकोऽपि भवेत् प्रसादात् स्मरतुल्यमूर्त्तिः ॥ २७० ॥

भाषा-पारा, गन्धक, ताम्र, लोह, गूगल, चित्रक, शिलाजीत, कुचला, वच ये सब एक २ भाग, अभ्रक और करंजबीज चार २ भाग सबको एकत्र कर सहत और घीके साथ गाढा मर्दन करके २ तोले सेवन करे । इसका नाम गलत्कुष्ठारि रस है। इससे कोढ, किलास, वातरक्त, जलोदर और विबद्ध नष्ट हो जाता है। कुष्ठरोगमें कान, उंगली और नासिका फेल जाय तोभी इस औषधिके प्रसादसे रोगी कामदेवकी समान दिव्य देहको प्राप्त होता है ॥ २७० ॥

तालकेश्वरो रसः ।

धात्रीटंकणतालानां दशभागं समुद्धरेत् ।
धात्र्या रसैर्मर्दयित्वा शिखरीमूलवारिणा ॥
सर्वकुष्ठहरः सेव्यः सर्वदा भोजनप्रियः ॥ २७१ ॥

भाषा-आमला, सुहागेकी खील और हरिताल प्रत्येक दश भाग, सबको एक साथ आमलेके रसमें व चिरचिटेके रसमें मर्दन करके सेवन करे । इसका नाम तालकेश्वर रस है । इससे समस्त कुष्ठरोग जाते हैं ॥ २७१ ॥

वज्रवटी ।

शुद्धसूताग्निमरिचं सूताद्द्विगुणगन्धकम् । काठोडुम्बारिकाक्षीरै-

दिनं मर्द्यं प्रयत्नतः॥ वराव्योषकषायेण वटीं चास्य समाचरेत्।
लिह्याद्वज्रवटी ह्येषा पामारोगविनाशिनी ॥ २७२ ॥

भाषा-पारा, चीता, मिरच हरेक बराबर, गन्धक दो भाग सबको एकत्र करके कठूमरके रसमें एक दिन मर्दन करके त्रिकुटा और त्रिफलाके क्वाथमें ७ वार भावना दे गोली बनावे। इसका नाम वज्रवटी है। यह पामाकुष्ठका नाश करती है॥ २७२ ॥

चन्द्रकान्तरसः।

पलत्रयं मृतं ताम्रं सूतमेकं द्विगंधकम्। त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं प्रत्येकं च पलं पलम्॥ निर्गुण्ड्याश्चार्द्रकद्रावैर्वह्निद्रावैर्विमर्दयेत्। दिनैकं तद्विशोष्याथ तुषाग्नौ स्वेदयेद्दिनम्॥ समुद्धृत्य विचूर्ण्याथ बाकुचीतैलमर्दितम्। त्रिदिनं भावयेत्तेन निष्कैकं भक्षयेत्सदा॥ चन्द्रकान्तरसो नाम्ना कुष्ठं हन्ति न संशयः। तैलं करञ्जबीजोत्थं वह्निगन्धकसैन्धवैः ॥ २७३ ॥

भाषा-३ पल ताम्र, १ पल पारा, २ पल गन्धक, १ पल त्रिकुटा, १ पल त्रिफला इन सबको एकत्र करके संभालूके रसमें एक दिन, अद्रकके रसमे १ दिन और चित्रकके रसमें एक दिन भावना देकर एक दिन तुषकी आगसे स्वेद दे। फिर इसको चूर्ण करके बावचीके तेलके साथ ३ दिन मर्दन करे। इसको आधा तोला सेवन करे। इसका नाम चन्द्रकान्त रस है। इससे निःसन्देह कुष्ठरोगकाः नाश होता है। इसको सेवन करनेके अन्तमें करंजबीजका तेल, चित्रा और गन्धक अथवा सोमराजबीजको मर्दन करके सेवन करे॥ २७३ ॥

संकोचरसः।

मृतताम्राभ्रकं तुल्यं तयोः सूतं चतुर्गुणम्। शुद्धं तन्मर्दयेत् खल्वे गोलकं कारयेत्ततः॥ त्रिभिस्तुल्यं शुद्धगंधं लौहपात्रे क्षणं पचेत्। तन्मध्ये गोलकं पाच्यं यावज्जीर्णं तु गन्धकम्॥ एतन्मृद्वग्निना तावत् समुद्धृत्य विचूर्णयेत्। गुग्गुलुं निम्बपंचाङ्गं त्रिफला चामृता विषम्॥ पटोलं खदिरं सारं व्याधिघातं समं समम्। चूर्णितं मधुना लेह्यं निष्कमौडुम्बरापहम्॥ रसः संकोचनामायं कुष्ठे परमदुर्लभः ॥ २७४ ॥

भाषा-ताम्र और अभ्रक एक २ भाग, इन दोनोंसे चौगुना पारा इन सबको

एक साथ खरलमें पीसकर गोला बनावे । फिर दश भाग गन्धक अग्निसे गलायकर तिसमे यह गोला डाले । फिर मन्द २ आंचके साथ पकाकर गन्धकके साथ गोला बनावे । पाक समाप्त होनेके अन्तमें शीतल होनेपर चूर्ण करके तिसके साथ गूगल, पंचाङ्ग, नीम और त्रिफला, गिलोय, विष, पटोल, खैर, अमलतास इन सबका चूर्ण एक २ भाग ले । इन औषधिको एक निष्क ले सहतमें मिलाय चाटनेसे औडुम्बर कोढका नाश होता है । इसका नाम संकोच रस है । कुष्ठरोगकी यह औषधि अत्यन्त दुर्लभ है ॥ २७४ ॥

माणिक्यो रसः ।

पलं तालं पलं गंधं शिलायाश्च पलार्द्धकम् । चपलः शुद्धसीसं च ताम्रमभ्रमयोरजः ॥ एतेषां कोलभागं च वटक्षीरेण मर्दयेत् । ततो दिनत्रयं घर्मे निम्बक्काथेन भावयेत् ॥ गुडूचीतालहिन्तालवानरीनीलझिण्टिकाः । शोभांजनसुराजाजीनिर्गुण्डीहयमारकम् ॥ एषां शाणमितं चूर्णमेकीकृत्य सरित्तटे । मृत्पात्रे कठिने कृत्वा मृदम्बरयुते दृढे ॥ एकाकी पाकविद् वैद्यो नग्नः शिथिलकुन्तलः । पचेदवहितो रात्रौ यत्नात् संयतमानसः ॥ तद्विजानीहि भैषज्यं सर्वकुष्ठविनाशनम् । सर्पिषा मधुना लौहपात्रे तदण्डमर्दितम् ॥ द्विगुंजं सर्वकुष्ठानां नाशनं बलवर्द्धनम् । शीतलं सारसं तोयं दुग्धं वा पाकशीतलम् ॥ आनीतं तत्क्षणादाज्यमनुपानं सुखावहम् । वातरक्तं शीतपित्तं हिक्कां च दारुणां जयेत् ॥ ज्वरान् सर्वान् वातरोगान् पांडुं कण्डुं च कामलाम् । श्रीमद्गहननाथेन निर्मितो बहुयत्नतः ॥२७५

भाषा—हरिताल और गन्धक एक २ पल, मैनशिल ४ तोले और पारा, सीसा, ताम्र, अभ्रक और लौह प्रत्येक दो २ तोले सबको एक साथ वटके दूधमे मर्दन करे। फिर तीन दिन नीमके क्काथमें धूपमे भावना दे फिर गिलोय, सुगन्धवाला, हिन्ताल, कौंच, कठसैरया, सहजना, कपूरकचरी, जीरा, संभालू और कनेर प्रत्येक चूर्ण आधा तोलाभर मिलाय मिट्टीके मजबूत पात्रमें स्थापन करे । एक दूसरे मिट्टीके पात्रसे ढके धुआंरहित अग्निसे रात्रिकालके समय २ प्रहर पाक करे । वैद्यको चाहिये कि पाकके समयमें नंगा हो, बाल खुले हों, एकान्तमें बैठा हो, संयत चित्तसे पाक समाप्त करके शीतल होनेपर प्रातःकालके समय उसको ग्रहण करे । फिर इस

औषधिका लोहेके खरलमें लोहेके मूसलसे घी और सहतके साथ घोटकर दो रत्ती लेवे, घी और सहतके साथ चाटे। इसका नाम माणिक्यरस है। यह कोढका नाम नाश करके रोगीको सबल करता है। इसको सेवन करनेके पीछे सरोवरका शीतल जल अथवा पाकके अन्तमें शीतल बकरीका दूध अनुपान करनेसे रोगी अच्छा हो जाता है। गहनानन्दनाथने बहुत यत्नसे इस औषधिको सृजन किया है। इससे वातरक्त, शीतपित्त, दारुण हिचकी, सर्व प्रकारके ज्वर, वातरोग, पाण्डुरोग, दाद और कामलाका नाश हो जाता है ॥ २७५ ॥

रसतालेश्वरः।

गुंजाशंखकरंजचूर्णरजनीभल्लातकाग्निशिखा।
कन्यासूर्यपयःपुनर्णवरजो गंधस्तथा सूतकम् ॥
गोमूत्रे पचितं विडंगमरिचैः क्षौद्रं च तत्तुल्यकम्।
हन्यादाशु विचर्चिकारुजमिदं कण्डुं तथा कैटिभम् ॥२७६॥

भाषा-चोंटली, शंखभस्म, करंजुआके बीज, हलदी, भिलावा, चौराईका शाक, घीक्वार, आकका दूध, सांठ, गन्धक, पारा, वायविडङ्ग और मिरच इन सबको बराबर ले। सब वस्तुओंसे आठगुणे गोमूत्रमें पाक करे। इसका नाम रसतालेश्वर है। इसको सहतके साथ सेवन करे। इससे खुजली, दाद, किट्टिभ आदि कोढ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २७६ ॥

कुष्ठहरितालेश्वरः।

हरितालं भवेद्भागं द्वादशात्र विशुद्धिमत्। गन्धकोऽपि तथा ग्राह्यो रसः सप्तोऽत्र दीयते ॥ अंकोठमूलनीरेण सेहुण्डीपयसाथवा। अर्कदुग्धेन संपिष्य करवीरजलेन च ॥ काठोडुम्बरनीरेण पेषणीयो रसो भृशम्। शुद्धताम्रकोठरे च क्षेपणीयो रसेश्वरः ॥ पूर्ववत् पच्यते यामषट्कं चायं रसेश्वरः। पंचगुंजाप्रमाणेन काठोडुम्बरवारिणा ॥ कुष्ठाष्टादशसंख्येषु देय एष भिषग्वरैः। अचिरेणैव कालेन विनाशं यान्ति निश्चयः ॥ पथ्यसेवा विधातव्या प्रणतिः सूर्यपादयोः। साधकेन तथा सेव्यो रसो रोगौघनाशनः ॥ पिप्पलीभिः समं दद्यात् कुष्ठरोगे रसेश्वरम् ॥ २७७ ॥

भाषा–हरिताल, गन्धक प्रत्येक बारह २ भाग, पारा सात भाग एकत्र करके अंकोठ वृक्षकी जडके रसमे, थूहरके दूधमें, आकके दूधमें, कनेरके दूधमें और कठूमरके रसमें अलग २ पीसकर ताम्र कोठरमें छः प्रहरतक पुटपाक करे । इस औषधिको ५ रत्ती ले कठूमरके रसके साथ सेवन करे तो १८ प्रकारके कोढ शीघ्र नाश हों इसमें कोई सन्देह नहीं । इस औषधिको सेवन करे पीछे सूर्य भगवान्‌के चरणोंमे प्रमाण करे और पीपलके साथ इस औषधिको खाय ॥ २७७ ॥

राजराजेश्वरः ।

आतपे मर्दयेत् सूतं गन्धकं मृतताम्रकम् । स्वहस्तमर्दितं तालं यावत्तत्र विलीयते ॥ भृंगराजद्रवं दत्त्वा दिनमात्रं विमर्दयेत् । त्रिफला खदिरं सारममृता बाकुचीफलम्॥प्रत्येकं सूततुल्यं स्याच्चूर्णीकृत्य विमर्दयेत् । मध्वाज्याभ्यां लोहपात्रे कर्षाभ्यां भक्षयेत्ततः॥दद्रुकिट्टिभकुष्ठानि मण्डलानि विनाशयेत् । द्विगुंजोऽपि निहन्त्याशु राजराजेश्वरो रसः ॥ २७८ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, ताम्र, हरिताल इन सबको बराबर ले भांगरेके रसमें एक दिन मर्दन करके उसमे त्रिफला, खैरसार, गिलोय, बावची इन सबका चूर्ण एक २ भाग मिलावे । इसका नाम राजराजेश्वर रस है । दो रत्ती इस औषधिको लेकर २ तोले सहत और घीके साथ खाय ॥ २७८ ॥

लंकेश्वरो रसः ।

भस्मसूताभ्रशुल्बानि गंधं तालं शिलाजतु । अम्लवेतसतुल्यांशं त्र्यहं दत्त्वा विमर्दयेत् ॥ मध्वाज्याभ्यां वटीं कुर्याद्द्विगुंजां भक्षयेत्सदा । कुष्ठं हन्ति गजं सिंहो रसो लंकेश्वरो महान् ॥ त्रिफलानिम्बमंजिष्ठावचापाटलमूलकम् । कटुकारजनीक्वाथं चानुपानं प्रयोजयेत् ॥ २७९ ॥

भाषा–पारा, अभ्रक, ताम्र, गन्धक, हरिताल, शिलाजीत, अम्लवेत इन सबको बराबर ले घी और सहतके साथ ३ दिन घोटकर दो २ रत्तीकी गोली बनावे । इस लंकेश्वर नामक रससे कुष्ठरोगका नाश होता है । इसको सेवन करे पीछे त्रिफला, नीम, मजीठ, वच, पाडलकी जड, कुटकी और हलदी इनका क्वाथ अनुपान करे ॥ २७९ ॥

भूतभैरवरसः।

शुद्धाः पंचदशात्र तालकमितः शुद्धाश्च षड्गन्धकाः। सप्ताष्टौ नवतिन्तिडीकफलकात्काठिल्लकानां दश॥ सेहुण्डार्कपयोभिरेभिरभितः संचूर्ण्य तद्भाव्यते। रोहीतस्य जटारसेन मुदितं श्लक्ष्णं रसं खल्वितम्॥एकीकृत्य समस्तमेतदमृतं टंकैकमेतज्जयेत्। पश्चाद्वासविशुद्धवारिसहितं किंचिच्च तत्पीयते॥ ताम्बूलं शिखिखंडमंडितवटीमिश्रं ततः स्थापयेत्। शय्यायां मृगलोचनानिगदितं कर्माणि निर्वापयेत्॥ देहं वीक्ष्य सुखं मुखं ह्यविरसं विज्ञाय सम्यक्सुधीः। छागीमूत्राभिहापितं ननु दिनं सूतं च तत्पाययेत्॥ नित्यं नित्यमिदं करोति नियतं सर्वौषधं यत्नतः। सामथ्राय समस्तमग्निमतरत् नीलं च पीतारुणम्॥ श्वेतं स्फीतमनल्पकं सुखमपि प्रायः किञ्चिद्व्याकुलम्। गंधालिप्रतिमरवटीकसदृशं कुष्ठानि चोत्सादयेत्॥ कुष्ठाष्टादशभूतभैरव इति ख्यातिं क्षितौ विद्यते। वातव्याधिनिकृन्तनं कफकृतान् रोगान् विशेषानयम्॥ हंतीति ज्वरमुग्ररूपमधिकं दाहाभिधानामयम्। कुर्याद्रूपमनङ्गवद्द्विगुणभ्रंशप्रदं विग्रहम्॥ एवं समासात् कुरुते समानं पथ्यं च तथ्यं सकलं करोति। कुष्ठस्य दुष्टस्य निराकरोति गात्रं भवति गंधकपात्रतुल्यम्॥ भुंजीत भुक्तं सततं प्रयुक्तं घृतं शृतं वाविकृतं तदेव। स्वच्छन्ददुग्धेषु सुखेन दग्धं पथ्यान्नमेतत् प्रवदन्ति सद्यः॥ २८०॥

भाषा-१५ भाग हरिताल, ६ भाग गन्धक, ८१ भाग नई इमली, १० भाग करेला इन सबको एकत्र कर आकके दूधमे और थूहरके दूधमें भावना दे। फिर सेंढके रसमें भावना दिया हुआ पारा आधा तोला मिलाय खरलमे मर्दन कर रत्ती २ भरकी गोली बनावे। इसकी एक गोलीको सेवन करके सुगन्धिपूरित शीतल जल और कपूरवासित पानको खाय। बकरीका दूध अनुपान है। इसका नाम भूतभैरवरस है। इसको सेवन करे पीछे तक्रका अनुपान करे। सर्वौषधिवर्जित कुष्ठरोगमें यह औषधि दी जाय तो रोगी दिव्य कान्तिसे युक्त होता है। यह रस १८ प्रकारके कोढ, वातव्याधि और दाहज्वरका नाश करता है॥ २८०॥

अर्केश्वररसः ।

पलमीशस्य चत्वारि बलेद्वादश तावता । ताम्रस्य च तथा देयं रसस्यार्द्धं शरावकम् ॥ दत्त्वा निरुद्धभाण्डस्थं पूरयेत्भस्मना दृढम् । अग्निं प्रज्वालयेद्यामद्वयं शीतं विचूर्णयेत् ॥ पुटेत् द्वादशधा सूर्यदुग्धेनालोडितं पुनः । वरापावकभृंगानां द्रावै-स्त्रिभिर्विभावयेत् ॥ अयमर्केश्वरो वातरक्तमण्डलकुष्ठजित् २८१॥

भाषा—पारा ४ पल, गन्धक १२ पल, तांवा गन्धककी वरावर इन सवको एक हांडीके भीतर भरके सरैयासे ढके फिर उस हांडीको भस्मसे भरे। फिर २ प्रहरतक आग्निके तापसे तप्त करके शीतल होनेपर चूर्ण करे फिर आकके दूधमें मर्दन करके वारह वार पुटपाक करे । फिर त्रिफलाकाथ, चित्रककाथ और भांगरेके रसमे तीन २ वार भावना दे ले । इस रसके सेवन करनेसे रक्तमण्डल और कोढका नाश होता है । इसका नाम अर्केश्वर रस है ॥ २८१ ॥

विजयभैरवो रसः ।

सप्तकञ्चुकनिर्मुक्तमूर्ध्वशुद्धरसेन्द्रकम् । मृत्कटाहान्तरे तत्तु स्थापयेच्च समंत्रकम् ॥ सूताद्द्विगुणकं तालं कूष्माण्डं द्रवसाधितम् । दोलायन्त्रेण तैलादौ सप्तधा परिशोधितम् ॥ दत्त्वाप्लाव्य द्रवै-र्झिंझ्याः किंचिदाप्लाव्य युक्तितः । तयोस्त्रिगुणितं भस्म पालाशस्य परिक्षिपेत् ॥ पुनर्झिंटीरसेनैव सर्वमाप्लाव्य यत्नतः । खाशाशाकरसैर्भूयः परिप्लाव्य च पाकवित् ॥ पचेदवहितो वैद्यः शालाङ्गारैः प्रयत्नतः । चतुर्विंशतियामं तु पक्त्वा शीतलतां नयेत् ॥ अवतार्य काचपात्रे निधाय तदनंतरम् ॥ प्रयत्नेन कृतप्रायश्चित्तः शोधितदेहः सिताहारितकीं खानति मध्ये कृत्वा रक्तिवेदांशकं सप्तदिनं शुद्धी रक्तिकाया यावत् शुद्धं मधुद्रवं पिबेच्चानु । सुनारिकेलफलानां जलमपि जिङ्गीरसोन्तरम् ॥ नानासुगन्धितैलैरभ्यञ्जनमिह सुगंधिताम्बूलम् । पवनलदधिशाकं च रविकिरणं मत्स्यमांससुरतानि ॥ यद्यत्

ककारपूर्वं तत्तन्मतिमान् न सेवयेत् ॥ वातरक्तमाममिश्रमामं चापि सुदारुणम् । सर्वं कुष्ठं चाम्लपित्तं मात्रया परिशोभितम् ॥ विजयाख्यो रसो नाम हन्ति दोषादसृग्गरम् ॥ २८२ ॥

भाषा-सात कांचलीसे रहित डमरूयन्त्रमें लगे हुए शुद्ध पारेको मंत्र पढकर मिट्टीके कढाहमें रखे इसके साथही पेठेके रससे शुद्ध हुई, दोलायन्त्रसे पाचित, ७ वारकी सुधी पारेसे दूनी हरिताल मिलावे। फिर केवटीमोथेका रस और कटसरैया उचित मात्रासे मिलाकर पारा और हरितालसे दूनी पलाशभस्म मिलावे। फिर कटसरैयामें भिगोकर फिर पोस्तके रसमें डुबोवे। फिर पाक करने। चतुरचिकित्सकको चाहिये कि शालकाठके कोयलोकी आगमें २४ प्रहर यत्नके सहित सावधान चित्तसे पाक करे। जब पाक समाप्त होकर शीतल हो जाय, तब यह औषधि काचपात्रमें स्थापन करे। फिर रोगीको चाहिये कि कुष्ठका प्रायश्चित्त कर शुद्धशरीर हो, मिश्रिका सेवन करके, हरीतकीचूर्णके साथ ४ रत्ती इस औषधिको सेवन करे। दूसरे दिनसे क्रमानुसार एक २ रत्ती करके ७ दिनतक बढावे। इस औषधिको सेवन करके शहत, नारियलका जल, मजीठका क्वाथ या मधु और सोंठका चूर्ण अनुपान करे। फिर सुगन्धित तैल मर्दन करे और पान खाना, आग तापना, पवनका सेवन करना, धूपसेवन, मीन, मांस, शाक, ककारादि नामक द्रव्य छोड दे। यह विजयभैरवनामक रस है। वातरक्त, आमदोष, समस्त कुष्ठ, विस्फोटक और मसूरिका रोगका नाश करता है ॥ २८२ ॥

कुष्ठारिरसः।

काठोडुम्बरिकाचूर्णं ब्रह्मदन्तिबलात्रयम् । प्रत्येकं मधुना लीढं वातरक्तापहं नृणाम् ॥ शरद्रोमच्यवन्मांसं मांसमात्रेण सर्वथा। गलत्पूयं पतत्कीटं त्रिटंकं सेव्यमीरितम् ॥ २८३ ॥

भाषा-कठूमरका चूर्ण, ब्रह्मदन्तीचूर्ण, ३ खरेटी इन सबका चूर्ण शहतके साथ मिलाय चाटनेसे वातरक्त और अनेक प्रकारके कोढ ३ मासमें दूर होते हैं। इसका नाम कुष्ठारिरस है ॥ २८३ ॥

षडाननगुटिका।

विशोषणं टङ्कणपारदं च सगन्धचूर्णं च समांशयुक्तम् । जैपालचूर्णं द्विगुणं गुडान्वितं संमर्द्य सर्वं गुटिका विधेया ॥ विरेचनी

सर्वविकारनाशिनी लघ्वी हिता दीपनी पाचनीयम् । कुष्ठे हिता तीव्रतरे हि शूले चामाशये चाश्मगते विकारे ॥ संशोधनी शीतजलेन सम्यक् संग्राहिणी चोष्णजलेन युक्ता ॥ २८४ ॥

भाषा–विष, मिरच, पारा, सुहागेकी खील, गन्धक और जमालगोटा इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे । फिर सर्व चूर्णसे दूना गुड मिलाय पीसकर गोलियां बनावे । इसका नाम षडाननगुटिका है । यह दस्तावर है । सर्व विकारनाशक, लघुपाक, दीपक और पाचन है । अत्यन्त घोर कुष्ठ, शूल, आमाशय और चर्मगत विकारमें यह औषधि विशेष फलदाई है । इस औषधिको शीतल जलके साथ सेवन करनेसे देह शुद्ध होता है । और गरम जलके साथ सेवन करनेसे संग्राहिणी होती है ॥ २८४ ॥

कुष्ठनाशनः ।

चिरबिल्वपत्रपथ्याशिरीषं च विभीतकम् । काठोडुम्बरिकामूलं मूत्रैरालोड्य फेनितम् ॥ कर्षमात्रं पिबेद्रोगी गोस्तन्या सह टंकणम् । सप्तसप्तकपर्यन्तं सर्वकुष्ठविनाशनम् ॥ २८५ ॥

भाषा–डहरकरंजके पत्ते, हरीतकी, सिरसके बीज, बहेडा और कठूमरकी छाल इन सबको बराबर ले एक साथ चूर्ण करके गोमूत्रमें मिलावे । जब झाग उठने लगे तब उसको २ तोले दाखके रस और सुहागेकी खीलके साथ सेवन करे । ७ दिन इस प्रकार सेवन करनेसे सर्व प्रकारके कोढ दूर हो जाते हैं । इसका नाम कुष्ठनाशन है ॥ २८५ ॥

विजयानन्दः ।

शुद्धसूतस्य भागैकं द्विभागं शुद्धतालकम् । मृत्कटाहान्तरे पूर्वं स्थापयेच्च समंत्रकम् ॥ द्वयोः समं पलाशस्य भस्म तस्योपरि क्षिपेत् । वक्रं मृत्कर्पटे लिप्त्वा शोधयेच्च खरातपे ॥ चतुर्विंशतियामं तु पक्त्वा शीतलतां नयेत् । अवतार्य काचपात्रे स्थापयेदतियत्नतः ॥ विधिवत्सेवितश्चासौ हन्ति श्वित्रं चिरंतनम् । सर्वकुष्ठं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ रसोऽयं श्वित्रनाशाय ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । विजयानन्दनामायं निगूढः क्षितिमंडले ॥ २८६ ॥

भाषा-एक भाग पारा, पारेसे दूना हरिताल, दोनोंको एकत्र कर मंत्र पढके मि-ट्टीके कडाहमे स्थापन करे। फिर दोनोंकी बराबर पलासकाष्ठकी भस्म, उस पात्रको सरैयासे वन्द करके उसके ऊपर डाले । पात्रके मुखपर कपडमिट्टी दे । फिर तेज धूपमें सुखाकर २४ प्रहर पाक करे, जब वह शीतल हो जाय तव यत्न-सहित काचके पात्रमें स्थापन करे। नियमपूर्वक इस औषधिका सेवन करनेसे बहुत दिनका कोढरोग और श्वित्र जाता रहता है । जिस प्रकार सूर्यभगवान् अं-धकारका नाश करते हैं वैसेही यह औषधि इन रोगोंको दूर करती है । ब्रह्मा-जीने चित्रकुष्ठको दूर करनेके लिये यह औषधि निर्माण की है। संसारमें यह विज-यानन्द नामक औषधि गूढ भावसे वर्त्तमान है ॥ २८६ ॥

श्वित्रदद्रुपाटलालेपः।

अश्वहारजनीहेमप्रत्यक्पुष्पीं प्रदह्य च । चूर्णं च स्वर्जिकाक्षारं नीरं दत्त्वा प्रपेषयेत् ॥ स्थापित्वा ततः स्थानं मंडलाग्रेण लिम्पति । पाटलानि पतत्यङ्गे विस्फोटाश्चातिदारुणाः ॥ सम्भवन्ति तिलरक्ताः कृष्णवर्णा भवन्ति ते । मिलन्ति स्वश-रीरे च दिव्यरूपो भवेन्नरः ॥ २८७ ॥

भाषा-कनेर, हलदी, धतूरा और सफेद ओगा इन सवकी भस्म और चूर्ण व सज्जीखार बराबर लेकर जलके साथ पीसे । फिर सफेद दागको नख आदिसे कुरेदके इसका लेप करे तो वहां लाल २ छाले पड़ जायँगे फिर लाल तिल उत्पन्न हो जायँगे । फिर शरीरका रंग समान हो जायगा । इसका नाम श्वित्रदद्रुपाटला-लेप है ॥ २८७ ॥

श्वित्रहरो लेपः।

सैन्धवं रविदुग्धेन पेपयित्वाथ मण्डलम्।
प्रस्थयित्वा प्रलेपोऽयं श्वित्रकुष्ठविनाशनः ॥ २८८ ॥

भाषा-आकके दूधके साथ सेंधा पीसकर सफेद दागपर लगावे, चित्रकुष्ठ दूर होगा ॥ २८८ ॥

ओष्ठश्वित्रनाशनो लेपः ।

मुखे श्वेते च सञ्जाते कुर्यादिमां प्रतिक्रियाम्।
गंधकं चित्रकासीसं हारितालं फलत्रयम् ॥
मुखे लिम्पेद्दिनैकेन वर्णनाशो भविष्यति ॥ २८९ ॥

भाषा-मुखपर चित्रकुष्ठ उत्पन्न हो जाय तो गन्धक, चित्रा, हीराकसीस, हरिताल, त्रिफला इन सबको बराबर ले एक साथ पीसकर लेप करे ॥ २८९ ॥

प्रकारान्तरम् ।

गुंजाफलाग्निचूर्णं च लेपनं श्वेतकुष्ठजित् ।
शिलापामार्गभस्मापि लिप्त्वा श्वित्रं विनाशयेत् ॥ २९० ॥

भाषा-चोंटली और चित्रक बराबर ले एक साथ पीसकर लेप करनेसे या चिरचिटेकी भस्मका लेप करनेसेभी चित्रकुष्ठका नाश हो जाता है ॥ २९० ॥

रसमाणिक्यम् ।

तालकं वंशपत्राख्यं कूष्माण्डसलिले क्षिपेत् । सप्तधा वा त्रिधा वापि दध्यम्लेन च वा पुनः ॥ शोधयित्वा पुनः शुष्कं चूर्णयेत्तण्डुलाकृति । ततः शरावके पात्रे स्थापयेत्कुशलो भिषक् ॥ बदरीपत्रकल्केन सन्धिलेपं च कारयेत् । अरुणाभमधः पात्रं तावज्ज्वाला प्रदीयते ॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य माणिक्याभो भवेद्रसः । तद्रक्तिद्वितयं खादेत् घृतक्षौद्रमर्दितम् ॥ संपूज्य देवदेवेशं कुष्ठरोगाद्विमुच्यते । स्फुटितं गलितं कुष्ठं वातरक्तं भगन्दरम् ॥ नाडीव्रणं व्रणं दुष्टमुपदंशं विचर्चिकाम् । नासास्यसम्भवान् रोगान् क्षतान् हन्ति सुदारुणान् ॥ पुण्डरीकं चर्मदलं विस्फोटं मंडलं तथा ॥ २९१ ॥

भाषा-वंशपत्र नामक हरितालको पेठेके रसमें ७ वार या ३ वार शुद्ध करके दहीमें ७ वार शुद्ध करे । फिर कांजीमें ७ वार शुद्ध करके सुखा ले । फिर चावलकी नाई छोटे २ टुकडे करे फिर उसको शरावसंपुटमें रखके कदलीपत्रके कल्कसे सन्धियोंको लेप करे । जबतक लाल रंग न हो जाय तबतक अग्निके तापसे पाक करे । पाक समाप्त हुए पीछे शीतल होनेपर दिखाई देगा हरिताल माणिक्यकी समान चमकदार और वैसाही रंगवाला हो गया है । इसकाही नाम रसमाणिक्य है । गुरुकी पूजा करके इस औषधिको २ रत्ती लेय घी व शहतकेसाथ खाय । इससे कोढ, स्फटिककुष्ठ, गलितकुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, नाडीव्रण, दुष्टघाव, उपदंश (आतशक), खुजली और मुख व नासिकाके रोग ध्वंस होते हैं ॥ २९१ ॥

अमृतांकुरलोहः ।

हुताशमुखसंशुद्धं पलमेकं रसस्य वै । पलं लौहस्य ताम्रस्य

पलं भल्लातकस्य च ॥ अभ्रकस्य पलं चैकं गंधकस्य चतुः-पलम् । हरीतकीविभीतक्योश्चूर्णं कर्षद्वयं द्वयोः ॥ अष्टमाषाधिकं तत्र धात्र्याः पाणितलानि षट् । मृतं चाष्टगुणं लौहाद्द्वात्रिंशत्त्रिफलाजलम् ॥ एकीकृत्य पचेत्पात्रे लौहे च विधिपूर्वकम् । पाकमेवास्य जानीयात् शास्त्रज्ञो लौहपाकवित् ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय गुरुदेवद्विजार्चकः । रक्तिकादिक्रमेणैव घृतभ्रामरमार्द्दितम् ॥ लौहे च लौहदण्डेन कुर्यादेतद्रसायनम् । अनुपानं च कुर्वीत नारिकेलं जलं परम् ॥ सर्वकुष्टहरं श्रेष्ठं वलीपलितनाशनम् । अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ सेव्यो रसो जांगललावकानां विवर्ज्यशाकाम्लमपि स्त्रियं च । शाल्योदनं यष्टिकमाज्यमुद्गं क्षौद्रं गुडे क्षीरमिह क्रियायाम् ॥ २९२ ॥

भाषा-एक २ पल रससिन्दूर (कोई २ रससिन्दूरके वदले सिंगरफसे निकला हुआ पारा काममे लाते हैं), लौह, ताम्र, भिलावा, अभ्रक, गन्धक ४ पल, हरीतकी २ तोले, वहेडा २ तोले, आमला १३ तोले, घी ८ पल, त्रिफलाका क्वाथ ३२ पल इन सवको एकत्र करके लौहभाण्डमे विधिके अनुसार पाक करे । लौहका पाक जाननेवाला वैद्य पाकको निश्चय करके सवेरेही उठकर गुरुजीकी पूजा करे । फिर घी और शहतके साथ एक रत्तीसे आरम्भ करके क्रम २ से वृद्धि करता हुआ सेवन करे । जव इस औषधिको सेवन करे तो लोहेके पात्रमें लोहेके दण्डसे मर्दन कर ले । इसका नाम अमृतांकुर लौह है । इसको सेवन करके नारियलका जल अनुपान करे । इससे कोढ और वलीपलितादिका नाश होता है । यह अग्निवर्द्धक हृद्य और आयुको वढानेवाला है । इसको सेवन करके जंगली पशुके मांसका जूष और लवापक्षीके मांसका रस पथ्य करे । शाक, अम्ल और मैथुनको छोड दे । षष्टीके चावल, घी, मूंग, शहद, गुड और दूध पथ्य है ॥ २९२ ॥

योगाः ।

शीतपित्ते सर्वरोगप्रोक्ता ये योगवाहिनः ।
रसांस्तान् संप्रयुञ्जीत ताम्रं वा गंधघातितम् ॥ २९३ ॥

भाषा-और २ रोगोंमे जो योगवाही रस कहे हैं वे और गन्धकजारित ताम्र विचार करके प्रयोग करे ॥ २९३ ॥

यवानीगुडसंमिश्रो सूतभस्म द्विवल्लकम् ।
शीतपित्तं निहन्त्याशु कटुतैलविलेपनम् ॥ २९४ ॥

भाषा-२ रत्ती पारेकी भस्म, गुड और अजवायनके साथ मिलाय सेवन करता हुआ कडवे तेलको लेप करे तो शीतपित्तका नाश हो ॥ २९४ ॥

सिद्धार्थरजनीकल्कं प्रपुन्नाडतिलैः सह ।
कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्त्तनं हितम् ॥ २९५ ॥

भाषा-सरसों, हलदी, वनइलायची और तिल बराबर पीसकर कडवे तेलके साथमें देहमें उवटन करनेसे शीतपित्तका नाश हो जाता है ॥ २९५ ॥

दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डुपामाविनाशनः ।
कृमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तहरः परः ॥
कुष्ठोक्तां च क्रियां कुर्यात् सर्वां युक्त्या चिकित्सकः ॥२९६॥

भाषा-दूब और हलदी बराबर लेकर एक साथ पीस लेप करनेसे दाद, पामारोग और कृमि व खुजलीका नाश हो जाता है । कुष्ठमें कही हुई दवाइयें शीतपित्तमेंभी प्रयोग की जा सकती हैं ॥ २९६ ॥

पापरोगान्तकरसः ।

अथ शुद्धस्य सूतस्य मृतस्य मूर्च्छितस्य च । धवलापिप्पलीधात्रीरुद्राक्षघृतमाक्षिकैः ॥ पापरोगान्तको योगः पृथिव्यामेव दुर्लभः । घृतमधुभ्यां लेहः ॥ २९७ ॥

भाषा-मूर्च्छित रससिन्दूर, वच, पीपल, आमला और रुद्राक्ष बराबर ग्रहण करके एक साथ पीसे । घी और शहतके साथ मिलायकर चाटे । यह पापरोगनाशक योग पृथ्वीपर दुर्लभ है । इसका नाम पापरोगान्तक रस है । इससे मसूरिका रोगका नाश होता है ॥ २९७ ॥

कालाग्निरुद्रो रसः ।

सूताभ्रकान्तलौहानां भस्मगन्धकमाक्षिकम् । वन्यककौटिकाद्रावैस्तुल्यं मर्द्यं दिनावधि ॥ वन्यककौटिकाकन्दे क्षिप्त्वा लिप्त्वा मृदा बहिः । भूधराख्ये पुटे पश्चाद्दिनैकं तद्विपाचयेत् ॥ रसः कालाग्निरुद्रोऽयं दशाहेन विसर्पनुत् । पिप्पलीमधुसंयुक्तमनुपानं प्रकल्पयेत् ॥ २९८ ॥

भाषा-पारा, अभ्रक, कान्तलोह, गन्धक, सोनामक्खी बराबर ग्रहण करके वनककोडेकी छालके रसमे एक दिन खरल करे। फिर वनककोडेकी छाल पीसकर पिंड बनावे। पिंडके भीतर इस औषधिको डालकर इस पिंडको मिट्टीसे लेप कर दे। फिर एक दिन भूधरयन्त्रमें करे। पुट देकर दशमांश विष मिलाय एक मासा रोज इसको सेवन करे तो दश दिनमें विसर्परोगका नाश हो। पीपल और शहत इसका अनुपान है। इसका नाम कालाग्निरुद्र रस है ॥ २९८ ॥

योगाः।

सप्तपर्णशिफाकल्कपानाद्वा लेपनात्तथा।
मुषलीमूलपानात्तु तन्तुकाख्यो विनश्यति ॥ २९९ ॥

भाषा-छतिवनवृक्षकी छाल पीनेसे अथवा उसका लेप करनेसे और मूसलीकी छाल पीसकर पान करनेसे निःसन्देह तन्तुकरोगका नाश हो जाता है ॥ २९९ ॥

पित्तनाशकभैषज्यं योगवाहिरसं सुधीः।
कुष्ठोद्दिष्टक्रियां सर्वामपि कुर्यात् भिषग्वरः ॥ ३०० ॥

भाषा-विसर्परोगमें पित्तकी हरनेहारी औषधि और योगवाही रसोंका प्रयोग करे। कुष्ठरोगोक्त क्रिया करनेसेभी विसर्प दूर होता है ॥ ३०० ॥

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम्।
विविधं स्नायुकमुग्रं हंत्यवश्यं न संशयः ॥ ३०१ ॥

भाषा-३ दिन गायका घी पान करनेसे संभालूके पत्तोका रस पिये तो रगोंमें गये हुए उपद्रव नाशको प्राप्त होते हैं ॥ ३०१ ॥

गुडूचीनिम्बजक्काथैः खदिरेन्द्रयवाम्बुना।
कर्पूरत्रिसुगन्धिभ्यां युक्तं सूतं द्विवल्लकम् ॥
विस्फोटं त्वरितं हन्याद्वायुर्जलधरानिव ॥ ३०२ ॥

भाषा-कपूर, त्रिसुगन्ध (इलायची, दालचीनी, तेजपात) और रससिन्दूर इन सबको बराबर ले एक साथ मर्दन करके छः रत्ती सेवन करे। गिलोयका क्काथ, नीमका क्काथ, खैर और इन्द्रजौके क्काथके साथ सेवन करे। पवनके चलनेसे जिस प्रकार बादल उड जाते हैं, वैसेही इस औषधिसे शीघ्र विस्फोटक दूर होता है ॥

लोकनाथरसः।

पारदं गन्धकं चैव समभागं विमर्दयेत्। मृताभ्रं रसतुल्यं च यत्नतः परिमर्दयेत् ॥ रसाद्विगुणलौहं च लौहतुल्यं च ताम्रकम्।

भस्म वराटिकायाश्च ताम्रतस्त्रिगुणं कुरु ॥ नागवल्लीदलेनैव मर्दयेद्यत्नतो भिषक् । पुटेद्गजपुटे विद्वान् स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ यकृत्प्लीहोदरं गुल्मं श्वयथुं च विनाशयेत् । पिप्पलीमधुसंयुक्तां सगुडां वा हरीतकीम् ॥ गोमूत्रं च पिबेच्चानु गुडं वा जीरकान्वितम् ॥ ३०३ ॥

भाषा–पारा और गन्धक बराबर लेकर एक साथ पीसे । फिर उसके साथ पारेकी बराबर अभ्रक मिलाय यत्नसहित मर्दन करे । फिर पारेसे दुगुना लोह, लोहेकी बराबर ताम्र, तांबेसे तिगुनी कोडीकी भस्म मिलाय पानके रसमें पीसे । फिर गजपुटमें पाक करके शीतल होनेपर ग्रहण करे । इसका नाम लोकनाथरस है । इस औषधिकी २ मात्रा सेवन करनेसे यकृत्, प्लीहा, उदरी, गुल्म और शोथका नाश हो जाता है । इस औषधिको सेवन करनेके अन्तमें पीपलचूर्ण और शहत या गुड और हरीतकी अथवा गोमूत्र वा गुड और जीरकचूर्ण अनुपान करे॥३०३॥

बृहल्लोकनाथरसः ।

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्वे कृत्वा तु कज्जलम् । सूततुल्यं जारिताभ्रं मर्दयेत् कन्यकाम्बुना ॥ ततो द्विगुणितं दद्यात् ताम्रं लौहं प्रयत्नतः । काकमाचीरसेनैव सर्वं तत् परिमर्दयेत् ॥ सूताच्च द्विगुणं गन्धं वाराटीसद्रवं रजः । पिष्ट्वा जम्बीरजीरेण मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ तन्मध्ये गोलकं क्षिप्त्वा यत्नेन च्छादयेद्भिषक् । शरावसंपुटं कृत्वा मृद्भस्मलवणाम्बुभिः ॥ शरावसन्धिमालिप्य चातपे शोषयेत् क्षणम् । ततो गजपुटं दत्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ पिष्ट्वा तु सर्वमेकत्र स्थापयेद्भाजने शुभे । खादेद्वल्लद्वयं चास्य मूत्रं चानु पिबेन्नरः॥ मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडां वा हरीतकीम् । अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेत्तुल्ययोगतः ॥ यकृत्प्लीहोदराग्रं च श्वयथुश्च विनाशयेत् । वाताष्ठीलां च कमठीं प्रत्यष्ठीलां तथैव च ॥ कांस्यक्रोडाग्रमांसं च शूलं चैव भगन्दरम् । वह्निमान्द्यं च कासं च लोकनाथरसोत्तमः ॥ ३०४ ॥

भाषा–शुद्ध पारा, दूना गन्धक एकत्र करके कजली बनावे । फिर उसके साथ एक भाग अभ्रक मिलाय घीकारके रसमें मर्दन करे । फिर उसके साथ २ भाग तांवा और २ भाग लोहा मिलाय मकोयके रसमें फिर मर्दन करके तिसके साथ पारेसे दूना गन्धक और कौडीभस्म मिलावे । फिर जंवीरीके रसमें मर्दन करके एक गोला बनावे । यह गोला शरावसंपुटमें रक्खे । मृत्तिकाभस्म और लवणसे सन्धिस्थलपर कपरौटी करे । कुछ देरतक धूपमें सुखावे । फिर गजपुटमें पाक करके शीतल होनेपर उसको ग्रहण करे । फिर पीसकर छः २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इन गोलियोको उत्तम पात्रमें रक्खे । इसको सेवन करके गोमूत्र अथवा शहतके साथ पिप्पली चूर्ण अथवा गुड व हरीतकी या जीरा और गुड बराबर अनुपान करे । इसका नाम वृहल्लोकनाथ रस है । यह औषधि यकृत्, प्लीहा, उदरी और शोथका नाश करती है और वाताष्ठीला, कमठी, कांस्यक्रोड, अग्रमांस, शूल, भगन्दर, मन्दाग्नि और खांसीका नाश होता है ॥ ३०४ ॥

प्लीहारिरसः ।

द्विकर्षं लौहभस्मापि कर्षं ताम्रं प्रदापयेत् । शुद्धसूतं तथा गंधं कर्षमाणं भिषग्वरः ॥ मृगाजिनं पलं भस्म लिम्पाकाग्नित्वचः पलम् । एवं भागक्रमेणैव कुर्यात्प्लीहारिकां वटीम् ॥ नवगुञ्जामितां खादेच्चाथ नित्यं हि पूलवान् । प्लीहानं यकृतं गुल्मं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ३०५ ॥

भाषा–लौहा ४ तोले, ताम्र, पारा और गन्धक प्रत्येक दो २ तोले, मृगचर्मभस्म और नींबूकी जडका वक्कल यह आठ २ तोले ले नौ २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इसका नाम प्लीहारिरस है । इससे निःसन्देह, प्लीहा, यकृत् और गुल्मका नाश होता है ॥ ३०५ ॥

लौहमृत्युञ्जयो रसः ।

रसगंधकलौहाभ्रं कुनटीमृतताम्रकम् । विषमुष्टिवराटं च तुल्यं शंखं रसांजनम् ॥ जातीफलं च कटुकी द्विक्षारं कानकं तथा । व्योषं हिङ्गु सैन्धवं च प्रत्येकं सूततुल्यकम् ॥ श्लक्ष्णचूर्णीकृतं सर्वमेकत्र भावयेत्ततः । सूर्यावर्त्तरसेनैव बिल्वपत्ररसेन च ॥ सूर्यावर्त्तेन मतिमान् वटिकां कारयेत्ततः । प्लीहानं यकृतं गुल्ममष्ठीलां च विनाशयेत् ॥ अग्रमांसं तथा शोथं तथा सर्वों-

दराणि च । वातरक्तं च कमठं चान्तर्विद्रधिमेव च ॥ ३०६ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक, मैनशिल, तांबा, कुचला, कौडीभस्म, तूतिया, शंख, रसोत, जायफल, कुटकी, दोनों खार, जमालगोटा, त्रिकुटा, हींग और सेंधा इन सबको बराबर ले एक साथ बहुत महीन पीसे फिर हुलहुलके रसमें ७ भावना देके बेलपत्रके रसमें ७ भावना दे । फिर हुलहुलके रसमें मर्दन करके दो २ रत्तीकी गोली बनावे । यह लोहमृत्युञ्जय नामक रस प्लीहा, यकृत्, गुल्म, अष्ठीला, अग्रमांस, शोथ, सर्व प्रकारके उदर, वातरक्त, कमठ, अन्तर्विद्रधिका नाश करता है ३०६

महामृत्युञ्जयो रसः ।

रसगंधकलौहाभ्रं कुनटीतुत्थताम्रकम् । सैन्धवं च वराटं च वाकुची विडशंखकम् ॥ चित्रकं हिंगु कटुकी द्विक्षारं कट्फलं तथा । रसांजनं जयन्ती च टंकणं समभागिकम् ॥ एतत् सर्वं विचूर्ण्याथ दिनमेकं विभावयेत् । आर्द्रकस्वरसेनैव गुडूच्याः स्वरसेन च ॥ गुंजामात्रां वटीं कृत्वा भक्षयेन्मधुना सह । नानारोगप्रशमनो यकृद्गुल्मोदराणि च ॥ अग्रमांसं तथा प्लीहमग्निमान्द्यमरोचकम् । एतान् सर्वान् निहंत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ महामृत्युंजयो नाम महेशेन प्रकाशितः॥३०७॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक, मैनशिल, तूतिया, सेंधा, कौडियोंकी भस्म, तांबा, बावची, विडनिमक, शंख, चित्रक, सुहागेकी खील इन सबको बराबर ले एक साथ चूर्ण करके एक दिन आर्द्रकके और एक दिन गिलोयके रसमें भावना दे । फिर २ रत्तीभरकी गोलियां बनावे । यह महामृत्युञ्जय नामक रस महादेवजीने निर्माण किया है । शहतके साथ इसको सेवन करनेसे अनेक प्रकारके रोग नष्ट होते हैं और यकृत्, गुल्म, उदर, अग्रमांस, प्लीहा, मन्दाग्नि और अरुचिका नाश होता है । सूर्यभगवान् जैसे अंधकारका नाश करते हैं, वैसेही यह औषधि रोगराशिको दूर करती है ॥ ३०७ ॥

वारिशोषणो रसः ।

चतुर्विंशति भागाः स्युर्गन्धाद्वंगं तदर्द्धकम् । वङ्गभागाद्भवेदर्द्धं पारदः कृष्णमभ्रकम् ॥ चतुर्दशविभागं स्यान्मृतं तद्दीयते पुनः । मृतलौहमष्टभागं मृतताम्रं नवात्र तत् ॥ मृतहेमद्वयं तेषां मृतरूपं च सप्तकम् । अतिशुद्धमतिस्थूलं मृतं हीरं त्रयोदश ॥

भागा ग्राह्या माक्षिकस्य विशुद्धस्यात्र षोडश । अष्टादशमितं ग्राह्यं नव काशीशकं पुनः ॥ तुत्थकं च षडेवात्र नवीनं ग्राह्यमेव च । तालकं च चतुर्भागं शिला योज्यास्त्रयो बुधैः॥ शैलेयं पंच दातव्यं सर्वमेकत्र नूतनम् । मृतमौक्तिकभागैकं सौभाग्यं द्वयमेव च ॥ कुट्टयित्वा विचूर्ण्याथ जम्बीरस्य रसेन वै । भावयेत् सप्तधा गाढं गुटिकां तस्य कारयेत् ॥ पानकद्वितये कृत्वा मुद्रयेत् पानकद्वयम् । घटमध्ये विवेशाथ दत्त्वा पूर्वं च वालुकाम् ॥ ऊर्द्ध्वं च तां पुनर्दत्त्वा वालुकां मुद्रयेन्मुखम् । अहोरात्रं दहेदग्नौ स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ बकुलस्य च बीजेन कण्टकारिद्वयेन च । गुडूचीत्रिफलावारा भावयेत् सप्तसप्ततः ॥ वृद्धदारुरसेनापि तथा देयास्तु भावनाः । गिरिकर्ण्या रसेनापि रोहीतमत्स्यपित्ततः॥एवं सिद्धो भवेत् सम्यक् रसोऽसौ वारिशोषणः । देवान् गुरून् समभ्यर्च्य यतिनो गुरवस्तथा ॥ रक्तिकाद्वितयं देयं सन्निपाते समुच्छ्रये । मरीचेन समं देयं तेन जागर्त्ति मानवः ॥ श्लैष्मिके च गदे देयं ग्रहण्यामग्निमान्द्यके । प्लीह्नि पाण्डौ प्रयोक्तव्यं त्रिकटु त्रिफलां तथा ॥ शूलरोगे प्रयोक्तव्यमुदावर्त्ते विशेषतः । कुष्ठे सुदुष्टे देयोऽयं काकोडुम्बरिकां तथा ॥ अतिवह्निकरः श्रीदो बलवर्णाग्निवर्द्धनः । धन्वंतरिकृतः सद्यो रसः परमदुर्लभः ॥ सर्वरोगे प्रयोक्तव्यो निःसंदेहं भिषग्वरैः ॥ ३०८ ॥

भाषा–२४ भाग गन्धक, १२ भाग रांगा, ६ भाग पारा, १४ भाग कृष्णाभ्रक, ८ भाग लोह, ९ भाग तांबा, २ भाग सुवर्ण, ७ भाग चांदी, हीराकी अत्यन्त शुद्ध भस्म १३ भाग, १६ भाग सोनाक्मखी, १८ भाग हीराकसीस, २ भाग तूतिया, ४ भाग हरिताल, ३ भाग मैनशिल, ५ भाग शिलाजीत, १ भाग मोती, २ भाग सुहागेकी खील इन सबको चूर्ण करके जंबीरीके रसमे ७ भावना दे । फिर गोलियां बनाय वालुकायन्त्रमे रखके एक दिन रात्रिकी मन्दाग्नि देवे । पाक समाप्त होनेके पीछे शीतल होनेपर उतार मौलसिरीके बीज, दोनो कटेरी, गिलोय, त्रिफला, विधायरा,

उपलसिरी इनमेंसे प्रत्येकके क्वाथमें ७ भावना दे रोहमछलीकी पित्तमें ७ भावना दे । फिर दो २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इसका नाम वारिशोषण रस है । देवता और गुरुकी पूजा करके दारुण सन्निपात रोगमें मिरच चूर्णके साथ इस औषधिका सेवन करे । कफसे उत्पन्न हुए रोग, ग्रहणी, मन्दाग्नि, प्लीहा और पाण्डुरोगमें त्रिफला और त्रिकुटाके क्वाथके साथ और शूल, उदावर्त व कुष्ठरोगमें कटूमरके साथ सेवन करे । यह रस अग्निका उकसानेवाला, श्रीदाई और बल वर्ण व अग्निवर्द्धक है । धन्वन्तरिजीने इस औषधिको निर्माण किया है । यह रस समस्त रोगोंमें दिया जा सकता है ॥ ३०८ ॥

बृहद्गुडपिप्पली ।

विडङ्गत्र्यूषणं हिङ्गु कुष्ठं लवणपंचकम् । त्रिक्षारं फेनकं चव्यं श्रेयसीकृष्णजीरकम् ॥ तालपुष्पोद्भवं क्षारं नाड्याः कूष्माण्डकस्य च । अपामार्गोद्भवं क्षारं चित्रायाः चित्रकं तथा ॥ एतानि समभागानि पुराणो द्विगुणो गुडः । गुडतुल्यं प्रदातव्यं चूर्णं चैव कणोद्भवम् ॥ मर्दयित्वा दृढे पात्रे मोदकानुपकल्पयेत् । भक्षयेद्वर्द्धयेन्नित्यं प्लीहानं हन्ति दुस्तरम् ॥ प्रमेहं पांडुरोगं च कामलां वह्निमान्द्यकम् । यकृतं पंचगुल्मं च तूदरं सर्वेरूपकम् ॥ जीर्णज्वरं तथा शोथं कासं पंचविधस्तथा । अश्विभ्यां निर्मिता ह्येषा सुबृहद्गुडपिप्पली ॥ ३०९ ॥

भाषा—वायविडङ्ग, त्रिकुटा, हींग, कूडा, पांचों नोन, तीनों खार, समुद्रफेन, चव्य, गजपीपल, काला जीरा, ताडजटाभस्म, पेठेकी बेलकी भस्म, चिरचिटेकी भस्म इमलीके वक्कलकी भस्म इन सब द्रव्योंको बराबर ले इनके साथ सबकी बराबर पुराना गुड और गुडकी बराबर पीपलका चूर्ण मिलाय कठिन पात्रमें पीसकर लड्डू बनावे । इसका नाम गुडपिप्पली है । प्रतिदिन इस मोदकका सेवन करनेसे दारुण प्लीहा, प्रमेह, पाण्डु, कामला, मन्दाग्नि, यकृत्, गोला, जीर्णज्वर, शोथ और ५ प्रकारकी खांसीका नाश होता है । अश्विनीकुमारने इसको निर्माण किया है ॥ ३०९ ॥

प्राणवल्लभो रसः ।

लौहं ताम्रं वराटं च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम् । स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत् ॥ प्रत्येकं च पलं ग्राह्यमजादुग्धेन पेषितम् ।

चतुर्गुंजां वटीं खादेद्वारिणा मधुनापि वा ॥ प्राणवल्लभनामायं गहनानंदभाषितः । दोषं रोगं च संवीक्ष्य युक्त्या वा त्रुटिवर्द्धनम् ॥ निहन्ति कामलां पांडुमानाहं श्लीपदार्बुदम् । गलगंडं गंडमालां व्रणानि च हलीमकम् ॥ अपचीं वातरक्तं च कण्डुं विस्फोटकुष्ठकम् । नातः परतरं श्रेष्ठं कामलार्त्तिभयेष्वपि ॥३१०॥

भाषा-लोह, तांबा, कौडीभस्म, तूतिया, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार, जमालगोटा, सुहागेकी खील और निसोत इन सबको एक २ पल लेकर बकरीके दूधके साथ पीस चार रत्तीकी एक २ गोली बनावे । जल या शहतके साथ इस गोलीको सेवन करे । इस प्राणवल्लभनामक रसको गहनानन्दनाथने निर्माण किया है । रोग और दोषका विचार करके औषधिकी मात्रा बढावे । यह रस कामला, पाण्डु, अफरा, श्लीपद, अर्बुद, गलगण्ड, कंठमाला, फोडा, हलीमक, अपची, वातरक्त, कण्डु, विस्फोटक और कुष्ठका नाश करता है । इससे अच्छी कामलारोगकी और कोई औषधि नहीं है ॥ ३१० ॥

यकृदरिलोहम् ।

द्विकर्षं लौहचूर्णस्य चाभ्रकस्य पलार्द्धकम् । कर्षं शुद्धं मृतं ताम्रं निम्पाकांघ्रित्वचं पलम् ॥ मृगाजिनभस्मपलं सर्वमेकत्र कारयेत् । नवगुंजाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ यावत् प्लीहोदरं चैव कामलां च हलीमकम् । कासं श्वासं ज्वरं हन्याद्बलवर्णाग्निकारकम् ॥ यकृदरि त्विदं लौहं वातगुल्मविनाशनम् ॥ ३११॥

भाषा-लोह और अभ्रक चार २ तोले, ताम्र २ तोले, नींबूकी जडकी छाल ८ तोले, मृगचर्म भस्म ८ तोले इन सबको साथ मर्दन करके ९ रत्तीकी एक २ गोली बनावे । इस औषधिका सेवन करनेसे प्लीहा, उदरी, कामला, हलीमक, खांसी, दमा और ज्वरका नाश होकर बल वर्ण और अग्नि बढती है । इस यकृदरिलोहसे वायुगोलेका नाश होता है ॥ ३११ ॥

ताम्रेश्वरवटी ।

हिंगु त्रिकटु चैवापामार्गस्य च पत्रकम् । अर्कपत्रं तथा स्नुहीपत्रं च समभागिकम् ॥ सैन्धवं तत्समं ग्राह्यं लौहं ताम्रं च तत्समम् । प्लीहानां यकृतं गुल्ममामवातं सुदारुणम् ॥ अर्शांसि

घोरमुदरं मूर्च्छां पाण्डुं हलीमकम् । ग्रहणीमतिसारं च यक्ष्माणं शोथमेव च ॥ ३१२ ॥

भाषा-हींग, त्रिकुटा, चिरचिटेके पत्ते, आकके पत्ते, थूहरके पत्ते और सबकी बराबर सेंधा ले । फिर इन सबकी बराबर लोहा और तांबा मिलावे । एकत्र मर्दन करे । इसके सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत्, आमवात, बवासीर, मूर्च्छा, पाण्डु, हलीमक, संग्रहणी, अतिसार, यक्ष्मा और शोथका नाश होता है । इसका नाम ताम्रेश्वरवटी है ॥ ३१२ ॥

अग्निकुमारलोहम् ।

यमानी मरिचं शुण्ठी लवंगैलाविडङ्गकम् । प्रत्येकं तोलकं चूर्णं लौहचूर्णं तु तत्समम् ॥ रसस्य गंधकस्यापि पलैकं कज्जलीकृतम् । घृतेन मधुना खाद्यं लौहमग्निकुमारकम् ॥ यकृत्प्लीहोदरहरं गुल्मं चापि हलीमकम् । बलवर्णाग्निजननं कान्तिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥ श्रीमद्गहननाथेन निर्मितं विश्वसंपदे ॥ ३१३ ॥

भाषा-तूतिया, हींग, सुहागेकी खील, सेंधा, धनिया, जीरा, अजवायन, मिरच, सोंठ, लौंग, इलायची, वायविडङ्ग इनका एक २ तोला चूर्ण ले। सबकी बराबर लोहचूर्ण और एक पल कज्जली इन सबको एकत्र करके मर्दन करे । घी और शहतके साथ मिलाय सेवन करे । इसका नाम अग्निकुमार रस है । इससे प्लीहा, यकृत, उदर, गोला और हलीमकका नाश होता है और बल, वर्ण, अग्नि, कान्ति और पुष्टि बढती है । संसारकी रक्षा करनेके लिये गहनानन्दनाथने इस औषधिको निर्माण किया ॥ ३१३ ॥

वज्रक्षारम् ।

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् । टंकणं सर्जिकाक्षारं तुल्यं सर्वं विचूर्णयेत् ॥ अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वातपे भावयेत्र्यहम् । तेन लिप्तार्कपत्रं तु रुद्ध्वा चान्तः पुटे पचेत् ॥ तत्क्षारं चूर्णयेत्पश्चात् त्र्यूषणं त्रिफलारजः । जीरकं रजनीवह्निनवभागं समं समम् ॥ क्षीरार्द्धमेव सर्वं च एकीकृतं प्रयोजयेत् । वज्रक्षारमिदं सिद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूलदोषेषु योजयेत् । अग्निमान्द्येऽप्यजीर्णेऽपि भक्ष्यं निष्क-

द्वयं द्वयम् ॥ वाताधिके जलं कोष्णं घृतं वा पैत्तिके हितम् ।
कफे गोमूत्रसंयुक्तमारनालं त्रिदोषजे ॥ ३१४ ॥

भाषा-समुद्रनोन, सेंधा, कचियानोन, जवाखार, काला निमक, सुहागा, सज्जीखार इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे । फिर आकके दूध और थूहरके दूधमें ३ दिन धूपमें भावना दे । तिससे एक ताम्रपत्रपर लेप करे । फिर घडियाके भीतर रखकर पाक करे । जब यह तांबेका पत्र भस्म हो जाय तो चूर्ण करके उसके साथ त्रिकुटा, त्रिफला, जीरा, हलदी, चित्रक इन नौ द्रव्योंका चूर्ण बराबर क्षारसे आधा मिलावे । इसका नाम वज्रक्षार है । स्वयं महादेवजीने इस औषधिका आविष्कार किया है । सर्व प्रकारके उपद्रवयुक्त गुल्म, शूल, मन्दाग्नि और अजीर्णरोगमें दो २ निष्ककी बराबर सेवन करे । वातरोगमें कुछेक गरम पानी, पित्तमें घी, कफके रोगोंमें गोमूत्र और त्रिदोषजनित रोगमें कांजीके साथ सेवन करे ॥ ३१४ ॥

दारुभस्म ।

दारुसैन्धवगंधं च भस्मीकृत्य प्रयत्नतः ।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ३१५ ॥

भाषा-दारु (स्थावरविषभेद), गन्धक, सेंधा इनको भस्म कर पीस ले । इसको सेवन करनेसे प्लीहा, अग्रमांस और यकृत्‌का नाश होता है । इसका नाम दारुभस्म है ॥ ३१५ ॥

रोहितकलोहम् ।

रोहितकसमायुक्तं त्रिकत्रययुतं त्वयः ।
प्लीहानमग्रमांसं च यकृतं च विनाशयेत् ॥ ३१६ ॥

भाषा-रुहेडावृक्षका वक्कल, त्रिकुटा, त्रिफला, त्रिजात (दालचीनी, इलायची, तेजपात) इन सबका चूर्ण एक २ भाग सब चूर्णकी बराबर लौह इन सबको शहदके साथ लोहेकी बर्तनमें घोटके एक रत्तीसे प्रतिदिन एक २ रत्ती बढाकर सेवन करे । इसका नाम रोहितक लौह है । इससे प्लीहा, अग्रमांस और यकृद्रोगका नाश होता है ॥ ३१६ ॥

मृत्युञ्जयलौहम् ।

शुद्धसूतं समं गन्धौ जारिताभ्रं समं समम् । गन्धकाद्द्विगुणं लौहं मृतताम्रं चतुर्गुणम् ॥ द्विक्षारं टङ्कणबिडं वराटमथ शंखकम् । चित्रकं कुनटी तालकटुकी रामठं तथा ॥ रोहितकस्त्रिवृ-

ञ्चिचा विशाला धवमंकुठम् । अपामार्गं तालकं च मल्लिका च निशायुगम् ॥ कानकं तुत्थकं चैव यकृन्मर्दं रसाञ्जनम् । एतानि समभागानि चूर्णयित्वा विभावयेत् ॥ आर्द्रकस्वरसेनैव गुडूच्याः स्वरसेन च । मधुनः कुडवैर्भाव्यं वटिका मापमात्रतः ॥ अनुपानं प्रदातव्यं बुद्ध्वा दोषानुसारतः । भक्षयेत् प्रातरुत्थाय सर्वरोगकुलान्तकम् ॥ प्लीहानं ज्वरमुग्रं च कासं च विषमज्वरम् । चिरजं कुलजं चैव श्लीपदं हंति दारुणम् ॥ रोगानीकविनाशाय धन्वन्तरिकृतं पुरा । मृत्युञ्जयमिदं लौहं सिद्धिदं शुभदं नृणाम् ॥ ३१७ ॥

भाषा–पारा, गन्धक, अभ्रक एक २ भाग, लोहा २ भाग, तांवा ४ भाग, एक भाग त्रिक्षार, सुहागेकी खील, बिडनमक, कौडीभस्म, शंख, चित्रक, मेनशिल, हरिताल, कुटकी, हींग, रुहेडा, निसोत, इमलीकी छालकी भस्म, गंगेरन, खैर, अंकोट, चिरचिटा, मूसली, चमेली, हलदी, दारुहलदी, जमालगोटा, नीलाथोथा, सरफोका और रसौत इन सव द्रव्योंको चूर्ण करके सात वार अद्रकके रसमें, सात वार गिलोयके रसमे भावना देकर शहतसे भावना दे । फिर मासा २ भरकी गोलियां बनावे । रोगका और दोषका बलावल विचार अनुपानका निर्णय करके सवेरेही इस औषधिका सेवन करे । इससे समस्त रोगोका नाश होता है और तिल्ली, ज्वर, खांसी, विषमज्वर, श्लीपदादि पुराने और कौलिकरोगकाभी नाश होता है । महर्षि धन्वन्तरिजीने पूर्वकालमे इस औषधिको निर्माण किया है । इसका नाम मृत्युञ्जयलौह है । यह मनुष्योंके लिये शुभदाई और सिद्धिदायक है॥

प्लीहार्णवो रसः ।

हिङ्गुलं गंधकं टङ्कमभ्रकं विपमेव च । प्रत्येकं पलिकं भागं चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥ पिप्पली मरिचं चैव प्रत्येकं च पलार्द्धकम् । मर्दयित्वा वटीं कुर्यात् वल्लमात्रां प्रयत्नतः ॥ सेव्या शेफालिदलजैर्वटी माक्षिकसंयुता । प्लीहानं षट्प्रकारं च हन्ति शीघ्रं न संशयः ॥ ज्वरं नन्दानलं चैव कासं श्वासं वमिं भ्रमिम् । प्लीहार्णव इति ख्यातो गहनानन्दभाषितः ॥ ३१८ ॥

भाषा–सिंगरफ, गन्धक, सुहागेकी खील, अभ्रक और विप प्रत्येक एक २

पल लेकर भली भांतिसे चूर्ण करे फिर उसके साथ चार तोले पीपलचूर्ण और ४ तोले मिरचचूर्ण मिलाय मर्दन करके दो दो रत्तीकी एक गोली बनावे। हारसिंगारके पत्तोंका रस और शहतके साथ इस औषधिका सेवन करे। इससे ६ प्रकारकी तिल्ली, ज्वर, मन्दाग्नि, खांसी, दमा, वमन, भ्रमका नाश होता है। इसका नाम प्लीहार्णव रस है। गहनानन्दनाथने इसको निर्माण किया है॥ ३१८॥

प्लीहशार्दूलो रसः।

सूतकं गंधकं व्योषं समभागं पृथक् पृथक्। एभिः समं ताम्रभस्म योजयेद्वैद्यबुद्धिमान्॥ मनःशिलावराटं च तुत्थं रामठलौहकम्। जयन्ती रोहितं चैव क्षारटंकणसैन्धवम्॥ बिडं चित्रं कानकं च रसतुल्यं पृथक् पृथक्। भावयेत्रिदिनं यावत् त्रिवृच्चित्रकणार्द्रकैः॥ गुंजामात्रां वटीं खादेत् सद्यः प्लीहविनाशनम्। मधुपिप्पलिसंयुक्तं द्विगुंजां वा प्रयोजयेत्॥ प्लीहानमग्रमांसं च यकृद्गुल्मं सुदुस्तरम्। अग्निमान्द्ये ज्वरे चैव सर्वज्वरेषु एव च॥ श्रीमद्गहननाथेन भाषितः प्लीहशार्दुलः॥ ३१९॥

भाषा-पारा, गन्धक और त्रिकुटा प्रत्येक एक २ भाग, सब द्रव्योंकी बराबर ताम्रभस्म, पारेकी बराबर मैनशिल, कौडीभस्म, नीलाथोथा, हींग, लौह, जयंती, रुहेडा, जवाखार, सुहागेकी खील, सेंधा, बिडनमक, चित्रक, जयपाल, (जमालगोटा) इन सबको एकत्र करके निसोत, चित्रक, पीपल और अद्रकके रसमें अलग २ भावना दे। फिर रत्ती २ भरकी गोलियां बनावे। इसको सेवन करनेसे शीघ्र प्लीहाका नाश हो जाता है। अथवा शहत व पीपलके चूर्णके साथ २ रत्ती औषधिका प्रयोग करे। यह प्लीहा, अग्रमांस, यकृद्गुल्म, आमाशय. उदर, शोष, विद्रधि, मन्दाग्नि, ज्वरादिका नाश करता है। गहनानन्दनाथने इस प्लीहशार्दूल नाम रसको निर्माण किया है॥ ३१९॥

ताम्रकल्पम्।

अक्षपारदगन्धं च कर्षद्वयमितं पृथक्। सर्वैः समं भवेत्ताम्रं जम्बीराम्लेन मर्दयेत्॥ सूर्यावर्त्तरसैः पश्चात् कणामोचरसेन च। योजयेत्तीव्रघर्मे तु यावत् सर्वं तु जीर्यति॥ जम्बीरस्य रसैर्भूयो रसं दण्डेन चालयेत्। दृढे शिलामये पात्रे चूर्णयेदतिशोभ-

नम् ॥ रक्तिद्वयक्रमेणैव योज्यं माषद्वयावधि । ह्रासयेच्च क्रमेणैव तथा चैव विवर्द्धयेत् ॥ जीर्णे भुंजीत शाल्यन्नं क्षीरं घृतसमन्वितम् । हन्त्यम्लपित्तं विविधं ग्रहणीं विषमज्वरम् ॥ चिरज्वरं प्लीहगदं यकृद्रोगं सुदुस्तरम् । अग्रमांसं तथा शोथं कांस्यक्रोडं सुदुर्जयम् ॥ कमठं च तथा शोथमुदरं च सुदारुणम् । धातुवृद्धिकरं वृष्यं बलवर्णकरं शुभम् ॥ सद्यो वह्निकरं चैव सर्वरोगहरं परम् । मुखशुद्धिर्विधातव्या पर्णैश्चूर्णसमन्वितैः ॥ ताम्रकल्पमिदं नाम्ना सर्वरोगप्रशान्तये ॥ ३२० ॥

भाषा—चार २ तोले बहेडा, पारा, गन्धक सब द्रव्योंकी बराबर ताम्र एकत्र करके जम्बीरीके रसमें ७ भावना दे । फिर हुलहुलका रस, पीपलका क्वाथ और सेमलके रसमें सात २ वार भावना दे, धूपमें सुखा ले । फिर दुतारा जंबीरीके रसमें मर्दन करके मजबूत शिलापर पीसके चूर्ण करे । यह औषधि २ रत्ती लेकर प्रतिदिन दो रत्ती बढाय २ मासेतक बढावे । फिर दो दो रत्ती घटाता जाय । इस औषधिके जीर्ण हुए पीछे दूध सट्टीका भात और घी पथ्य करे । यह अम्लपित्त, ग्रहणी, विषमज्वर, पुराना ज्वर, तिल्ली, यकृत्, अग्रमांस, शोथ, कांस्यक्रोड और कमठरोगको दूर करता है । धातुवर्द्धक, वृष्य, वर्णजनक और अग्निवर्द्धक है इसका सेवन करके चूर्णयुक्त पान खाकर मुखको शुद्ध करे । इसका नाम ताम्रकल्प है । समस्त रोगोंका नाश करनेके लिये इस औषधिको सेवन करे ॥ ३२० ॥

उदरामयकुम्भकेसरी ।

रसगंधकभस्मताम्रकं कटुकक्षारयुगं सटंकणम् । कणमूलकचव्यचित्रकं लवणानि यमानी रामठम् ॥ समभागमिदं विभावयेत् खरातपे त्वथ जम्बुवारिणा । उदरामयकुम्भकेसरी रस एष प्रथितोऽस्य माषकः ॥ सुरवार्यनुदापयेद्भिषक् प्रसभं हन्ति व्रणजं गदम् । यकृतं कृमिमग्रमांसकं कमठं प्लीहजलोदराह्वयम् ॥ जठरानलसादगुल्मकं परमसाममथाम्लपित्तकम् ॥ ३२१ ॥

भाषा—पारा, गन्धक, तांबा, त्रिकुटा, जवाखार, सुहागेकी खील, पीपलामूल, चव्य, चित्रक, पांचों नमक, अजवायन और हींग इन सबको बराबर लेकर जामनकी छालके रससे तेज धूपमें भावना दे । इसका नाम उदरामयकुम्भकेशरी है ।

एक मासा इसकी मात्रा है, सुरा या जलका अनुपान है। इससे यकृत्, कृमि, अग्रमांस, कमठ, प्लीहा, जलोदर और गुल्मका नाश होता है ॥ ३२१ ॥

सर्वेश्वररसः।

ताम्रं दशगुणं स्वर्णात् स्वर्णपादं कटुत्रिकम्।
त्रिकटुं त्रिफला तुल्या त्रिफलार्द्धमयोरजः॥
अयसोर्द्धं विषं चैव सर्वं संमर्द्य यत्नतः।
सर्वेश्वररसो नाम रौधिरगुल्मनाशनः॥ ३२२ ॥

भाषा-सुवर्ण एक तोला, ताम्र, सीसा और त्रिकुटा प्रत्येक २ मासे, त्रिफला और लोहचूर्ण एक २ मासा, विष अर्द्ध मासा इन सबको एकत्र कर गोली बनावे। इस सर्वेश्वरनामक रससे रक्तगुल्मका नाश हो जाता है ॥ ३२२ ॥

प्राणवल्लभो रसः।

लौहं ताम्रं वराटं च तुत्थं हिङ्गु फलत्रिकम्। स्नुहीमूलं यवक्षारं जैपालं टङ्कणं त्रिवृत्॥ प्रत्येकं पलैकं ग्राह्यमजादुग्धेन पेषयेत्। चतुर्गुंजां वटीं खादेत् वारिणा मधुनापि वा॥ प्राणवल्लभनामायं गहनानंदभाषितः। निहन्ति कामलां पाण्डुं मेहं हिक्कां विशेषतः॥ असाध्यं सन्निपातं च गुल्मं रुधिरसम्भवम्। वातरक्तं च कुष्ठं च कण्डुविस्फोटकापचीम्॥ ३२३ ॥

भाषा-लोहा, तांबा, कौडीभस्म, नीलाथोथा, हींग, त्रिफला, थूहरकी जड, जवाखार, जमालगोटा, सुहागेकी खील और निसोत एक २ पल ले। सबको बकरीके दूधमे मर्दन कर चार २ रत्तीकी गोली बनावे। जल अथवा सहतके साथ इसको सेवन करे। इस प्राणवल्लभ रसको गहनानन्दनाथने निर्माण किया है। इससे कामला, पाण्डु, मेह, हिचकी, असाध्य सन्निपातके रोग, रक्तगुल्म, वातरोग, कुष्ठ, कण्डु, विस्फोटक और अपची रोगका नाश होता है ॥ ३२३ ॥

गुल्मशार्दूलो रसः।

रसं गन्धं शुद्धलौहं गुग्गुलोः पिप्पलं पलम्। त्रिवृता पिप्पली शुण्ठी शठी धान्यकजीरकम्॥ प्रत्येकं पलैकं ग्राह्यं पलार्द्धं कानकं फलम्। संचूर्ण्य वटिका कार्या घृतेन वल्लमानतः॥ वटीद्वयं भक्षयेच्चार्द्रकोष्णाम्बु पिबेदनु। हन्ति प्लीहयकृद्गुल्मकाम-

लोदरशोथकम् ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं श्लैष्मिकं रौधिरं तथा । गहनानन्दनाथोक्तो रसोऽयं गुल्मशार्दूलः ॥ ३२४॥

भाषा-एक २ पल पारा, गन्धक, लौह, गूगल, अश्वत्थ (पीपलवृक्ष) की जड़, निसोत, पीपल, सोंठ, कचूर, धनिया और जीरा व जमालगोटा आधा पल इन सबको चूर्ण कर घीके साथ मर्दन करके छः २ रत्तीकी एक २ गोली बनावे। इससे प्लीहा, यकृत्, कामला, उदरी, शोथ और वात, पित्त व कफसे उत्पन्न हुआ रक्तज गुल्म जाता रहता है ॥ ३२४ ॥

कांकायनगुटिका ।

शठीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकपाठकीम् । शृंगवेरं वचां चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ त्रिवृतायाः पलं चैकं कुर्यात् त्रीणि च हिंगुलः । यवक्षारात् पले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ यमान्यजाजी मरिचं धान्यकं च त्रिकार्षिकम् । उपकुंचाजमोदाभ्यां पृथगर्द्धपलं भवेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनैव गुटिकां कारयेद्भिषक् । तासामेकां पिबेद्द्वौ वा तिस्रो वाथ सुखांबुना ॥ अम्लैर्मद्यैश्च यूषैश्च घृतेन पयसाथ वा । एषा कांकायनेनोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी ॥ अर्शोहृद्रोगशमनी कृमीणां च विनाशिनी । गोमूत्रयुक्ता शमयेत् कफगुल्मं चिरोत्थितम्॥क्षीरेण पित्तरोगं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम् । त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत् सान्निपातिकम् ॥ रक्तगुल्मेषु नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ३२५ ॥

भाषा-कचूर, कूडा, दन्ती, चित्रक, अडहर, सोंठ, वच, निसोत एक २ पल लेवे, हींग ३ पल, अजवायन, जीरा, मिरच, धनिया छः छः तोले, काला जीरा और अजवायन चार तोले इन सबको बिजौरे नींबूके रसमें खरल करके गोली बनावे। दो या तीन गोलियां कुछेक गरम दूधके साथ पीवे । अथवा अम्लवर्ग, मद्य, जूस, घी और दूधके साथ पान करे । कांकायनमुनिने इस औषधिको बनाया है । इससे गुल्म, बवासीर, हृद्रोग और कृमिका नाश होता है । गोमूत्रके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे पुराना कफजनित गुल्म दूर होता है । दूधके साथ सेवन करनेसे पित्तरोग दूर होता है । सुरा और खटाईके साथ सेवन करनेसे वातरोग दूर होते हैं । त्रिफलाके रस या गोमूत्रके साथ सेवन की जाय तो सान्निपातिक रोगोंका नाश होता है।ऊंटनीके दूधके साथ सेवन करनेसे स्त्रियोंका रक्तगुल्म दूर होता है॥३२५॥

गोपीजलः।

जैपालाष्टौ द्विको गंधः शुण्ठी मरिचचित्रकम्। एकः सूतः समो भागो गोपीजल इति स्मृतः ॥ शूलव्याध्याश्रयान् गुल्मान् कोष्ठादौ दश पैत्तिकान्। भगन्दरादिहृद्रोगान्नाशयेदेव भक्षणात् ॥

भाषा-जमालगोटा ८ भाग, गन्धक २ भाग, सौंफ, मिरच, चित्रक और पारा एक २ भाग सबको गोमूत्रमें पीसकर सेवन करे। यह गोपीजल शूल, गुल्म, भगन्दर और हृद्रोगका नाश करता है ॥ ३२६ ॥

अभयावटी।

अभया मरिचं कृष्णा टंकणं च समांशिकम्। सर्वचूर्णसमं चैव दद्यात् कानकजं फलम् ॥ स्नुहीक्षीरैर्वटी कार्या यथा स्विन्नकलायवत् । वटीद्वयं शिवामेकां पिष्ट्वा चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥ उष्णाद्विरेचयेदेषा शीते स्वास्थ्यमुपैति च। जीर्णज्वरं पांडुरोगं प्लीहाष्ठीलोदराणि च ॥ रक्तपित्ताम्लपित्तादिसर्वाजीर्णं विनाशयेत् ॥ ३२७ ॥

भाषा-हरीतकी, मिरच, पीपल, सुहागेकी खील बराबर लेकर चूर्ण करे। फिर सब चूर्णोंको मिलाय थूहरके दूधमे पीसके गीले मटरकी समान गोलियां बनावे। ये दो गोलियां और एक हरीतकी एक साथ पीसकर गरम जलके साथ सेवन करे। इसका नाम अभयावटी है। इसको सेवन करके उष्ण जल पीनेसे विरेचन होता है। शीतल जलको सेवन करतेही विरेचन बन्द हो जाता है। इससे जीर्णज्वर, पाण्डु, रक्तपित्त, अम्लपित्त और सर्व प्रकारके अजीर्ण नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ३२७ ॥

महागुल्मकालानलो रसः।

गंधकं तालकं ताम्रं तथैव तीक्ष्णलोहकम्। समांशं मर्दयेद्गाढं कन्यानीरेण यत्नतः ॥ संपुटं कारयेत्पश्चात् सन्धिलेपं च कारयेत्। ततो गजपुटं दत्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ द्विगुंजां भक्षयेद्गुल्मी शृंगवेरानुपानतः। सर्वगुल्मं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३२८ ॥

भाषा-गन्धक, हरिताल, तांबा, तीक्ष्ण लौह इन सबको बराबर लेकर घीकारके रसमें मर्दन करे। फिर संपुट बन्द कर गजपुटमे पाक दे। शीतल होनेपर

दो रत्ती लेकर अभ्रकके रसके साथ पाक करे। इसका नाम महागुल्मकालानल रस है। जैसे सूर्य भगवान् तिमिररोगको दूर करते हैं वैसेही यह औषधि गुल्म-रोगका नाश करती है ॥ ३२८ ॥

विद्याधररसः ।

पारदं गंधकं तालं ताप्यं स्वर्णं मनःशिला । कृष्णाक्काथैः स्नुहीक्षीरैर्दिनैकं मर्दयेत्सुधीः ॥ निष्कार्द्धं श्लैष्मिकं गुल्मं हन्ति मूत्रानुपानतः । रसो विद्याधरो नाम गोदुग्धं च पिबेदनु ॥३२९॥

भाषा-पारा, गन्धक, हरिताल, सोनामक्खी, सुवर्ण और मैनशिल इनको बराबर ले। पीपलके काथमें एक दिन और थूहरके दूधमें एक दिन मर्दन करे। आधा तोला इस औषधिका सेवन करके गोमूत्र अनुपान करे, गायका दूध पिये। इस विद्याधरनामक रससे कफजात गुल्म नाश होता है ॥ ३२९ ॥

महानाराचरसः ।

ताम्रसूतं समं गन्धं जैपालं च फलत्रिकम् ।
कटुकं पेषयेत् क्षारैर्निष्कं गुल्महरं पिबेत् ॥
उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं महारसः ॥ ३३० ॥

भाषा-तांबा, पारा, गन्धक, जमालगोटा, त्रिफला और त्रिकुटा इन सबको एक २ भाग ले, त्रिक्षारके साथ पीसकर एक निष्क सेवन करे। इसका नाम महानाराच रस है। गरम जलके साथ इस रसको सेवन करना चाहिये ॥ ३३० ॥

पञ्चाननरसः ।

पारदं शिखितुत्थं च गन्धं जैपालपिप्पली । आरग्वधफला-न्मज्जावज्रीक्षीरेण पेषयेत् ॥ धात्रीरसयुतं खादेद्रक्तगुल्मप्रशा-न्तये ॥ चिंचाफलरसं चानु पथ्यं दध्योदनं हितम् ॥ ३३१ ॥

भाषा-पारा, तूतिया, गन्धक, जमालगोटा, पीपल, अमलतासका गूदा इनको बराबर लेकर थूहरके दूधमें मर्दन करे। इसका नाम पञ्चानन रस है। धायके फल (आमले) के रसके साथ इस औषधिका सेवन करे। इसे सेवन करे पीछे इमलीका रस पिये, दहीभात पथ्य करे ॥ ३३१ ॥

गुल्मवज्रिणी वटिका ।

रसगन्धकताम्रं च कांस्यं टङ्कणतालकम् । प्रत्येकं पलिकं ग्राह्यं मर्दयेदतियत्नतः ॥ तद्वथ त्रिबलं खादेद्रक्तगुल्मप्रशान्तये ।

निर्मिता नित्यनाथेन वटिका गुल्मवज्रिणी ॥ कामलापाण्डुरोगघ्नी ज्वरशूलविनाशिनी ॥ ३३२ ॥

भाषा-एक २ पल पारा, गन्धक, तांवा, कांसी, सुहागेकी खील और हरिताल लेकर यत्नके साथ मर्दन करे। अग्नि और वलावलका विचार करता हुआ रक्तगुल्मका नाश करनेके लिये इस औषधिका सेवन करे। इसका नाम गुल्मवज्रिणी वटिका है। नित्यनाथने इस औषधिको निर्माण किया है। इससे कामला, पाण्डु, ज्वर, शूल और गुल्मका नाश होता है ॥ ३३२ ॥

अपरमहानाराचरसः ।

सूतटंकणतुल्यांशं मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विमिश्रयेत्॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दंतीवीजं निस्तुषमेव च । द्विगुंजं रेचनं स्निग्धं नाराचाख्यो महारसः ॥ ३३३ ॥

भाषा-पारा, सुहागेकी खील और मिर्च ये एक २ भाग ले, दो दो भाग गन्धक, पीपल और सोंठ सवकी वरावर तुपरहित दन्तीवीज, सवको एक २ साथ मिलाय दो २ रत्तीकी गोलियां वनावे। इस महानाराच नामक रसके सेवन करनेसे विरेचन होकर गुल्मका नाश होता है ॥ ३३३ ॥

गुल्मकालानलो रसः ।

सूतकं लौहकं ताम्रं तालकं गंधकं समम् । तोलद्वयमितं भागं यवक्षारं च तत्समम् ॥ मुस्तकं मरिचं शुण्ठी पिप्पली गजपिप्पली । हरीतकी वचा कुष्टं तोलैकं चूर्णयेद्बुधः ॥ सर्वमेकीकृतं पात्रे क्रियन्ते भावनास्ततः। पर्पटं मुस्तकं शुण्ठ्यपामार्गं पापचेलिकम् ॥ तत्पुनश्चूर्णयेत्पश्चात् सर्वगुल्मनिवारणम्। गुंजाचतुष्टयं खादेद्धरीतक्यनुपानतः ॥ वातिकं पैत्तिकं गुल्मं तथा चैव त्रिदोषजम् । द्वन्द्वजं श्लैष्मिकं हन्ति वातगुल्मं विशेषतः ॥ गुल्मकालानलो नाम सर्वगुल्मकुलान्तकृत् ॥ ३३४ ॥

भाषा-पारा, लोहा, तांवा, हरिताल, गन्धक और जवाखार दो २ तोले ले। मोथा, मिरच, सोंठ, पीपल, गजपीपल, हरीतकी, वच, कूडा ये एक २ तोला ले। इन सबका चूर्ण करके श्वेत पापडा, मोथा, सोठ, चिरचिटा, हाथीशुण्डा (पाढ) इनमेंसे प्रत्येकके रसमे भावना दे। फिर चूर्ण करे । इससे गुल्म दूर होता है।

४ रत्ती इस औषधिको लेकर हरीतकी चूर्णके साथ सेवन करे । इसका नाम गुल्मकालानल रस है । गुल्मरोगका तो मानो यह यम है । इससे वातज, पित्तज, त्रिदोषज और कफज गुल्मका नाश हो जाता है ॥ ३३४ ॥

वृहदिच्छाभेदी रसः ।

शुद्धं पारदटंकणं समरिचं गन्धाश्मतुल्यं त्रिवृत् विश्वा च द्विगुणा ततो नवगुणं जैपालचूर्णं क्षिपेत् । खल्वे दण्डयुगं विमर्द्य विधिना चार्कस्य पत्रे ततः स्वेदं गोमयवह्निना च मृदुना स्वेच्छावशाद्भेदकः ॥ गुंजैकं प्रमितो रसो हिमजलैः संसेवितो रेचयेत् यावन्नोष्णजलं पिबेदपि वरं पथ्यं च दध्योदनम् ॥ ३३५ ॥

भाषा–पारा, सुहागेकी खील, मिरच, गन्धक, निसोत एक २ भाग, अतीस दो भाग, जमालगोटा ९ भाग इन सबको आकके पत्तोंके रसमें मर्दन करे । फिर गोबरके उपलोंके तापसे मृदुस्वेद देकर रत्ती २ भरकी गोलियां बनावे । शीतल जलके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे विरेचन होता है । जबतक गरम जल न पिया जायगा, विरेचन होता रहेगा, इससे उदराग्निका उद्दीपन होता है, बलास रोगका नाश होता है, सब प्रकारके आमरोग ध्वंस हो जाते हैं ॥ ३३५ ॥

योगाः ।

पुटिता भावितं लौहं त्रिवृत्क्वाथैरनेकशः ।
उदावर्त्तहरं युंज्यात् ससितं वा यथाबलम् ॥
उदावर्त्ते प्रयोक्तव्या उदरोक्ता रसाः खलु ॥ ३३६ ॥

भाषा–पुटितलौहचूर्णको निसोतके क्वाथके साथ वारंवार भावना दे खांडके साथ सेवन करे तो उदावर्त्तका नाश हो। उदररोगमें जो रस कहे है इस रोगमेभी उन सबको दिया जा सकता है ॥ ३३६ ॥

वैद्यनाथवटी ।

पथ्या त्रिकटु सूतं च द्विगुणं कानकं तथा । थानकूनीरसैरम्ललोलिकायां रसैः कृता ॥ गुटिकोदरगुल्मादिपाण्ड्वामयविनाशिनी । कृमिकुष्ठगात्रकण्डुपीडकांश्च निहन्ति च ॥ गुटी सिद्धिफला चेयं वैद्यनाथेन भाषिता ॥ ३३७ ॥

भाषा-हरीतकी, त्रिकुटा, त्रिफला एक २ भाग, जमालगोटा २ भाग सबको एकत्र कर कौंचके रसमें और आमलेके रसमें भावना दे। दो रत्तीकी एक २ गोली बनावे। सेवन करे। इस वैद्यनाथनामक वटीसे गुल्म, पाण्डु, कृमि, कुष्ठ, गात्रकण्डु और फुनसियां जाती रहती हैं। इस औषधिके निर्माण करनेवाले वैद्यनाथ हैं॥ ३३७॥

हेमाद्रिरसः।

वैकृष्णरसकत्र्यक्षं पिष्ट्वा गंधं पलद्वयम्। पलं नागाभ्रयोः सर्वं संचूर्णं सिकताघटे॥ पक्कमूषागतं यामं पचेद्भूयः क्षिपन् द्रवम्। केतकीकुष्ठनिर्गुण्डीशिग्रुग्रन्थाग्निचव्यजम्॥वंध्याहिंस्रेभकर्ण्युत्थं व्याघ्रीलुङ्गबलोद्भवम्। अश्वगन्धाभवं वातान् विंशद्वित्रिषु सागरान्॥ षट्सप्तवसुदिग्द्वित्रियुगं भुवनतः क्रमात्। कुमार्याः पुटयेत् प्रौढो रसो हेमाद्रिसंज्ञकः॥ भुक्तो माषो निहन्त्याशु सर्वार्शोरोचकग्रहान्। मन्दाग्न्युन्मादमेदांसि गंडमालार्बुदापचीः॥ गलगण्डप्रमेहादीन् मुष्कलिंगाक्षिकर्णजान्। क्षुद्ररोगांश्च विविधान् गरुडः पन्नगानि च॥ ३३८॥

भाषा-पारा ३ अक्ष, गन्धक २ पल, रांगा व अभ्रक एक २ पल एक साथ चूर्ण कर घडियामें रखके वालुकायन्त्रमें एक प्रहरतक पाक करे। फिर २० वार केतकीके क्वाथमें, २ वार कूडेके क्वाथमे, ३ वार संभालूके क्वाथमे, ७ वार सहजनेके क्वाथमें, ६ वार पीपलामूलके क्वाथमें, ७ वार चित्रकके क्वाथमें, ८ वार चवकाष्ठके क्वाथमें, ८ वार कडुवी ककडी और अथवा सुगन्धि वालाके क्वाथमें, २ वार बालछडके क्वाथमे, ३ वार लाल अरण्डीके क्वाथमें, ४ वार कटेरीके क्वाथमे, ३ वार असगन्धके क्वाथमें, ३ वार घीक्वारके क्वाथमें और ३ वार खरेटीके क्वाथमें भावना देकर पुट दे। इसका नाम हेमाद्रिरस है। इसकी मात्रा १ मासा है। इससे सर्व प्रकारकी बवासीर, अरुचि, मन्दाग्नि, उन्माद, मेदरोग, कंठमाला, अर्बुद, अपची, गलगण्ड, प्रमेह, मुष्करोग, विश्वरोग, नेत्ररोग, कर्णरोग औरभी अनेक प्रकारके क्षुद्ररोग नष्ट होते हैं। जिस प्रकार गरुडजी सर्पोंका नाश करते हैं। वैसेही यह औषधि रोगराशिको दूर करती है॥ ३३८॥

मुखरोगहरी।

रसगन्धौ समौ ताभ्यां द्विगुणं च शिलाजतु। गोमूत्रेण विम-

घ्नीथ सप्तधार्द्रद्रवेण च ॥ जातीनिम्बमहाराष्ट्रीरसैः सिध्यति पाकहा । कणामधुयुतं हन्ति मुखरोगं सुदारुणम् ॥ गुंजाष्टक-मिदं तालुगलौष्ठदन्तरोगनुत् । महाराष्ट्राश्वगन्धाभ्यां मुखं च प्रतिसारयेत् ॥ धारणात् सेवनाच्चैव हन्ति सर्वान् मुखामयान् ३३९

भाषा-एक २ भाग पारा व गन्धक, ४ भाग शिलाजीत इन सबको गोमूत्रके साथ मर्दन करके आकका रस, जातिपत्रका रस, नीमका रस और गजपीपलका रस इन सबमें सात २ वार भावना दे । इसका नाम मुखरोगहरी है । ८ रत्ती इस औषधिको लेकर पीपल और शहतके साथ मिलायकर सेवन करे । इससे तालु, गला, होंठ और दांत व मुखके रोगोंका नाश होता है । गजपीपल और असगन्ध मुखमें रखनेसेभी मुखरोग दूर होता है ॥ ३३९ ॥

पार्वतीरसः ।

पार्वतीकाशीसम्भूतो दरदो मधुपुष्पकम् । गुडूची शाल्मली द्राक्षा धान्यभूनिम्बमार्कवम् ॥ तिलामुद्गपटोलं च कूष्माण्ड-लवणद्वयम् । यष्टिकाधान्यकं भस्म चान्तर्दग्धं समं समम् ॥ मुखरोगं चिरं हन्ति तिमिरं च तृषामपि ॥ ३४० ॥

भाषा-पारा, सिंगरफ, महुआ, गिलोय, दाख, धनिया, वायविडङ्ग, भांगरा, तिल, मूंग, परवल, पेठा, दोनो नमक, सट्टीके धानकी भस्म इन सबको बराबर ले अन्तर्दाह भस्म कर ले । यह रस मुखरोग, पुराने पैत्तिकज्वर, तिमिररोग और प्यासका नाश करता है । इसका नाम पार्वतीरस है ॥ ३४० ॥

द्विजरोपिणी गुटिका ।

नागस्य त्रिफलाक्वाथे रसे भृंगस्य गोघृते । अजादुग्धे च गोमूत्रे शुण्ठीक्वाथे मधुन्यपि ॥ लोहपात्रे द्रावयित्वा युक्त्या तद्गुटिकां चरेत् । सा मुखे धारिता हन्ति मुखरोगानशेषतः ॥ दृढीकरोति दशनान् बद्धमूलानशेषतः ॥ ३४१ ॥

भाषा-७ पल सीसा, लोहेके पात्रमें गलायकर, ७ पल त्रिफलाका क्वाथ, ७ पल भांगरेका रस, ७ पल गायका घी, ७ पल छागदूध, ७ पल गोमूत्र, ७ पल सोंठका क्वाथ और ७ पल शहद इनमें अलग २ रांगकी समान मर्दन करके गुटिका बनावे । यह द्विजरोपिणी गुटिका मुखमें रखनेसे मुखरोगोको दूर करती है । दांत दृढ होते हैं ॥ ३४१ ॥

अमृतांजनम् ।

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ ताभ्यां द्विगुणमंजनम् ।
ईषत्कर्पूरसंयुक्तमंजनं तिमिरापहम् ॥ ३४२ ॥

भाषा-पारा, सीसा बराबर, अंजन दोनोंसे दूना सबको मिलाय थोडासा कपूर मिलावे, नेत्रोंमें लगानेसे नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३४२ ॥

ताम्राञ्जनम् ।

गंधेन च मृतं ताम्रं मधुना सारभं जयेत् ।
पटलादीन् निहन्त्येतत् शीघ्रमेव न संशयः ॥ ३४३ ॥

भाषा-गन्धक और मारित तांवा शहतके साथ कज्जली करे। उस कज्जलीको नेत्रोंमें लगानेसे पलटादि नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ ३४३ ॥

प्राणरोपणरसः ।

सर्वरोगोदितं युञ्ज्यादथवा योगवाहनम् । रसं सकट्फलैः सूतैः स्थौल्यनाशाय युक्तितः ॥ गन्धोऽसौ हि कणातुल्यौ त्र्यहं जम्बीरमर्दितौ । कुमार्या नरमूत्रेण चित्रकेण च सिन्धुना ॥ सौवर्चलेन च पृथक् युक्त्या च विविधैः क्रमात् । व्रणरोगेषु सर्वेषु सद्यो जातव्रणेषु च ॥ शूलभगन्दरे गण्डगण्डमालासु योजयेत् । क्षौद्रेण च यथायोगैः त्रिवल्लं पुरसंमतम् ॥ पथ्याश्च शालयो मुद्गा गोधूमा सघृता हिताः ॥ ३४४ ॥

भाषा-सर्व रोगोंमें कही योगवाही औषधियां युक्तिके अनुसार स्थूलरोगमें प्रयोग करनी उचित है । पारा, गन्धक और पीपल बराबर ले क्रमानुसार जंबीरीरस, घीक्वारका रस, मनुष्यमूत्र, चित्रकका रस और सौवर्चल नमकसे पीसकर गोली बनावे । इसका नाम प्राणरोपण रस है । इससे समस्त व्रणरोग, मकरी फलना, भगन्दर, गलगण्ड, गण्डमाला आदिका नाश हो जाता है । घी और गूगलके साथ इस औषधिको छः रत्ती सेवन करे । इस औषधिको सेवन करके सठीके चावलोंका भात, मूंगका जूस, गेहूं और घी मिलाकर पथ्य करे ॥ ३४४ ॥

सप्तामृतलोहम् ।

त्रिफलात्वचमायसं च चूर्णं सहयष्टीमधुकं समांशयुक्तम् । मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमर्दिते ॥ तिमिरार्बुदर-

क्तराजिकण्डूक्षणदाध्मानार्बुदतोददाहशूलान् । पटलं सहशुक्र-
काचपिष्टिं शमयत्येष निषेवितः प्रकोपम् ॥ नच केवलमेव लोच-
नानां विहितो रोगनिबर्हणाय पुंसाम् । दर्शनश्रवणोर्द्ध्वकण्ठजानां
क्रमशोहेतुरयं महागदानाम् ॥ अर्शांसि भगन्दरप्रमेहप्लीहकुष्ठानि
हलीमकं किलासम् । पलितानि विनाशयेत् तथाग्निं चिरनष्टं
कुरुते रविप्रचण्डम् ॥ दयिताभुजपञ्जरोपगूढः स्फुटचंद्राभ-
रणासु यामिनीषु । सुरतानि चिरं निषेवतेऽसौ पुरुषो योगवरं
निषेव्यमाणम् ॥ मुखेन नीलोत्पलचारुगन्धिना शिरोरुहैर-
ञ्जनमेचकत्रयैः । भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनः सुखं नरो वर्ष-
शतं च जीवति ॥ अत्र यष्टिमधुत्रिफलात्वचः चूर्णं लौहचूर्णस-
मानमेव । घृतमधुना लेहसाधनेन एतत्तु चक्रदत्तोऽपि लिखति ॥
समधुकत्रिफलाचूर्णकयोरजः समं लिहन् । मधुसर्पिर्युतं सम्य-
ग्गवां क्षीरं पिबेदनु ॥ छर्दिं सतिमिरां शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्ल-
मम् । आनाहं मूत्रसंगं च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ ३४५ ॥

भाषा–त्रिफलाके वक्कलका चूर्ण, लोहचूर्ण सांझके समय घी व शहतके साथ मिलायकर चाटे । इससे तिमिर, अर्बुद, रक्तराजि, कण्डु, रतौंधा, शूल व पटलादि रोगोका नाश होता है । इससे केवल नेत्ररोगोंकोही आराम नहीं होता वरन दांत, कान और ऊर्ध्वकण्ठके रोगभी अच्छे हो जाते हैं । यह औषधि बवासीर, भगन्दर, प्रमेह, तिल्ली, कुष्ठ, हलीमक, विलास, पलित, मन्दाग्नि आदिको ध्वंस करती है । इससे अग्नि वढती है । जो कोई इस औषधिका सेवन करता है, वह चांदनी रातमे सैंकडो स्त्रियोसे भोग करे तोभी उसकी रतिशक्ति नहीं घट सकती । इस औषधिका सेवन करनेसे मुखमें नीले कमलकी समान गन्धवाला हो जाता है । वाल अंजनकी समान काले रंगके हो जाते हैं । इसको सेवन करनेवाले-की दृष्टि गिद्धकी समान हो जाती है । वह सौ वर्षतक जीवित रहता है । चक्रपाणिदत्त ऐसा कह गये हैं कि मुलहठीका चूर्ण, त्रिफलाचूर्ण और लोहचूर्ण वरावर लेकर शहद और घीमे मिलायकर चाटे । फिर गायका दूध पिये । इससे वमन, तिमिर, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, क्लम, अफरा, मूत्रसंग और शोथका नाश हो जाता है ॥ ३४५ ॥

गर्भविलासो रसः।

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम्।
त्रिर्भावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम्॥
गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु केवलम्॥ ३४६॥

भाषा–पारा, गन्धक और तूतिया बराबर लेकर जंबीरीके रसमें ३ दिन खरल करे। इसका नाम गर्भविलास रस है। त्रिकुटाके चूर्णके साथ इस रसको ४ रत्ती सेवन करे। इसको सेवन करनेसे गार्भिणीका शूल, विष्टम्भ, ज्वर और अजीर्ण दूर हो जाता है॥ ३४६॥

प्रदरान्तको रसः।

शुद्धसूतं तथा गन्धं गन्धतुल्यं च रौप्यकम्। खर्परं च वराटं च शाणमानं पृथक् पृथक्॥ तृतीयतोलकं चैव लौहचूर्णं क्षिपेत् सुधीः। कन्यानीरेण दिनैकं मर्दयेच्च भिषग्वरः॥ असाध्यं प्रदरं हन्ति भक्षणान्नात्र संशयः॥ ३४७॥

भाषा–पारा, गन्धक, चांदी, खपरिया, कौडीभस्म ये आधा २ तोला, लोहा ३ तोले इन सबको एकत्र करके एक दिन घीक्वारके रसमें मर्दन करे। इसका नाम प्रदरान्तक रस है। इससे असाध्य प्रदरभी शीघ्र आराम हो जाता है॥ ३४७॥

पुष्करलेहः।

रसांजनं शुभा शुण्ठी चित्रकं मधुयष्टिकम्। धान्यं तालीशगायत्री द्विजीरं त्रिवृता बला॥ दन्ती त्र्यूषणकं चापि पलार्द्धं च पृथक् पृथक्। चतुःपलं माक्षिकस्य मलस्य च क्षिपेत्ततः॥ जातीकोषलवङ्गं च कक्कोलं मृद्विकापि च। चातुर्जातकखर्जूरं कर्षमेकं पृथक् पृथक्॥ प्रक्षिप्य मर्दयित्वा च स्निग्धभाण्डे निधापयेत्। एष लेहवरः श्रीदः सर्वरोगकुलान्तकः॥ यत्र यत्र प्रयोज्यः स्यात्तदामयविनाशनः। अनुपानं प्रयोक्तव्यं देशकालानुसारतः॥ सर्वोपद्रवसंयुक्तं प्रदरं सर्वसम्भवम्। द्वन्द्वजं चिरजं चैव रक्तपित्तं विनाशयेत्॥ कासश्वासाम्लपित्तं च क्षयरोगमथापि वा। सर्वरोगप्रशमनो बलवर्णाग्निवर्द्धनः॥ पुष्कराख्यो लेहवरः सर्वत्र ह्युपयुज्यते॥ ३४८॥

भाषा–रसोत, वंशलोचन, कांकडाशृङ्गी, चित्रक, मुलहठी, धनिया, तालीसपत्र, खैर, जीरा, काला जीरा, निसोत, खरेटी, दन्ती, त्रिकुटा इन सबको चार २ तोले ले । सोनामक्खी ४ तोले, जावित्री, लौंग, कंकोल, दाख, चतुर्जात और खजूर इन सबको दो २ तोले ले एकत्र करके अवलेह बनावे । इसका नाम पुष्कर लेह है । श्लीपदादि समस्त रोगोंके लिये यह यमराजकी नांई है । जिस रोगमें यह औषधि दी जाती है । वह रोग तत्काल दूर होता है । देशकालभेदसे अनुपानका निर्णय करके यह अवलेह सेवन किया जाय तो सर्वोपद्रवयुक्त प्रदर, द्वंद्वज, पुराना रक्तपित्त, खांसी, दमा और अम्लपित्तका नाश हो जाता है । इसका प्रयोग सब रोगोंमें होता है ॥ ३४८ ॥

सूतिकारिरसः ।

रसगन्धककृष्णाभ्रं तदर्द्धं मृतताम्रकम् । चूर्णितं मर्दयेद्यताद्रेकपर्णीरसेन च ॥ छायाशुष्का वटी कार्या द्विगुञ्जाफलमानतः । क्षीरत्रिकटुना युक्ता सूतिकातङ्कनाशिनी ॥ ज्वरं तृष्णारुचिं श्वासं शोथं हन्ति न संशयः ॥ ३४९ ॥

भाषा–पारा, अभ्रक २ भाग, तांबा १ भाग एकत्र चूर्ण करे । गोरखमुण्डीके रसमें मलकर छायामें सुखावे । फिर दो २ रत्तीकी गोली बनावे । त्रिकुटा और दूधके साथ इस औषधिका सेवन करनेसे सूतिकाज्वर, प्यास, अरुचि, दमा, शोथादिका नाश होता है । इसका नाम सूतकारिष्ट रस है ॥ ३४९ ॥

सूतिकाविनोदरसः ।

रसगन्धकतुत्थं च त्र्यहं जम्बीरमर्दितम् । त्रिभावितं त्रिकटुना देयं गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ गर्भिण्याः शूलविष्टम्भज्वराजीर्णेषु योजयेत् ॥ ३५० ॥

भाषा–पारा, गन्धक और तूतिया बराबर ग्रहण करके जंबीरीके रसमें मर्दन कर त्रिकुटाके क्वाथमें ३ वार भावना दे चार ४ रत्तीकी गोली बनावे । इस सूतिकाविनोद नामक रससे गर्भवतीका शूल, विष्टम्भ और अजीर्णका नाश हो जाता है ॥ ३५० ॥

गर्भविनोदरसः ।

त्रिभागं त्रिकटुं देयं चतुर्भागं च हिंगुलम् । जातीकोषं लवङ्गं च प्रत्येकं च त्रिकर्षिकम् ॥ सुवर्णमाक्षिकस्यापि पलार्द्धं प्रक्षि-

पेद्बुधः । जलेन मर्द्दयित्वा च चणमात्रा वटी कृता ॥ निहन्ति गर्भिणीरोगं भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३५१ ॥

भाषा-तीन भाग त्रिकुटा, ४ भाग सिंगरफ और जायफल, लौंग तीन २ कर्ष ले, आधा पल सोनामक्खी इन सबको एकत्र करके जलके साथ पीसकर चनेकी बराबर गोलियां बनावे । इसका नाम गर्भविनोद रस है । सूर्य भगवान् जिस प्रकार अन्धकारका नाश करते हैं वैसेही यह औषधि गर्भिणीरोगको दूर करती है ॥ ३५१ ॥

सूतिकाहररसः ।

लवङ्गं रसगन्धौ च यवक्षारं तथाभ्रकम् । लौहं ताम्रं सीसकं च पलमात्रं समाहरेत् ॥ जातीफलं केशराजं वराभृङ्गैलमुस्तकम् । धातकीन्द्रयवं पाठा शृंगी बिल्वं च वालकम् ॥ कर्षमाणं च संचूर्ण्य सर्वमेकत्र कारयेत् । बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ गन्धालिकापत्ररसैरनुपानं प्रदापयेत् । सर्वातीसारशमनः सर्वशूलनिवारणः ॥ सूतिकाशोथपाण्ड्वादिसर्वज्वरविनाशनः । सूतिकाहरनामायं रसः परमदुर्लभः ॥ ३५२ ॥

भाषा-लौंग, पारा, गन्धक, जवाखार, अभ्रक, लोह, ताम्र और सीसा इन सबको एक २ पल ले । जायफल, कूकरभांगरा, त्रिफला, भांगरा, इलायची, मोथा, धायफूल, इन्द्रजौ, आकनादि, कांकडासिंगी, बिल्व, सुगन्धवाला इन सबको एक साथ पीसकर बेरकी गुठलीकी समान गोली बनावे । इसका नाम सूतिकाहर रस है । इससे सर्व प्रकारके अतिसार, शूल, सूतिका, शोथ और सब प्रकारके ज्वर नाशको प्राप्त होते हैं । यह रस अत्यन्त दुर्लभ है ॥ ३५२ ॥

रसशार्दूलः ।

अभ्रं ताम्रं तथा लौहं राजपट्टं रसं तथा । गन्धटङ्कमरीचं च यवक्षारं समांशकम् ॥ तथात्र तालकं चैव त्रिफलायाश्च तोलकम् । तोलकं चामृतं चैव षड्गुणप्रमिता वटी ॥ ग्रीष्मसुन्दरकस्यापि नागवल्लीरसेन च । भावयेत् सप्तधा हन्ति ज्वरं कासादिसंग्रहम् ॥ सूतिकातंकशोथादि स्त्रीरोगं च विनाशयेत् ॥ ३५३ ॥

भाषा-अभ्रक, तांवा, लोहा, राजपट्ट, पारा, गन्धक, सुहागेकी खील, मिरच, जवाखार, हरिताल, त्रिफला और विष इन सबको एक २ तोला लेवे। गीमा और पानके रसकी अलग २ सात भावना देकर छः रत्तीकी एक २ गोली बनावे। इसका नाम रसशार्दूल है। यह कफ, खांसी, अंगग्रह, शोथ, सूतिकारोग और नारीरोगका नाश करता है ॥ ३५३ ॥

महाभ्रवटी।

मृतमभ्रं च लौहं च कुनटी ताम्रकं तथा । रसगन्धकटङ्कं च यवक्षारफलत्रिकम् ॥ प्रत्येकं तोलकं ग्राह्यमूषणं पंचतोलकम् । सर्वमेकीकृतं चूर्णं प्रत्येकेन विभावयेत् ॥ ग्रीष्मसुन्दरसिंहास्य-नागवल्या रसेन च । चतुर्गुञ्जाप्रमाणेन वटिकां कारयेद्भिषक् ॥ योजयेत्सर्वथा वैद्यः सूतिकारोगशान्तये ॥ ३५४ ॥

भाषा-अभ्रक, लोहा, मैनसिल, तांवा, पारा, गन्धक, सुहागेकी खील, जवाखार, त्रिफला ये सब एक २ तोला ले। मिरच ५ तोले ग्रहण करे। फिर गीमा, विसोंटा और पानके रसमें सात वार अलग २ भावना देकर चार २ रत्तीकी गोली बनाय सूतिकादि सब रोगोंका नाश करनेको प्रयोग करे। इसका नाम महाभ्रवटी है ॥ ३५४ ॥

सूतिकाघ्नो रसः।

रसगन्धकलौहाभ्रं जातीकोषं सुवर्णकम् । समांशं मर्दयेत्खल्वे छागीदुग्धेन पेषयेत् ॥ गुंजाद्वयप्रमाणेन वटिकां कुरु यत्नतः । ज्वरातीसाररोगघ्नः सूतिकातंकनाशनः ॥ सूतिकाघ्नो रसो नाम ब्रह्मणा परिकीर्त्तितः ॥ ३५५ ॥

भाषा-पारा, गन्धक, लोह, अभ्रक, जावित्री और सुवर्ण ये सब बराबर लेकर बकरीके दूधमें खरल करे। दो २ रत्तीकी गोली बनावे। इसका नाम सूतिकाघ्न रस है। इससे सूतिकाज्वर अतिसारादिका नाश होता है। इस औषधिके निर्माण करनेवाले श्रीब्रह्माजी हैं ॥ ३५५ ॥

बालरोगघ्नी मात्रा।

रसलौहादिभैषज्यं महतां यज्ज्वरादिषु ।
युंज्यात्तदेव बालानां तत्र मात्रा कनीयसी ॥ ३५६ ॥

भाषा-पारा और लोह आदि जो औषधियें महत्के लिये कही गई हैं, बाल-

कोंके ज्वरादिमेंभी उन्हीं औषधियोंका प्रयोग करे। परन्तु मात्रा घटाकर देना उचित है ॥ ३५६ ॥

विषचिकित्सा।

जयपालभवां मज्जां भावयेन्निम्बुकद्रवैः। एकविंशतिवारं तु ततो वर्त्तिं प्रकल्पयेत् ॥ मनुष्यलालया घृष्टा ततो नेत्रे तयाञ्जयेत्। सर्पदष्टविषं जित्वा संजीवयति मानवम् ॥ विश्वामित्रपात्रे जयपालबीजं त्वग्घीनं कृत्वा ग्राह्यमेतद्दृष्टफलम् ॥ ३५७ ॥

इति श्रीवैद्यशिरोमणिना कलानाथशिष्येण श्रीढुण्ढुकनाथेन निर्मितरसेन्द्रचिन्तामणौ नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

भाषा-नींबूके रसके साथ जमालगोटेके गूदेको इक्कीस वार भावना देकर बत्ती बनावे। फिर मनुष्यकी लालके साथ घिसकर नेत्रोंमें लगावे, इस प्रकार करनेसे सांपका डसा हुआ आरोग्य होकर जीवन प्राप्त करता है। जमालगोटेका छिलका उतारकर नारियलके पात्रमें रक्खे। इस औषधिका फल प्रत्यक्ष हुआ है। इसका नाम विषहरी बत्ती है ॥ ३५७ ॥

मुरादाबादनिवासी श्रीमन्महर्षिकात्यायनकुमारसुखानन्दमिश्रात्मज पण्डित बलदेवप्रसादमिश्रकृतरसेन्द्रचिन्तामणिग्रंथके नवम अध्यायकी भाषाटीका समाप्त हुई ॥ ९ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.